उपोद्घात ।

कुछ दिन हुए बाबू सूरजभानुजी वकीलने आदिपुराणकी समीक्षा लिखी है। यह बात निर्वि-वाद सिद्ध है कि आदिपुराण एक सालंकृत महाकाव्य है। इसलिये यह भी मानना पड़ता है कि उसकी समीक्षा काव्यशास्त्र और अलंकारशास्त्रका अच्छा जानकार ही कर सकता है। इसके सिवाय धर्मशास्त्रके अनुसार वह प्रथमानुयोगका मुख्य ग्रंथ है इसलिये उसकी समीक्षाके लिये धर्मशास्त्रका भी पूरा ज्ञान चाहिये। बाबू सूरजभानुजी वकील हैं इसलिये उनमें लिखने तथा बोलनेकी शक्ति भले ही हो परंतु इतने दिनके परिचयसे जैन समाज यह भली भांति जानती है कि वे न तो काव्यशास्त्रके अच्छे पंडित हैं न अलंकारशास्त्रके विद्वान् हैं और न धर्मशास्त्रके अच्छे मर्मज्ञ हैं। इसलिये यह कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं है कि वे उसकी समीक्षा करनेके किसी भी तरह पात्र नहीं है। उन्होंने समीक्षा करते समय धार्मिक सिद्धांतोमें कितनी भूले की हैं, काव्य और अलंकारशास्त्रका कितना दुरुपयोग किया है और किसतरह लोगोंको धोखेमें डालना चाहा है यह बात हमने प्रत्येक समीक्षाकी परीक्षा करते समय लिखी है। यहांपर हम केवल इतना ही बतला देना चाहते हैं कि वर्तमान समयमें बाबूसाहबको ऐसी समीक्षाओंकी क्या आवश्यकता हुई। कुछ दिन पहिले बाबूसाहबने अपने लेखोंमें स्पष्ट लिखा था कि जैनियोंमें १६ संस्कार जैन शास्त्रोंके अनुसार प्रचलित कर दो और जैन शास्त्रोंकी श्रद्धा इनके हृदयमे घुसा दो। जैन शास्त्रोंके अनुसार प्रवृत्ति फैलानेकी कोशिश बेधड़क होकर करो। इसके थोड़े ही दिन बाद वे ही बाबूसाहब उसी आदिपुराणकी समीक्षा कर उसके वक्तव्यको बनावटी सिद्ध करनेकी चेष्टा करने लगे इसका कोई न कोई खास और प्रबल कारण अवश्य होना चाहिये। वर्तमान समयमें चारो ओर स्वराज्यकी धूम मच रही है। उसको प्राप्त करनेके लिये कुछ लोगोंका ऐसा ख्याल है कि भारतवर्षमें जबतक धर्मके ढकोसले हैं और जबतक भिन्न भिन्न जातियोंका अस्तित्व है जबतक पश्चिमी सभ्यताका जोरशोरसे प्रचार नहीं होता तबतक स्वराज्य मिल नहीं सकता। भारतवर्षमें भिन्न भिन्न धर्मोंका तथा भिन्न भिन्न जातियोंका अस्तित्व इतना प्रबल है कि उसका हटाना कठिन ही नहीं किंतु असंभवसा प्रतीत होता है। तथापि अपने अपने उद्देशकी सिद्धि सब कोई करना चाहता है इसी नीतिके अनुसार बाबूसाहबने पुराणोंकी समीक्षा करना प्रारंभ किया है ऐसा जान पड़ता है। वे एकदम धर्मके अस्तित्वको हटा नहीं सकते, जातिपांतिको दूर कर नहीं सकते, इसलिये धर्मग्रंथोंको मनगढंत और बनावटी बतलाकर तथा झूठमूठ ही चारणऋद्धिधारी ऐसे उत्तम तपस्वियोके शिरपर चालाकी ऐसे दूषित कलंक लगाकर उनसे लोगोंकी रुचि हटानेका प्रयत्न किया है। यही कारण है कि वे कुछ वर्ष पहले तो इसी आदि-पुराणको प्रमाण मानकर उसमे कही हुई विधियोंके संस्कारोंके प्रचारसे जैनियोंका कल्याण होना बतलाते थे और आज वे ही बाबूसाहब उसीको मनगढंत बतला रहे हैं।

हमारी समझमें ऐसे लोगोंको कुछ दिन तक स्वराज्यवादियोंके नेता महात्मा गांधी, विपिन-चन्द्रपाल और लोकमान्य तिलकके विचारोंका मनन करना चाहिये। महात्मा गांधीने ता. ३०-३-१८ को जो इंदौरकी नगरव्याख्यानमालामें व्याख्यान दिया था उसमें उन्होंने स्पष्ट कहा था कि पश्चिमीय सभ्यताका अनुकरण करनेसे भारतवर्षको कभी स्वराज्य नहीं मिल सकता। भारतवर्षकी नींव धर्मपर लगी हुई है इसलिये प्राचीन सभ्यताके अनुसार धर्मका पालन करते हुए ही हमको स्वराज्य मिल सकता है। मि. पालने भी यही बात कही थी कि भारतवासियोंका मुख्य ध्येय मोक्ष है और स्वराज्य उसका साधन है। लोकमान्य तिलकका भी यही मत है, इसलिये धर्मकी जड़ काटनेसे कभी स्वराज्य नहीं मिल सकता है। यह बात प्रत्येक भारतवासीको स्वीकार करनी ही पड़ती है।

बाबूसाहबने 'वत्थु सहाओ धम्मो' (वस्तुस्वभावो धर्मः), को मुख्य मानकर ही कथा ग्रंथोको झूठा और बनावटी ठहरानेका प्रयत्न किया है परन्तु उनकी लिखी समीक्षाके पढ़नेसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि आपने 'वत्थु सहाओ धम्मो' का ही गला घोंट दिया है। अथवा उसे उठाकर खूंटीपर टांग दिया है। क्योंकि वस्तु अर्थात् तत्त्व सात हैं उनमें आस्रव और बंध भी तत्त्व या वस्तु है। उनमेंसे प्रत्येकके शुभ और अशुभ ऐसे दो दो भेद होते हैं। शुभ—आस्रव अथवा किसी अपेक्षासे शुभबंधका फल स्वर्गादिकी सामग्री है और अशुभ आस्रव अथवा अशुभ बंधका फल नरकादिके दुःख हैं। यह आस्रव वा बंधका स्वाभाविक धर्म है। परंतु समीक्षामें इसीको आपने अन्याय बतलाया है। अथवा बिल्कुल उल्टा बतलाया है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि आपने 'वत्थु सहाओ धम्मो' का भी खंडन किया है और उसे अन्याय बतलाया है।

आपने अपना उद्देश सिद्ध करनेके लिये मोक्षमार्गप्रकाशमेंसे स्वर्गीय श्रीमान् पं. टोडरमलजीके कुछ वाक्य उद्धृत किये हैं। जिस प्रकार आपने जाति और वर्णविचार शीर्षक लेखमें कुछ आदिपुराणके श्लोक उद्धृत किये थे उन श्लोकोंके आगे पीछेसे संबंध रखनेवाले श्लोक छोड़ दिये थे और फिर उनका मनमाना अर्थकर अपना स्वार्थ खींच लिया था उसीप्रकार आपने यहां भी श्रीमान् पं. टोडरमलजीके वाक्योंका दुरुपयोग किया है। पंडितजीने जिस अपेक्षाको लेकर वे वाक्य लिखे हैं जो कि ऊपर नीचेका कथन बांचनेसे वह अपेक्षा स्पष्ट समझमे आ जाती है परंतु बाबूसाहबने उस अपेक्षाको छोड़कर जितनेसे अपना मतलब निकलते देखा उतने वाक्य ले लिये है।

जिस मोक्षमार्गप्रकाशकी दुहाई देकर आपने इन कथाग्रंथोंको झूठा ठहराया है जैसा कि आपने लिखा है "मोक्षमार्गप्रकाशग्रंथके इस कथनसे स्पष्ट सिद्ध है कि कथाग्रंथ किसी तरह भी श्रीसर्वज्ञदेवभाषित नहीं हो सकते और न जिनवाणी माने जा सकते हैं..........सच तो यह है कि ऐसे कथाग्रंथोंको भी जिनवाणी बताना जिनमें इस प्रकार असत्य कथन भरा हुआ है वास्तवमें जिन वाणीको दूषित करना और उसकी महिमा घटाना है" इत्यादि, उसी मोक्षमार्गप्रकाशमें इन्हीं कथाग्रंथोंके विषयमें लिखा है। "प्रथमानुयोगविषै जो मूलकथा है ते तो जैसी हैं

तैसी ही निरूपित हैं अर तिन विषैं प्रसंग पाय व्याख्यान हो है सो कोई तो जैसाका तैसा हो है कोई ग्रंथकर्ताका विचारकै अनुसार होय परंतु प्रयोजन अन्यथा न हो है। ताका उदाहरण जैसे तीर्थंकरदेवनिकै कल्याणकनि विषैं इंद्र आया यह कथा तो सत्य है। बहुरि इंद्र स्तुति करी ताका व्याख्यान किया सो इंद्र तौ और ही प्रकार स्तुति कीनी थी अर यहां ग्रंथकर्ता और ही प्रकार स्तुति कीनी लिखी। परंतु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा न भया। बहुरि परस्पर किनहूकैं वचनालाप भया तहां उनकै और प्रकार अक्षर निकले थे यहां ग्रंथकर्ता अन्य प्रकार कहे परंतु प्रयोजन एक ही दिखावै है।"

..........................ऐसे ही अन्यत्र जानना यहां कोऊ कहै अयथार्थ कहना तो जैन शास्त्रनि विषैं संभवै नाहीं। ताका उत्तर अन्यथा तौ वाका नाम है जो प्रयोजन औरका और प्रगट करै, जैसे काहूको कह्या तू ऐसे कहियो वानैं वे ही अक्षर तो न कहे परंतु तिसही प्रयोजन लिये कह्या ताकौं मिथ्यावादी न कहिये ऐसैं जानना जो जैसाका तैसा लिखनेकी संप्रदाय होय तो काहूने बहुत प्रकार वैराग्य चिंतवन किया था ताका वर्णन सब लिखे ग्रंथ वधिजाय अर किछू न लिखै तो भाव भासै नाहीं तातैं वैराग्यके ठिकानै थोड़ा बहुत अपना विचारके अनुसार वैराग्य पोषता ही कथन करै सराग पोषता न करै तहां प्रयोजन अन्यथा न भया तातैं याकौं अयथार्थ न कहिये ऐसे ही अन्यत्र जानना।" इसी मोक्षमार्गप्रकाशमें आगे चलकर लिखा है "कोई जीव कहै है प्रथमानुयोगविषैं शृंगारादिका वा संग्रामादिकका बहुत कथन करैं तिनके निमित्ततैं रागादिक बधि जाय तातैं ऐसा कथन न करना था ऐसा कथन सुनना नाहीं ताकौं कहिये है। कथा कहनी होय तब तौ सर्व ही अवस्थाका कथन किया चाहिये बहुरि जो अलंकारादि करि वधाय कथन करैं हैं सो पंडितनिकै वचन युक्ति लिये ही निकसैं" अर जो तू कहेगा संबंध मिलावनेको सामान्य कथन किया होता वधाय करि कथन काहेको किया ताका उत्तर—जो परोक्ष कथनको वधाय कहे विना वाका स्वरूप भासै नाहीं बहुरि पहिले तो भोग संग्रामादि ऐसैं किये पीछैं सर्वका त्याग करि मुनि भये इत्यादि चमत्कार तब ही भासै जब वधाय कथन कीजिये बहुरि तू कहै है ताकै निमित्ततैं रागादिक वधि जाय सो जैसे कोऊ चैत्यालय बनावै सो वाका तौ प्रयोजन तहां धर्मकार्य करावनेका है अर कोई पापी तहां पापकार्य करै तो चैत्यालय वनावानेवालेका तौ दोष नहीं तैसैं श्रीगुरु पुराणादिविषैं शृंगारादि वर्णन किये तहां उनका प्रयोजन रागादि करावनेका तौ है नहीं धर्मविषैं लगावनेका प्रयोजन है अर कोई पापी धर्म न करै अर रागादिक ही वधावै तौ श्रीगुरुका कहा दोष है" इससे स्पष्ट सिद्ध है कि श्रीमान् पं. टोडरमलजीने कथाग्रंथोंको उतना ही महत्व दिया है जितना कि द्रव्यानुयोग आदि अन्य शास्त्रोंको। बाबूसाहबने पूर्वापर संबंधको छोडकर केवल अपने मतलब लायक कुछ थोड़ेसे वाक्य उद्धृत कर लिये हैं परंतु ऐसा करना उनके कथनका दुरुपयोग करना है।

आगे आपने लिखा है "उपरोक्त प्रकार जैनियोंमें जिन जिन मिथ्या प्रवृत्तियोंकी शिकायत श्रीमान् टोडरमलजीने मोक्षमार्गप्रकाशमें की है उनके प्रचलित होजानेका कारण कथाग्रंथोंके पठ-

नपाठनके सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता है।" इसके उत्तरमें हम श्रीमान् पंडित टोडरमल-जीके ही कुछ वाक्य उद्धृत कर देना उचित समझते हैं उन्होंने लिखा है "बहुरि तू कहैगा जिनके शृंगारादि कथन सुने रागादि होय आवे तिनकौ तो वैसा कथन सुनना योग्य नाहीं ताका उत्तर—जहां धर्मका तो प्रयोजन अर जहां तहां धर्मकी पोषै ऐसे जैन पुराणादिक तिन विषै प्रसंग पाय शृंगारादिकका कथन किया ताकौ सुने भी जो बहुत रागी भया तो वह अन्यत्र कहां विरागी होगा पुराण सुनना छोडि और कार्य भी ऐसा ही करैगा जहां बहुत रागादि होय तातै वाकै भी पुराण सुनें थोड़ा बहुत धर्मबुद्धि होय तो होय और कार्यनितैं यह कार्य भला ही है" इससे स्पष्ट सिद्ध है कि कथाग्रंथोंसे कुछ बुरी बातोंका प्रचार नहीं होता है। बुरी बातोका प्रचार तो उन ग्रंथोको न माननेवाले उच्छृंखल लोगोंसे होता है। कथाग्रंथोंका प्रयो-जन तो पुण्यपापका फल दिखला कर सदाचारकी प्रवृत्ति करना है यदि कोई श्रोता जोंकके समान हो और वह उलटा ही चलने लगे तो उसका दुर्भाग्य!

अंतमें हम बड़ी नम्रताके साथ यह प्रगट कर देना भी उचित समझते है कि समीक्षामें बाबूसाहबने कई जगह तो अर्थका दुरुपयोग किया है कई जगह अर्थ बदल दिया है कई जगह कुछ अंश छिपाकर समीक्षा की है और कई जगह मनगढंत भाव लिखकर अपने हार्दिक भाव प्रगट किये है। हमने परीक्षा करते समय स्वतंत्रतापूर्वक सबको दिखलाया है। आशा है पाठक गण इसका मनन करेंगे और तथ्य अंशको ग्रहण कर अपना भ्रम निवारण करेंगे।

लालाराम जैन।

आदिपुराण समीक्षाकी परीक्षा।

जयवर्माकी कथाकी समीक्षाकी परीक्षा।

आपने लिखा है " भोगोंकी इच्छा कर मुनिपद भ्रष्ट किया " परंतु भोगोंकी इच्छा करनेसे मुनिपद कैसे भ्रष्ट होता है सो बतलाया नहीं यह स्पष्ट है कि भ्रष्ट शब्दसे द्रव्यचारित्रकी अशुद्धि ली जाती है सो आगे चलकर आपने ही पेज २० लाइन ३ में वज्रजंघकी कथामें जयवर्मा मुनिको द्रव्यलिंगी लिखा ही है। क्या भोगोंकी इच्छा करने मात्रसे उसका वह द्रव्यलिंग भी नष्ट हो गया यदि हो गया तो सप्रमाण सिद्ध करना चाहिये। हां यह बात अवश्य है कि परिणामोंका परिणमन वा चंचलता तो सदा बनी ही रहती है परंतु उससे द्रव्यलिंग कभी भ्रष्ट नहीं हो सकता।

आगे चलकर आपने भोगोंकी इच्छासे दुर्गतिके कर्म बांधे बतलाया है परंतु न तो यह बात कथामें ही लिखी है और न किसी तरह सिद्ध होती है तपश्चरण करते हुए उसका फल स्वरूप कुछ थोडासा मांग लेना निदान है। निदान करते समय उसके परिणाम कुछ तपश्चरणसे हटते नहीं ऐसी अवस्थामें उससे दुर्गति कैसे बंध सकती है दुर्गति तो पापोंसे बंधती है। क्या बाबूसाहब यह बात सिद्ध कर सकते है कि निदान करनेसे दुर्गति बंधती है ?

इससे यह भी सिद्ध होता है कि तपश्चरणका थोडासा फल मांग लेना ही निदान है तो फिर उसका मिल जाना भी असंभव नहीं है किंतु नितांत संभव है क्योंकि हजार रुपयेके मूल्यकी वस्तुके आठसौ सातसौ रुपये हर कोई दे सकता है और इसीलिये वह फल मिलता भी है। अतएव निदान पूरा होनेके लिये किसी भी कारणके बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि बाबूसाहबको यदि कुछ भी विचारदृष्टि होती तो ऊपर लिखा हुआ कारण वही पर मिल जाता कारण मौजूद रहते हुए भी आपको कारण पूछनेकी आवश्यकता हुई इसका हमें बड़ा खेद है। क्या समीक्षककी बुद्धिकी इतनी ही दौड़ होनी चाहिये।

अच्छा प्रभाव न पड़ना आपने केवल लिख दिया है उसे घटित कर दिखलाया नहीं केवल आकाशका फूल सुगंधित होता है इतना लिख देने मात्रसे आपका दिमाग तर नहीं हो जायगा। अच्छा सुनिये सुननेवालों पर इस कथाका क्या असर पडता है इसे हम बतलाये देते है। यह तो मानना ही पडता है कि एक ग्रंथमें सब विषय नहीं लिखे जा सकते जो विषय जिस ग्रंथमें नहीं रहते वे ग्रंथांतरोंसे लगाने पडते हैं इसीके अनुसार पुरुषार्थसिद्ध्युपायमे जो ' येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति, अर्थात् रागके जितने अंश रहते है उन्हींसे कर्मोंका बंध

होता है यह लिखा है। वह इसी कथापरसे अच्छी तरह सुघटित होता है। देखिये तपश्चरणकी महिमा अचिंत्य है परन्तु निदान रूप राग परिणाम होनेसे उसमेकी अचिंत्यता नष्ट हो कर बहुत थोडी महिमा रह गई फिर भी तपश्चरण व्यर्थ नही गया वह स्वर्गादिका कारण अवश्य हुआ इसलिये निरीह तपश्चरण करना सर्व श्रेष्ठ है क्या श्रोतागण इस कथापरसे यह बात नहीं समझ सकते! परंतु वसंत ऋतुके रहते हुए भी करीलो पर पत्ते न आवे इसमे हम लाचार है।

२—आगे चलकर आप लिखते है कि 'भोगोंकी इच्छा करते हुए प्राण छोडे और उससे ऐसा जन्म पाया जहां खूब भोगोपभोग मिले इससे सुननेवालो पर बुरा प्रभाव पडता है।' यहां भी बाबूसाहबने बतलाया नहीं कि क्या बुरा प्रभाव पडा? क्या अंत्यजोके साथ बैठकर खानेसे स्वर्गकी प्राप्ति बतलाई। या विधवासंगम व मद्यमास सेवन अथवा दगाबाजी धोखेबाजी कर धन इकट्ठा करनेसे स्वर्गप्राप्ति बतलाई। बाबूसाहबने बतलाया नहीं कि वे बुरा प्रभाव किसको मानते है! तपश्चरण करनेसे शुभोपयोग, शुभोपयोगसे शुभास्रव और शुभास्रवसे भोगोपभोगकी प्राप्ति मिलती है यह जो इस कथाका सारांश अर्थात् आस्रव तत्त्वका स्वरूप समझ लेना है क्या यही बुरा प्रभाव है? यदि बाबूसाहबकी समझमे यही बुरा प्रभाव है तो फिर उस समझकी बलिहारी है।

३—मुनिके निदान करते ही सापका निकल आना और काटखाना जिससे भोगोकी इच्छा करते हुए प्राण त्याग होकर अगिले जन्ममे महान् भोग मिलगये यह बाबूसाहबको बहुत ही खटकता है। इसमे तपश्चरणका फलस्वरूप भोगोपयोग मिले यह तो ऊपर लिखा ही जा चुका है अब निदान करते ही सांपका निकलकर काटना और प्राण रहित होना यह आकस्मिक घटना आपको बहुत खटकती है क्यो न खटके लेख तो आप सर्वथा बनावटी लिख रहे हैं अन्यथा संसारमे ऐसा कोई मनुष्य नही जिसे दश बीस आकस्मिक घटनाएं न भोगनी पडे परंतु बाबूसाहब इस तरह लिख रहे है मानो वे साक्षात् वहां मौजूद हों और बतौर साक्षीके कह रहे हो कि ऐसा नहीं हुआ। बाबूसाहब! ये घटनाए सब ज्योकी त्यो लिखी गई है आपकी इच्छानुसार इनमे कुछ रद्द बदल नहीं हुआ है और इसीलिये शायद आपको खटकती है कदाचित् उनका मरण किसी दूसरी तरहसे होता और उसी तरह लिखा जाता तो भी आपका यह प्रश्न तो फिर भी खड़ा रहता कि उनका मरण ऐसा ही क्यो हुआ। क्योंकि इस प्रश्नके सिवाय आपका कुछ वश ही नहीं चलता क्या बाबूसाहब इस बातसे अपरिचित है कि संसारमे ऐसी आकस्मिक घटनाएं अनेक हुआ करती है! सांपका निकलना असंभव नहीं, काटना असंभव नही, और उस विषसे मर जाना असंभव नहीं, फिर समझमे नहीं आता कि इसमे कौनसी असभव बात है जिससे बाबूसाहबके दिमागशरीफमे यह कथा बनावटी मालूम होती है कुछ असंभव बाते बतलानी तो चाहिये थीं।

महाबलकी कथाकी समीक्षाकी परीक्षा।

१–समीक्षामें आप लिखते हैं कि मेरु पर्वतपर जो मुनि मिले थे वे अवधि ज्ञानी थे परन्तु उन्होने यह भी बताया कि राजा महाबल भव्य है और वह स्वयंबुद्धकी इंतिजारी कर रहा है यह लिख कर आप पूछते हैं कि–क्या अवधि ज्ञानसे ये बाते जानी जा सकती है या नहीं इसका

निश्चय सिद्धान्त ग्रंथोंसे कर लेना चाहिये। बाबूसाहब समीक्षक तो बन गये परन्तु उन्हे सिद्धान्त ग्रंथोका कितना ज्ञान है यह उनके ऊपरके वाक्यसे मालूम होता है जब बाबूसाहब जैन ग्रंथोंमें इतनी अजानकारी रखते है तो भी वे उनकी समीक्षा करनेपर उतारू हो गये है और कुछ न कुछ अट्टसट्ट लिख मारा है। यह उनका कितना दुःसाहस और धृष्टता है। समीक्षकोको तो समीक्षा कर निश्चित सिद्धान्त लिखने चाहिये थे परंतु अजानकारी वा अज्ञान होनेसे वे और भी संदेह सागरमे डूब गये है। उनको चाहिये था कि कमसे कम जिनकी वे समीक्षा कर रहे है उन विषयोको तो अच्छी तरह जानलेते परंतु उन विषयोंका ज्ञान हो जानेपर फिर शायद बाबूसाहबको समीक्षक बननेका सौभाग्य प्राप्त न होता यह समीक्षक बननेका सौभाग्य कहिये या दुर्भाग्य, आपको जैन ग्रंथोकी अजानकारीसे ही मिला है। आपको उचित था कि ऐसी हालतमे जब कि आपको इस बातका निश्चय नहीं था, तब एक चिट्ठी लिखकर विद्वानोसे पूछते या सिद्धान्तग्रंथ देख कर निर्णय करलेते। परंतु आप इतनी तकलीफ उठाना चाहें तब न आपको तो केवल लिखनेकी धुन समाई है और इसी लिये अटरम सटरम लिखकर कलियुगके महर्षि बनना चाहते है। जनावमन् जब जिनसेन ऐसे महर्षिने ये बातें लिखीं है तब प्रमाण हीं है। क्या जिनसेनने कहींभी सिद्धान्तके विरुद्ध लिखा है सिन्द्धातके सभी ग्रंथ इसके अनुकूल हैं। इनको अप्रमाण सावित करनेके लिये आपने भी तो किसी ग्रंथांतरका प्रमाण नही दिया है इससे सावित है कि आपको ग्रंथांतरोका वा सिद्धान्त ग्रंथोका कुछ भी बोध नहीं है और जैन धर्मकी मोटी मोटी बाते भी आपको मालूम नही है। इसलिये आपकी समीक्षाका भी उतनाही मूल्य है जितना कि किसी अज्ञान बालकके बचनोका।

२—आगे आप लिखते है मुनिराजका स्वयंबुद्धको यह चालाकी सिखाना अच्छा नहीं लगता. बाबू साहबने इसे चालाकी बताया है परंतु चालाकीका लक्षण नहीं बतलाया अथवा यो कहना चाहिये कि जन्मभर चालाकी करते करते बाबू साहबको सब संसार चालाक दीखता है अथवा वही चालाकी चलनेके लिये आप यहाँ भी चूके नहीं है। जनावमन् स्वार्थवश जहाँ कुछ धोखेबाजी करनी पडती है या छलकपट करना पड़ता है वही चालाकी शब्दका प्रयोग होता है। मुनिराजने स्वयंबुद्धको कुछ छलकपट करने या धोखेबाजी देनेके लिये नहीं कहा जिससे उसे चालाकी कहा जाय। किंतु अवधिज्ञानसे उन्होने समझा कि इस उपायसे उसके चित्तपर जैन धर्मका अच्छा प्रभाव पडेगा। और वह समझेगा कि जैनियोंके साधु या जैनधर्मको धारण करनेवाले कोई भी पुरुष ऐसे भी हैं जो इतनी गुप्त और अप्रत्यक्ष बातोको भी जान सकते है। यही प्रभाव डालनेके लिये जैसा हुआ था और उन स्वप्नोका जैसा फल मुनिराजने समझा उसे पहिले ही कह देनेके लिये मुनिराजने स्वयं बुद्धको कहा था। इससे मुनिराजका कुछ स्वार्थ सिद्ध नहीं हुआ। चालाकी दो प्रकारकी है एक क्रियात्मक और दूसरी वचनात्मक, वचनात्मक चालाकी झूठका भेद है और क्रियात्मक चोरीका। चोरी झूट आदि पाप प्रमत्तयोगसे होते है। मुनिराजके ऐसा प्रमत्तयोग कोई नही था इसलिये उनके वचनको चालाकी कहना महा। झूंठ बोलना है। मुनिराजने केवल महाबलका कल्याण करनेके लिये स्वप्नोका फल बतलाकर और उन फलोको सत्यसिद्ध करनेके

लिये स्वप्नोंको पहिले कह देने रूप हेतु बतलाकर उसे आत्मकल्याणके दृढ़ करनेका उपदेश दिया था। चालाकीका नहीं, चालाकी तो आप करते है। आपका मंतव्यतो यह है कि जबतक धर्मके ढकोसले हैं तबतक सब जातियाँ एकाकार नहीं हो सकतीं और विना एकाकार हुए स्वराज्य नही मिल सकता। परंतु इस मंतव्यको तो आपने छिपा रक्खा है और ऊपर लिखे अनुसार उन ग्रंथोंकी अजानकारी रखते हुए भी झूठमूठकी अपनी जानकारी दिखलाते है और धर्मको ढकोसला बतलानेके लिये ही हितैषीकी दुहाई देकर समीक्षक बनते है। ऐसी मिथ्या बातें और चालाकी उन मुनिराजके बचनोंमें कहीं नहीं मिलती।

३—आगे चलकर आपने लिखा है कि 'इस कथाका फल सिवाय इसके और कुछ नहीं निकलता कि जो राजा सारी उमर भोगोंमें फँसा रहा मरते समय समाधिमरण करनेसे स्वर्गमें पहुँच गया इससे आपको यही शिक्षा मिली है कि सारी उमर खूब मौज उड़ाओ और मरते समय धर्मसेवन करलेनेसे अगिले जन्ममें सब कुछ हो जायगा।' परंतु बाबूसाहबको अभी यह मालूम नही है कि भोग क्या है और उसका उपभोग किसतरह किया जाता है। पुण्यकर्मके उदयसे भोगोपभोगकी (इंद्रियोंके विषयोंकी) सामग्री मिलना भोग है। राजा महाबलको वह सामग्री तपश्चरणजन्य शुभोपयोगसे होनेवाले शुभ बंध वा पुण्यकर्मोंसे मिली थी। जो भोगोपभोग सामग्री तपश्चरण आदि मंद कषायोंसे मिलती है वह मंद कषायोंसे ही न्यायपूर्वक सेवन की जाती है। राजा महाबलने जो कुछ भोगोपभोगोंका सेवन किया था वह सब न्यायपूर्वक और मंद कषायसे ही किया था। यह कहीं नही लिखा है कि उसने कुछ अन्यायपूर्वक अखाद्य खाद्योंका सेवन किया हो या पांचों पापोंका सेवन किया हो या सप्त व्यसनका सेवन किया हो। उसने जो कुछ किया वह न्यायपूर्वक किया और मंद कषायोंसे किया। मंद कषाय होनेसे सदा शुभास्रवपूर्वक शुभ-बंध होता है। जहां मंद कषाय नहीं है तीव्र कषाय है वहां सब तरहका तो अन्याय होता है और अशुभास्रवपूर्वक पाप बंध होता है। शुभ कर्मबंधका अर्थात् पुण्यकर्मोंका फल सिवाय उत्तम भोगोपभोगके और कुछ हो नहीं सकता। बाबूसाहबने इसी बातको मिथ्या ठहरानेके लिये आगे भी बहुत कुछ लिखा है परन्तु उन्हें यहां यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि मोक्षकी प्राप्ति संवर और निर्जराका फल है। शुभास्रवका फल तो सिवाय इसके और कुछ नहीं हो सकता. यदि हो सकता होता तो बाबू साहब भी अवश्य दिखलाते।

आगे बाबू साहबने लिखा है कि 'सारी उमर मौज उड़ाओ, हम तो नहीं समझते कि न्यायपूर्वक मंद कषायसे भोगोपभोगोका सेवन करना मौज उड़ाना कहलाता हो। हम बाबूसाहबसे ही पूछते हैं' कि मौज उडाना समर्याद है या अमर्याद. यदि समर्याद है तब तो उसमे द्रव्य क्षेत्र काल भाव सबकी मर्यादा शामिल है और इस तरह समर्याद भोगोपभोगोका सेवन करता हुआ अपने अपने नियत समयमें नियत द्रव्य क्षेत्र काल भाव संबंधी सब काम करता है। धर्मसेवन भी करता है राज्यकार्य भी करता है और समयानुसार भोगोपभोग सेवन भी करता है परंतु उसका वह समर्यादकृत्य धर्मका विघातक नहीं होता (यह बात आगे सप्रमाण सिद्ध की

गई है) हां यदि आप अमर्याद अर्थ लें तो भले ठीक हो क्योंकि अमर्यादमें सब तरहका अन्याय और सब तरहका पाप आ जाता है जिसका उल्लेख इस कथामे बिल्कुल नहीं है । यह तो केवल बाबूसाहबकी अंतरंग भावना है जो कि इस लेखसे आपने सबको प्रगट कर दी है । आपन न्याय अन्यायका भेद उठाकर 'मौज उड़ाना' इस अन्याय भरे साधारण शब्दोंसे केवल अन्यायका उपदेश देना चाहा है जो कि ग्रंथमें वा कथामें कहीं भी नहीं है।

आगे चलकर आपने वर्षगांठके उत्सवपर धर्मका उपदेश, मंत्रियोका विरोध और बहस बेजोड़ बतलाई है और इसीपरसे आपने कथाका बनावटी होना मान लिया है। परंतु बाबूसाहबको यह भी माल्रम नहीं है कि वर्षगांठके उत्सवपर क्या होता है । वर्षगांठके उत्सवपर पहिले वर्षके कृत्योंकी आलोचना, आगेके लिये शुभभावनाओका चाहना और धर्मके प्रभावसे यह सब विभूति मिली है इसलिये धर्मसेवन सदा करते रहना चाहिये यही विषय कहा जाता है। परंतु आपको ये सब बाते बेजोड़ माल्रम होती है। शायद वर्षगांठके उत्सवपर सप्तव्यसनका सेवन या अन्त्यजोंके साथ खाना विधवाविवाहप्रचार और किसी तरहका अन्याय आपको सुजोड़ माल्रम होता होगा। परंतु आपने वह भी दिखलाया नहीं है इसीपरसे आपने कथाको भी बनावटी कह डाला। माल्रम होता है आप वहां उपस्थित थे जिससे आपको माल्रम है कि वहां न तो कोई मंत्री था न कुछ उपदेश हुआ और न कुछ बहस ही हुई। यदि आप वहां उपस्थित नहीं थे तो इस कथाके बनावटी होनेका सबूत भी देना चाहिये। भला बतलाइये तो इसमे कौनसी बात असंभव है। क्या राजाके मंत्री नहीं थे ? क्या वे बहस नही कर सकते थे ? गूंगे थे ? क्या बात थी ? सो बतलाना भी तो चाहिये। या केवल बाबावाक्यं प्रमाणंके अनुसार केवल लिख देने मात्रसे आपकी बात मान ली जाय ! क्या ऐसी बेतुकी और असंबद्ध बातोंपर कोई भी सहृदय मनुष्य विश्वास कर सकता है।

आगे चलकर अपने लिखा है कि राजा महाबलके ही वंशमें चारों ध्यानोंके उदाहरण क्यों बन गये। इसके उत्तरमे पूछा जा सकता है कि बाबू सूरजभानुजी बाबू जुगुलकिशोरजी और बाबू ज्योतिःप्रसादजी ये तीनों ही नास्तिक देवबंदमें ही क्यो हुए ? अलग अलग शहरोंमें क्यों नहीं हुए ? क्या आपके पास इसका कोई उत्तर है ? यदि है तो उसे ही यहां लगा लीजिये ? जनाबमन् ! बाबूसाहब ! राजा महाबलका वंश बहुत बड़ा और उत्तम था उसमेंसे अनेक लोग मोक्ष गये, अनेक स्वर्ग गये, अनेक नरक गये और अनेक ही मनुष्य वा तिर्यंच हुए। उन्हींमेंसे छांट छांट कर स्वयंबुद्धने दिखलाये थे क्योंकि संतानपर पूर्वजोका जितना असर होता है उतना दूसरेका नही होता। इसमें कोई असंभव बात न तो है और न आपने बतलाई ही है अभी भी बड़े कुटुंबमें सब तरहके और सब प्रकृतिके मनुष्य होते है दो चार सगे भाई भी भिन्न भिन्न प्रकृतिके होते है और भिन्न भिन्न क्रियाओंके उदाहरण बनते हैं ऐसे एक नहीं हजारों कुटुंब अब भी वर्तमानमें मौजूद है परंतु उनको देखकर बाबूसाहबको आश्चर्य नहीं होता और हो भी क्यों क्योंकि आपको तो केवल लोगोंको बहकाना है।

इसके बाद आपने " मंत्रियोंके वादविवादको वेजोड़ वतलाया है और उसका कारण महाबलके बापकी दीक्षा लेना वतलाया है क्या कोई बुद्धिमान् इस बातको मान सकता है कि महाबलके बापने दीक्षा ले ली इससे वहस वेजोड हो गई । " क्या आप आज नही देखते है कि बाप बहुत धर्मात्मा होता है और बेटा महा नास्तिक रंडीवाज होता है फिर वह सगे बापकी भी नही सुनता, हम नाम लेकर किसीका जी नही दुखाना चाहते परंतु पाठकोको ऐसे बहुतसे उदाहरण मिल जायंगे। वादविवादको वे जोड़ बतलानेके लिये आपने दूसरा कारण दादाने देव हो कर महाबलको जैन धर्मका उपदेश देना बतलाया है। परंतु बाबूसाहबको वर्तमानमें सैकड़ों ऐसे सपूत मिलेंगे जो दादाके स्वयं समझाने पर भी नहीं सुनते। स्वयं बाबूसाहबको भी कितने ही बुजुर्गोंने समझाया होगा अथवा वर्तमानमें समाजके कितने ही बुजुर्ग समझा रहे है परन्तु बाबूसाहब भी तो नही सुनते फिर महावलने देवकी बातपर ध्यान नहीं दिया इसमें आश्चर्य क्या है! तीसरा कारण "दंडके जीवने देव हो कर हार दिया जो महावलके गलेमे पड़ा वतलाया।" परन्तु यह कारण भी निर्मूल है क्योंकि राजा दंड कितनी ही पीढी पहिले हुआ है और उसने देव हो कर अपने बेटेको हार दिया था जो कि कई पीढीसे महावलके घरमे चला आ रहा था भला कई पीढीसे घरमें चले आए हार पर महाबल ऐसा श्रद्धाहीन राजा कैसे विश्वास कर सकता है और बिना विश्वासके वह विवाद कैसे वेजोड़ सिद्ध होता है।

आगे आपने गंधिला देशकी बावत कथामें लिखा है कि " वहां कोई मिथ्यादृष्टि नहीं होता परन्तु आदिपुराणमें यह बात नहीं है। आदिपुराणमे लिखा है ' न यत्र परलिंगानामस्ति जातु विदुद्भवः ' अर्थात् परलिंग नहीं होता। परलिंगका अर्थ बाह्य मिथ्यादृष्टि है अर्थात् वहांपर बाह्य मिथ्यादृष्टि नही थे। जैसे कि आप बाह्य मिथ्यादृष्टि नहीं है अर्थात् बाहरसे जैनी ही नाम धराते हैं मिथ्यादृष्टि नही परंतु आपका अंतरंग कितने गाढ मिथ्यात्वसे भरा है इसी तरह वहां बाह्य मिथ्यात्वका निषेध करनेसे कुछ अंतरंग मिथ्यादृष्टियोंका अभाव सिद्ध नहीं होता। इसतरह कथा भी आपने आपनी मनगढंत लिखकर लोगोंको धोखा दिया है। अर्थात् एक तो आपने कथा मिथ्या लिखी और लोगोको धोखा दिया कि आदिपुराणमें ऐसा ही लिखा है फिर उसी झूंठी मनगढ़ंत कथाकी समीक्षाकी क्या एक वकीलको ऐसा करना शोभा देता है। परंतु किया क्या जाय। ' चिरंतनाभ्यासनिबंधनेरिता गुणेषु दोषेषु च जायते मतिः ' इसके अनुसार आपको ऐसा करनेका अच्छा अभ्यास है। यह तो सब जानते है कि आप काव्य वा संस्कृत भाषाके मर्मज्ञ नहीं है ऐसी हालतमें अर्थ न समझना और अपनी मनगढंत कुछ भी कर लेना जिससे कि केवल लोग धोखेमें पड़जांय। यही हाल आपने समाधिमरणके बारेमे लिखा है। जहांपर यह कथन है वह नगरीका वर्णन है लोगोका नही नगरीका वर्णन करते समय जो लोगोंका वर्णन किया है वह आपेक्षिक वा नयात्मक है जैसे किसीने कहा बम्बईमें बिना छतरीके कोई बाहर नहीं निकलता। अमेरिकामें सब स्वतंत्र है यह सब कथन बाहुल्यको लेकर कहा जाता है। इन सब विषयोंको जाननेके लिये वावूसाहबको अलंकारशास्त्र और काव्यशास्त्र पढ़ना चाहिये तब कहीं समझमें आ

आदिपुराण समीक्षाकी परीक्षा ।

प्रथम भाग ।

लेखक—

पंडित लालारामजी शास्त्री, इंदौर,

सभासद—शास्त्रीय परिषद् ।

श्रीमान् रायबहादुर दानवीर सेठ तिलोकचन्द कल्याणमलजी
इंदौर द्वारा भेट ।

प्रकाशक—

माणिकचन्द बैनाड़ा, बम्बई ।

प्रति १००० } जेठ वदी प्रतिपदा वीर नि. सं० २४५४ { मूल्य—धर्म प्रचार ।

उपोद्घात

कुछ दिन हुए बाबू सूरजभानुजी वकीलने आदिपुराणकी समीक्षा लिखी है। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि आदिपुराण एक सालंकृत महाकाव्य है। इसलिये यह भी मानना पड़ता है कि उसकी समीक्षा काव्यशास्त्र और अलंकारशास्त्रका अच्छा जानकार ही कर सकता है। इसके सिवाय धर्मशास्त्रके अनुसार वह प्रथमानुयोगका मुख्य ग्रंथ है इसलिये उसकी समीक्षाके लिये धर्मशास्त्रका भी पूरा ज्ञान चाहिये। बाबू सूरजभानुजी वकील है इसलिये उनमे लिखने तथा बोलनेकी शक्ति भले ही हो परंतु इतने दिनके परिचयसे जैन समाज यह भली भांति जानती है कि वे न तो काव्यशास्त्रके अच्छे पंडित है न अलंकारशास्त्रके विद्वान् है और न धर्मशास्त्रके अच्छे मर्मज्ञ है। इसलिये यह कहनेमे कोई अत्युक्ति नही है कि वे उसकी समीक्षा करनेके किसी भी तरह पात्र नहीं है। उन्होने समीक्षा करते समय धार्मिक सिद्धातोंमें कितनी भूले की है, काव्य और अलंकारशास्त्रका कितना दुरुपयोग किया है और किसतरह लोगोको धोखेमे डालना चाहा है यह बात हमने प्रत्येक समीक्षाकी परीक्षा करते समय लिखी है। यहांपर हम केवल इतना ही बतला देना चाहते है कि वर्तमान समयमें बाबूसाहबको ऐसी समीक्षाओकी क्या आवश्यकता हुई। कुछ दिन पहिले बाबूसाहबने अपने लेखोमे स्पष्ट लिखा था कि जैनियोमे १६ संस्कार जैन शास्त्रोंके अनुसार प्रचलित कर दो और जैन शास्त्रोंकी श्रद्धा इनके हृदयमे घुसा दो। जैन शास्त्रोंके अनुसार प्रवृत्ति फैलानेकी कोशिश बेधड़क होकर करो। इसके थोड़े ही दिन बाद वे ही बाबूसाहब उसी आदिपुराणकी समीक्षा कर उसके वक्तव्यको बनावटी सिद्ध करनेकी चेष्टा करने लगे इसका कोई न कोई खास और प्रबल कारण अवश्य होना चाहिये। वर्तमान समयमे चारो ओर स्वराज्यकी धूम मच रही है। उसको प्राप्त करनेके लिये कुछ लोगोंका ऐसा ख्याल है कि भारतवर्षमें जबतक धर्मके ढकोसले है और जबतक भिन्न भिन्न जातियोंका अस्तित्व है जबतक पश्चिमी सभ्यताका जोरशोरसे प्रचार नहीं होता तबतक स्वराज्य मिल नही सकता। भारतवर्षमें भिन्न भिन्न धर्मोंका तथा भिन्न भिन्न जातियोका अस्तित्व इतना प्रबल है कि उसका हटाना कठिन ही नहीं किंतु असंभवसा प्रतीत होता है। तथापि अपने अपने उद्देशकी सिद्धि सब कोई करना चाहता है इसी नीतिके अनुसार बाबूसाहबने पुराणोकी समीक्षा करना प्रारंभ किया है ऐसा जान पड़ता है। वे एकदम धर्मके अस्तित्वको हटा नहीं सकते, जातिपांतिको दूर कर नहीं सकते, इसलिये धर्मग्रंथोको मनगढंत और बनावटी बतलाकर तथा झूठमूठ ही चारणऋद्धिधारी ऐसे उत्तम तपस्वियोके शिरपर चालाकी ऐसे दूषित कलंक लगाकर उनसे लोगोंकी रुचि हटानेका प्रयत्न किया है। यही कारण है कि वे कुछ वर्ष पहले तो इसी आदिपुराणको प्रमाण मानकर उसमे कही हुई विधियोके संस्कारोके प्रचारसे जैनियोका कल्याण होना बतलाते थे और आज वे ही बाबूसाहब उसीको मनगढ़ंत बतला रहे है।

हमारी समझमें ऐसे लोगोंको कुछ दिन तक स्वराज्यवादियोंके नेता महात्मा गांधी, विपिनचन्द्रपाल और लोकमान्य तिलकके विचारोंका मनन करना चाहिये। महात्मा गांधीने ता. ३०–३–१८ को जो इंदौरकी नगरव्याख्यानमालामें व्याख्यान दिया था उसमें उन्होंने स्पष्ट कहा था कि पश्चिमीय सभ्यताका अनुकरण करनेसे भारतवर्षको कभी स्वराज्य नहीं मिल सकता। **भारतवर्षकी नीव धर्मपर लगी हुई है** इसलिये प्राचीन सभ्यताके अनुसार धर्मका पालन करते हुए ही हमको स्वराज्य मिल सकता है। मि. पालने भी यही बात कही थी कि भारतवासियोंका मुख्य ध्येय मोक्ष है और स्वराज्य उसका साधन है। लोकमान्य तिलकका भी यही मत है, इसलिये धर्मकी जड़ काटनेसे कभी स्वराज्य नहीं मिल सकता है। यह बात प्रत्येक भारतवासीको स्वीकार करनी ही पड़ती है।

बाबूसाहबने 'वत्थु सहावो धम्मो' (वस्तुस्वभावो धर्मः), को मुख्य मानकर ही कथा ग्रंथोंको झूठा और बनावटी ठहरानेका प्रयत्न किया है परन्तु उनकी लिखी समीक्षाके पढ़नेसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि आपने 'वत्थु सहावो धम्मो' का ही गला घोंट दिया है। अथवा उसे उठाकर खूंटीपर टांग दिया है। क्योंकि वस्तु अर्थात् तत्त्व सात हैं उनमें आस्रव और बंध भी तत्त्व या वस्तु है। उनमेंसे प्रत्येकके शुभ और अशुभ ऐसे दो दो भेद होते हैं। शुभ—आस्रव अथवा किसी अपेक्षासे शुभबंधका फल स्वर्गादिकी सामग्री है और अशुभ आस्रव अथवा अशुभ बंधका फल नरकादिके दुःख हैं। यह आस्रव वा बंधका स्वाभाविक धर्म है। परंतु समीक्षामें इसीको आपने अन्याय बतलाया है। अथवा बिल्कुल उल्टा बतलाया है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि आपने 'वत्थु सहावो धम्मो' का भी खंडन किया है और उसे अन्याय बतलाया है।

आपने अपना उद्देश सिद्ध करनेके लिये मोक्षमार्गप्रकाशमेंसे स्वर्गीय श्रीमान् पं. टोडरमलजीके कुछ वाक्य उद्धृत किये है। जिस प्रकार आपने जाति और वर्णविचार शीर्षक लेखमें कुछ आदिपुराणके श्लोक उद्धृत किये थे उन श्लोकोंके आगे पीछेसे संबंध रखनेवाले श्लोक छोड़ दिये थे और फिर उनका मनमाना अर्थकर अपना स्वार्थ खींच लिया था उसीप्रकार आपने यहां भी श्रीमान् पं. टोडरमलजीके वाक्योंका दुरुपयोग किया है। पंडितजीने जिस अपेक्षाको लेकर वे वाक्य लिखे हैं जो कि ऊपर नीचेका कथन वांचनेसे वह अपेक्षा स्पष्ट समझमें आ जाती है परंतु बाबूसाहबने उस अपेक्षाको छोड़कर जितनेसे अपना मतलब निकलते देखा उतने वाक्य ले लिये हैं।

जिस मोक्षमार्गप्रकाशकी दुहाई देकर आपने इन कथाग्रंथोंको झूठा ठहराया है जैसा कि आपने लिखा है "मोक्षमार्गप्रकाशग्रंथके इस कथनसे स्पष्ट सिद्ध है कि कथाग्रंथ किसी तरह भी श्रीसर्वज्ञदेवभाषित नहीं हो सकते और न जिनवाणी माने जा सकते हैं............सच तो यह है कि ऐसे कथाग्रंथोंको भी जिनवाणी बताना जिनमें इस प्रकार असत्य कथन भरा हुआ है वास्तवमें जिन वाणीको दूषित करना और उसकी महिमा घटाना है" इत्यादि, उसी मोक्षमार्गप्रकाशमें इन्हीं कथाग्रंथोंके विषयमें लिखा है। "प्रथमानुयोगविषैं जो मूलकथा हैं ते तो जैसी हैं

तैसी ही निरूपित है अर तिन विषै प्रसंग पाय व्याख्यान हो है सो कोई तो जैसाका तैसा हो है कोई ग्रंथकर्ताका विचारकै अनुसार होय परंतु प्रयोजन अन्यथा न हो है। ताका उदाहरण जैसे तीर्थंकरदेवनिके कल्याणकनि विषैं इंद्र आया यह कथा तो सत्य है। बहुरि इंद्र स्तुति करी ताका व्याख्यान किया सो इंद्र तौ और ही प्रकार स्तुति कीनी थी अर यहां ग्रंथकर्ता और ही प्रकार स्तुति कीनी लिखी। परंतु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा न भया। बहुरि परस्पर किनहूकै बचनालाप भया तहां उनके और प्रकार अक्षर निकले थे यहां ग्रंथकर्ता अन्य प्रकार कहे परंतु प्रयोजन एक ही दिखावै है।"

.........................ऐसे ही अन्यत्र जानना यहां कोऊ कहै अयथार्थ कहना तो जैन शास्त्रनि विषै संभवै नाहीं। ताका उत्तर अन्यथा तौ वाका नाम है जो प्रयोजन औरका और प्रगट करै, जैसे काहूकों कह्या तू ऐसे कहियो वानै वे ही अक्षर तो न कहे परंतु तिसही प्रयोजन लिये कह्या ताकौं मिथ्यावादी न कहिये ऐसैं जानना जो जैसाका तैसा लिखनेकी संप्रदाय होय तो काहूने बहुत प्रकार वैराग्य चितवन किया था ताका वर्णन सब लिखे ग्रंथ वधिजाय अर किछू न लिखै तो भाव भासै नाहीं तातै वैराग्यके ठिकानै थोड़ा बहुत अपना विचारके अनुसार वैराग्य पोषता ही कथन करै सराग पोषता न करै तहां प्रयोजन अन्यथा न भया तातैं याकौ अयथार्थ न कहिये ऐसैं ही अन्यत्र जानना।" इसी मोक्षमार्गप्रकाशमे आगे चलकर लिखा है "कोई जीव कहै है प्रथमानुयोगविषैं श्रृंगारादिका वा संग्रामादिकका बहुत कथन करैं तिनके निमित्ततैं रागादिक वधि जाय तातै ऐसा कथन न करना था ऐसा कथन सुनना नाहीं ताकौं कहिये है। कथा कहनी होय तब तौ सर्व ही अवस्थाका कथन किया चाहिये बहुरि जो अलंकारादि करि वधाय कथन करै है सो पंडितनिकै वचन युक्ति लिये ही निकसैं" अर जो तू कहेगा संबंध मिलावनेको सामान्य कथन किया होता वधाय करि कथन काहेको किया ताका उत्तर—जो परोक्ष कथनको वधाय कहे विना वाका स्वरूप भासै नाहीं बहुरि पहिले तौ भोग संग्रामादि ऐसैं किये पीछैं सर्वका त्याग करि मुनि भये इत्यादि चमत्कार तब ही भासैं जब वधाय कथन कीजिये बहुरि तू कहै है ताकै निमित्ततै रागादिक वधि जाय सो जैसे कोऊ चैत्यालय बनावै सो वाका तौ प्रयाजन तहां धर्मकार्य करावनेका है अर कोई पापी तहां पापकार्य करै तो चैत्यालय बनावानेवालेका तौ दोष नहीं तैसै श्रीगुरु पुराणादिविषै श्रृंगारादि वर्णन किये तहां उनका प्रयोजन रागादि करावनेका तौ है नही धर्मविषैं लगावनेका प्रयोजन है अर कोई पापी धर्म न करै अर रागादिक ही वधावै तौ श्रीगुरुका कहा दोष है" इससे स्पष्ट सिद्ध है कि श्रीमान् पं. टोडरमलजीने कथाग्रंथोंको उतना ही महत्व दिया है जितना कि द्रव्यानुयोग आदि अन्य शास्त्रोंको। बाबूसाहबने पूर्वापर संबंधको छोडकर केवल अपने मतलब लायक कुछ थोडेसे वाक्य उद्धृत कर लिये हैं परंतु ऐसा करना उनके कथनका दुरुपयोग करना है।

आगे आपने लिखा है "उपरोक्त प्रकार जैनियोमे जिन जिन मिथ्या प्रवृत्तियोंकी शिकायत श्रीमान् टोडरमलजीने मोक्षमार्गप्रकाशमें की है उनके प्रचलित होजानेका कारण कथाग्रंथोंके पठ-

नपाठनके सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता है । " इसके उत्तरमें हम श्रीमान् पंडित टोडरमल-जीके ही कुछ वाक्य उद्धृत कर देना उचित समझते हैं उन्होंने लिखा है "बहुरि तू कहैगा जिनके शृंगारादि कथन सुने रागादि होय आवे तिनकौ तौ वैसा कथन सुनना योग्य नाहीं ताका उत्तर—जहां धर्मका तो प्रयोजन अर जहां तहां धर्मकौं पोषैं ऐसे जैन पुराणादिक तिन विषैं प्रसंग पाय शृंगारादिकका कथन किया ताकौ सुने भी जो बहुत रागी भया तो वह अन्यत्र कहां विरागी होगा पुराण सुनना छोडि और कार्य भी ऐसा ही करैगा जहां बहुत रागादि होय तातैं वाकै भी पुराण सुनें थौड़ा बहुत धर्मबुद्धि होय तो होय और कार्यनितैं यह कार्य भला ही है " इससे स्पष्ट सिद्ध है कि कथाग्रंथोंसे कुछ बुरी बातोंका प्रचार नहीं होता है। बुरी बातोंका प्रचार तो उन ग्रंथोको न माननेवाले उच्छृंखल लोगोंसे होता है । कथाग्रंथोंका प्रयोजन तो पुण्यपापका फल दिखला कर सदाचारकी प्रवृत्ति करना है यदि कोई श्रोता जोंकके समान हो और वह उलटा ही चलने लगे तो उसका दुर्भाग्य !

अंतमें हम बड़ी नम्रताके साथ यह प्रगट कर देना भी उचित समझते हैं कि समीक्षामें बाबूसाहबने कई जगह तो अर्थका दुरुपयोग किया है कई जगह अर्थ बदल दिया है कई जगह कुछ अंश छिपाकर समीक्षा की है और कई जगह मनगढंत भाव लिखकर अपने हार्दिक भाव प्रगट किये है । हमने परीक्षा करते समय स्वतंत्रतापूर्वक सबको दिखलाया है । आशा है पाठकगण इसका मनन करेंगे और तथ्य अंशको ग्रहण कर अपना भ्रम निवारण करेंगे ।

लालाराम जैन ।

आदिपुराण समीक्षाकी परीक्षा।

जयवर्माकी कथाकी समीक्षाकी परीक्षा।

आपने लिखा है "भोगोंकी इच्छा कर मुनिपद भ्रष्ट किया" परंतु भोगोंकी इच्छा करनेसे मुनिपद कैसे भ्रष्ट होता है सो बतलाया नहीं यह स्पष्ट है कि भ्रष्ट 'शब्दसे द्रव्यचारित्रकी अशुद्धि ली जाती है सो आगे चलकर आपने ही पेज २० लाइन ३ में वज्रजंघकी कथामें जयवर्मा मुनिको द्रव्यलिंगी लिखा ही है। क्या भोगोंकी इच्छा करने मात्रसे उसका वह द्रव्यलिंग भी नष्ट हो गया यदि हो गया तो सप्रमाण सिद्ध करना चाहिये। हां यह बात अवश्य है कि परिणामोंका परिणमन वा चंचलता तो सदा बनी ही रहती है परंतु उससे द्रव्यलिंग कभी भ्रष्ट नहीं हो सकता।

आगे चलकर आपने भोगोंकी इच्छासे दुर्गतिके कर्म बांधे बतलाया है परंतु न तो यह बात कथामें ही लिखी है और न किसी तरह सिद्ध होती है तपश्चरण करते हुए उसका फल स्वरूप कुछ थोडासा मांग लेना निदान है। निदान करते समय उसके परिणाम कुछ तपश्चरणसे हटते नहीं ऐसी अवस्थामें उससे दुर्गति कैसे बंध सकती है दुर्गति तो पापोंसे बंधती है। क्या बाबूसाहब यह बात सिद्ध कर सकते हैं कि निदान करनेसे दुर्गति बंधती है?

इससे यह भी सिद्ध होता है कि तपश्चरणका थोडासा फल मांग लेना ही निदान है तो फिर उसका मिल जाना भी असंभव नहीं है किंतु नितांत संभव है क्योंकि हजार रुपयेके मूल्यकी वस्तुके आठसौ सातसौ रुपये हर कोई दे सकता है और इसीलिये वह फल मिलता भी है। अतएव निदान पूरा होनेके लिये किसी भी कारणके बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि बाबूसाहबको यदि कुछ भी विचारदृष्टि होती तो ऊपर लिखा हुआ कारण वहीं पर मिल जाता कारण मौजूद रहते हुए भी आपको कारण पूछनेकी आवश्यकता हुई इसका हमें बड़ा खेद है। क्या समीक्षककी बुद्धिकी इतनी ही दौड़ होनी चाहिये।

अच्छा प्रभाव न पड़ना आपने केवल लिख दिया है उसे घटित कर दिखलाया नहीं केवल आकाशका फूल सुगंधित होता है इतना लिख देने मात्रसे आपका दिमाग तर नहीं हो जायगा। अच्छा सुनिये सुननेवालों पर इस कथाका क्या असर पडता है, इसे हम बतलाये देते हैं। यह तो मानना ही पडता है कि एक ग्रंथमें सब विषय नहीं लिखे जा सकते जो विषय जिस ग्रंथमें नहीं रहते वे ग्रंथांतरोंसे लगाने पडते हैं इसीके अनुसार पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें जो 'येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति, अर्थात् रागके जितने अंश रहते हैं उन्हींसे कर्मोंका बंध

होता हैं यह लिखा है। वह इसी कथापरसे अच्छी तरह सुघटित होता है। देखिये तपश्चरणकी महिमा अचिन्त्य है परन्तु निदान रूप राग परिणाम होनेसे उसमेकी अचिन्त्यता नष्ट हो कर बहुत थोडी महिमा रह गई फिर भी तपश्चरण व्यर्थ नहीं गया वह स्वर्गादिका कारण अवश्य हुआ इसलिये निरीह तपश्चरण करना सर्व श्रेष्ठ है क्या श्रोतागण इस कथापरसे यह बात नहीं समझ सकते ! परंतु वसंत ऋतुके रहते हुए भी करीलो पर पत्ते न आवे इसमे हम लाचार है।

२—आगे चलकर आप लिखते है कि 'भोगोंकी इच्छा करते हुए प्राण छोड़े और उससे ऐसा जन्म पाया जहां खूब भोगोपभोग मिले इससे सुननेवालों पर बुरा प्रभाव पडता है।' यहां भी बाबूसाहबने बतलाया नहीं कि क्या बुरा प्रभाव पडा ! क्या अंत्यजोंके साथ बैठकर खानेसे स्वर्गकी प्राप्ति बतलाई। या विधवासंगम व मद्यमांस सेवन अथवा दगाबाजी धोखेबाजी कर धन इकट्ठा करनेसे स्वर्गप्राप्ति बतलाई। बाबूसाहबने बतलाया नहीं कि वे बुरा प्रभाव किसको मानते है ! तपश्चरण करनेसे शुभोपयोग, शुभोपभोगसे शुभास्रव और शुभास्रवसे भोगोपभोगकी प्राप्ति मिलती है यह जो इस कथाका सारांश अर्थात् आस्रव तत्त्वका स्वरूप समझ लेना है क्या यही बुरा प्रभाव है ? यदि बाबूसाहबकी समझमे यही बुरा प्रभाव है तो फिर उस समझकी बलिहारी है।

३—मुनिके निदान करते ही सांपका निकल आना और काटखाना जिससे भोगोंकी इच्छा करते हुए प्राण त्याग होकर अगिले जन्ममे महान् भोग मिलगये यह बाबूसाहबको बहुत ही खटकता है। इसमे तपश्चरणका फलस्वरूप भोगोपयोग मिले यह तो ऊपर लिखा ही जा चुका है अब निदान करते ही सांपका निकलकर काटना और प्राण रहित होनां यह आकस्मिक घटना आपको बहुत खटकती है क्यो न खटके लेख तो आप सर्वथा बनाबटी लिख रहे है अन्यथा संसारमे ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसे दश बीस आकस्मिक घटनाएं न भोगनी पडे परंतु बाबूसाहब इस तरह लिख रहे हैं मानो वे साक्षात् वहां मौजूद हो और बतौर साक्षीके कह रहे हो कि ऐसा नही हुआ। बाबूसाहब ! ये घटनाएं सब ज्योकी त्यो लिखी गई है आपकी इच्छानुसार इनमें कुछ रद्द बदल नहीं हुआ है और इसीलिये शायद आपको खटकती है कदाचित् उनका मरण किसी दूसरी तरहसे होता और उसी तरह लिखा जाता तो भी आपका यह प्रश्न तो फिर भी खड़ा रहता कि उनका मरण ऐसा ही क्यों हुआ। क्योकि इस प्रश्नके सिवाय आपका कुछ वश ही नहीं चलता क्या बाबूसाहब इस बातसे अपरिचित है कि संसारमे ऐसी आकस्मिक घटनाएं अनेक हुआ करती है। सांपका निकलना असंभव नहीं, काटना असंभव नहीं, और उस विषसे मर जाना असंभव नहीं, फिर समझमे नहीं आता कि इसमे कौनसी असंभव बात है जिससे बाबूसाहबके दिमागशरीफमें यह कथा बनावटी मालूम होती है कुछ असंभव बाते बतलानी तो चाहिये थीं।

महाबलकी कथाकी समीक्षाकी परीक्षा।

१–समीक्षामे आप लिखते हैं कि मेरु पर्वतपर जो मुनि मिले थे वे अवधि ज्ञानी थे परन्तु उन्होने यह भी बताया कि राजा महाबल भव्य है और वह स्वयंबुद्धकी इंतिजारी कर रहा है यह लिख कर आप पूछते हैं कि–क्या अवधि ज्ञानसे ये बाते जानी जा सकती है या नहीं इसका

निश्चय सिद्धान्त ग्रंथोसे कर लेना चाहिये। बाबूसाहब समीक्षक तो बन गये परन्तु उन्हें सिद्धान्त ग्रंथोंका कितना ज्ञान है यह उनके ऊपरके वाक्यसे माळूम होता है जब बाबूसाहब जैन ग्रंथोंमें इतनी अजानकारी रखते है तो भी वे उनकी समीक्षा करनेपर उतारू हो गये है और कुछ न कुछ अट्टसट्ट लिख मारा है। यह उनका कितना दुःसाहस और धृष्टता है। समीक्षकोंको तो समीक्षा कर निश्चित सिद्धान्त लिखने चाहिये थे परंतु अजानकारी वा अज्ञान होनेसे वे और भी संदेह सागरमें डूब गये हैं। उनको चाहिये था कि कमसे कम जिनकी वे समीक्षा कर रहे है उन विषयोंको तो अच्छी तरह जानलेते परंतु उन विषयोंका ज्ञान हो जानेपर फिर शायद बाबूसाहबको समीक्षक बननेका सौभाग्य प्राप्त न होता यह समीक्षक बननेका सौभाग्य कहिये या दुर्भाग्य, आपको जैन ग्रंथोंकी अजानकारीसे ही मिला है। आपको उचित था कि ऐसी हालतमें जब कि आपको इस बातका निश्चय नहीं था, तब एक चिट्ठी लिखकर विद्वानोसे पूछते या सिद्धान्तग्रंथ देख कर निर्णय करलेते। परंतु आप इतनी तकलीफ उठाना चाहें तब न आपको तो केवल लिखनेकी धुन समाई है और इसी लिये अटरम सटरम लिखकर कलियुगके महर्षि बनना चाहते हैं। जनाबमन् जब जिनसेन ऐसे महर्षिने ये बातें लिखीं हैं तब प्रमाण हीं है। क्या जिनसेनने कहींभी सिद्धान्तके विरुद्ध लिखा है सिन्द्धातके सभी ग्रंथ इसके अनुकूल हैं। इनको अप्रमाण साबित करनेके लिये आपने भी तो किसी ग्रंथांतरका प्रमाण नहीं दिया है इससे साबित है कि आपको ग्रंथांतरोंका वा सिद्धान्त ग्रंथोंका कुछ भी बोध नहीं है और जैन धर्मकी मोटी मोटी बातें भी आपको माळूम नहीं हैं। इसलिये आपकी समीक्षाका भी उतनाही मूल्य है जितना कि किसी अज्ञान बालकके बचनोंका।

२—आगे आप लिखते है मुनिराजका स्वयंबुद्धको यह चालाकी सिखाना अच्छा नहीं लगता. बाबू साहबने इसे चालाकी बताया है परंतु चालाकीका लक्षण नहीं बतलाया अथवा यों कहना चाहिये कि जन्मभर चालाकी करते करते बाबू साहबको सब संसार चालाक दीखता है अथवा वही चालाकी चलनेके लिये आप यहाँ भी चूके नहीं है। जनाबमन् स्वार्थवश जहाँ कुछ धोखेबाजी करनी पडती है या छलकपट करना पड़ता है वहीं चालाकी शब्दका प्रयोग होता है। मुनिराजने स्वयंबुद्धको कुछ छलकपट करने या धोखेबाजी देनेके लिये नहीं कहा जिससे उसे चालाकी कहा जाय। किंतु अवधिज्ञानसे उन्होंने समझा कि इस उपायसे उसके चित्तपर जैन धर्मका अच्छा प्रभाव पडेगा। और वह समझेगा कि जैनियोंके साधु या जैनधर्मको धारण करनेवाले कोई भी पुरुष ऐसे भी हैं जो इतनी गुप्त और अप्रत्यक्ष बातोंको भी जान सकते हैं। यही प्रभाव डालनेके लिये जैसा हुआ था और उन स्वप्नोंका जैसा फल मुनिराजने समझा, उसे पहिले ही कह देनेके लिये मुनिराजने स्वयं बुद्धको कहा था। इससे मुनिराजका कुछ स्वार्थ सिद्ध नहीं हुआ। चालाकी दो प्रकारकी है एक क्रियात्मक और दूसरी वचनात्मक, वचनात्मक चालाकी झूंठका भेद है और क्रियात्मक चोरीका। चोरी झूट आदि पाप प्रमत्तयोगसे होते है। मुनिराजके ऐसा प्रमत्तयोग कोई नहीं था इसलिये उनके वचनको चालाकी कहना महा झूंठ बोलना है। मुनिराजने केवल महाबलका कल्याण करनेके लिये स्वप्नोंका फल बतलाकर और उन फलोंको सत्यसिद्ध करनेके

लिये स्वप्नोंको पहिले कह देने रूप हेतु बतलाकर उसे आत्मकल्याणके दृढ़ करनेका उपदेश दिया था । चालाकीका नहीं, चालाकी तो आप करते है । आपका मंतव्यतो यह है कि जबतक धर्मके ढकोसले है तबतक सब जातियाँ एकाकार नहीं हो सकतीं और बिना एकाकार हुए स्वराज्य नहीं मिल सकता । परंतु इस मंतव्यको तो आपने छिपा रक्खा है और ऊपर लिखे अनुसार उन ग्रंथोंकी अजानकारी रखते हुए भी झूठमूठकी अपनी जानकारी दिखलाते हैं और धर्मको ढकोसला बतलानेके लिये ही हितैषीकी दुहाई देकर समीक्षक बनते है। ऐसी मिथ्या बातें और चालाकी उन मुनिराजके बचनोमे कहीं नही मिलती ।

३—आगे चलकर आपने लिखा है कि 'इस कथाका फल सिवाय इसके और कुछ नहीं निकलता कि जो राजा सारी उमर भोगोमें फँसा रहा मरते समय समाधिमरण करनेसे स्वर्गमें पहुँच गया इससे आपको यही शिक्षा मिली है कि सारी उमर खूब मौज उड़ाओ और मरते समय धर्मसेवन करलेनेसे अगिले जन्ममें सब कुछ हो जायगा।' परंतु बाबूसाहबको अभी यह मालूम नहीं है कि भोग क्या है और उसका उपभोग किसतरह किया जाता है। पुण्यकर्मके उदयसे भोगोपभोगकी (इंद्रियोंके विषयोंकी) सामग्री मिलना भोग है। राजा महाबलको वह सामग्री तपश्चरणजन्य शुभोपयोगसे होनेवाले शुभ बंध वा पुण्यकर्मोंसे मिली थी। जो भोगोपभोग सामग्री तपश्चरण आदि मंद कषायोंसे मिलती है वह मंद कषायोंसे ही न्यायपूर्वक सेवन की जाती है। राजा महाबलने जो कुछ भोगोपभोगोंका सेवन किया था वह सब न्यायपूर्वक और मंद कषायसे ही किया था। यह कहीं नहीं लिखा है कि उसने कुछ अन्यायपूर्वक अखाद्य खाद्योंका सेवन किया हो या पांचों पापोंका सेवन किया हो या सप्त व्यसनका सेवन किया हो। उसने जो कुछ किया वह न्यायपूर्वक किया और मंद कषायोंसे किया। मंद कषाय होनेसे सदा शुभास्रवपूर्वक शुभ-बंध होता है। जहां मंद कषाय नहीं है तीव्र कषाय है वहां सब तरहका तो अन्याय होता है और अशुभास्रवपूर्वक पाप बंध होता है । शुभ कर्मबंधका अर्थात् पुण्यकर्मोंका फल सिवाय उत्तम भोगोपभोगके और कुछ हो नहीं सकता। बाबूसाहबने इसी बातको मिथ्या ठहरानेके लिये आगे भी बहुत कुछ लिखा है परन्तु उन्हें यहां यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि मोक्षकी प्राप्ति संवर और निर्जराका फल है। शुभास्रवका फल तो सिवाय इसके और कुछ नहीं हो सकता. यदि हो सकता होता तो बाबू साहब भी अवश्य दिखलाते।

आगे बाबू साहबने लिखा है कि 'सारी उमर मौज उड़ाओ, हम तो नहीं समझते कि न्यायपूर्वक मंद कषायसे भोगोपभोगोका सेवन करना मौज उड़ाना कहलाता हो। हम बाबूसाह-बसे ही पूछते हैं कि मौज उडाना समर्याद है या अमर्याद. यदि समर्याद है तब तो उसमे द्रव्य क्षेत्र काल भाव सबकी मर्यादा शामिल है और इस तरह समर्याद भोगोपभोगोंका सेवन करता हुआ अपने अपने नियत समयमें नियत द्रव्य क्षेत्र काल भाव संबंधी सब काम करता है। धर्मसे-वन भी करता है राज्यकार्य भी करता है और समयानुसार भोगोपभोग सेवन भी करता है परंतु उसका वह समर्यादकृत्य धर्मका विघातक नहीं होता (यह बात आगे सप्रमाण सिद्ध की

गई है) हां यदि आप अमर्याद अर्थ लें तो भले ठीक हो क्योंकि अमर्यादमें सब तरहका अन्याय और सब तरहका पाप आ जाता है जिसका उल्लेख इस कथामे बिल्कुल नहीं है । यह तो केवल बाबूसाहबकी अंतरंग भावना है जो कि इस लेखसे आपने सबको प्रगट कर दी है । आपने न्याय अन्यायका भेद उठाकर 'मौज उड़ाना' इस अन्याय भरे साधारण शब्दोंसे केवल अन्यायका उपदेश देना चाहा है जो कि ग्रंथमें वा कथामें कहीं भी नहीं है ।

आगे चलकर आपने वर्षगांठके उत्सवपर धर्मका उपदेश, मंत्रियोका विरोध और बहस बेजोड़ बतलाई हैं और इसीपरसे आपने कथाका बनावटी होना मान लिया है । परंतु बाबूसाहबको यह भी मालूम नहीं है कि वर्षगांठके उत्सवपर क्या होता है । वर्षगांठके उत्सवपर पहिले वर्षके कृत्योंकी आलोचना, आगेके लिये शुभभावनाओंका चाहना और धर्मके प्रभावसे यह सब विभूति मिली है इसलिये धर्मसेवन सदा करते रहना चाहिये यही विषय कहा जाता है । परंतु आपको ये सब बातें बेजोड़ मालूम होती हैं । शायद वर्षगांठके उत्सवपर सप्तव्यसनका सेवन या अन्त्यजोंके साथ खाना विधवाविवाहप्रचार और किसी तरहका अन्याय आपको सुजोड़ मालूम होता होगा परंतु आपने वह भी दिखलाया नहीं है इसीपरसे आपने कथाको भी बनावटी कह डाला । मालूम होता है आप वहां उपस्थित थे जिससे आपको मालूम है कि वहां न तो कोई मंत्री था न कुछ उपदेश हुआ और न कुछ बहस ही हुई । यदि आप वहां उपस्थित नहीं थे तो इस कथाके बनावटी होनेका सबूत भी देना चाहिये । भला बतलाइये तो इसमे कौनसी बात असंभव है । क्या राजाके मंत्री नही थे ? क्या वे बहस नहीं कर सकते थे ? गूंगे थे ? क्या बात थी ? सो बतलाना भी तो चाहिये । या केवल बाबावाक्यं प्रमाणंके अनुसार केवल लिख देने मात्रसे आपकी बात मान ली जाय ! क्या ऐसी बेतुकी और असंबद्ध बातोंपर कोई भी सहृदय मनुष्य विश्वास कर सकता है ।

आगे चलकर अपने लिखा है कि राजा महाबलके ही वंशमें चारों ध्यानोंके उदाहरण क्यों बन गये । इसके उत्तरमे पूछा जा सकता है कि बाबू सूरजभानुजी बाबू जुगुलकिशोरजी और बाबू ज्योतिःप्रसादजी ये तीनों ही नास्तिक देववंदमें ही क्यों हुए ? अलग अलग शहरोंमें क्यों नहीं हुए ? क्या आपके पास इसका कोई उत्तर है ? यदि है तो उसे ही वहां लगा लीजिये ? जनाबमन् ! बाबूसाहब ! राजा महाबलका वंश बहुत बड़ा और उत्तम था उसमेंसे अनेक लोग मोक्ष गये, अनेक स्वर्ग गये, अनेक नरक गये और अनेक ही मनुष्य वा तिर्यंच हुए । उन्हींमेंसे छांट छांट कर स्वयंबुद्धने दिखलाये थे क्योंकि संतानपर पूर्वजोंका जितना असर होता है उतना दूसरेका नही होता । इसमें कोई असंभव बात न तो है और न आपने बतलाई ही है अभी भी बड़े कुटुंबमें सब तरहके और सब प्रकृतिके मनुष्य होते हैं दो चार सगे भाई भी भिन्न भिन्न प्रकृतिके होते है और भिन्न भिन्न क्रियाओंके उदाहरण बनते हैं ऐसे एक नहीं हजारो कुटुंब अब भी वर्तमानमें मौजूद हैं परंतु उनको देखकर बाबूसाहबको आश्चर्य नहीं होता और हो भी क्यों क्योंकि आपको तो केवल लोगोंको बहकाना है ।

इसके बाद आपने " मंत्रियोंके वादविवादको बेजोड़ बतलाया है और उसका कारण महाबलके बापकी दीक्षा लेना बतलाया है क्या कोई बुद्धिमान् इस बातको मान सकता है कि महाबलके बापने दीक्षा ले ली इससे बहस बेजोड़ हो गई ।" क्या आप आज नहीं देखते हैं कि बाप बहुत धर्मात्मा होता है और बेटा महा नास्तिक रंडीबाज होता है फिर वह सगे बापकी भी नहीं सुनता, हम नाम लेकर किसीका जी नहीं दुखाना चाहते परंतु पाठकोंको ऐसे बहुतसे उदाहरण मिल जायंगे। वादविवादको बे जोड़ बतलानेके लिये आपने दूसरा कारण दादाने देव हो कर महाबलको जैन धर्मका उपदेश देना बतलाया है। परंतु बाबूसाहबको वर्तमानमें सैकड़ों ऐसे सपूत मिलेंगे जो दादाके स्वयं समझाने पर भी नहीं सुनते। स्वयं बाबूसाहबको भी कितने ही बुजुर्गोंने समझाया होगा अथवा वर्तमानमें समाजके कितने ही बुजुर्ग समझा रहे हैं परन्तु बाबूसाहब भी तो नहीं सुनते फिर महाबलने देवकी बातपर ध्यान नहीं दिया इसमें आश्चर्य क्या है? तीसरा कारण "दंडके जीवने देव हो कर हार दिया जो महाबलके गलेमें पड़ा बतलाया।" परन्तु यह कारण भी निर्मूल है क्योंकि राजा दंड कितनी ही पीढी पहिले हुआ है और उसने देव हो कर अपने बेटेको हार दिया था जो कि कई पीढीसे महाबलके घरमें चला आ रहा था भला कई पीढीसे घरमें चले आए हार पर महाबल ऐसा श्रद्धाहीन राजा कैसे विश्वास कर सकता है और बिना विश्वासके वह विवाद कैसे बेजोड़ सिद्ध होता है।

आगे आपने गंधिला देशकी बाबत कथामें लिखा है कि " वहां कोई मिथ्यादृष्टि नहीं होता परन्तु आदिपुराणमें यह बात नहीं है। आदिपुराणमें लिखा है 'न यत्र परलिंगानामस्ति जातु चिदुद्भवः' अर्थात् परलिंग नहीं होता। परलिंगका अर्थ बाह्य मिथ्यादृष्टि है अर्थात् वहांपर बाह्य मिथ्यादृष्टि नहीं थे। जैसे कि आप बाह्य मिथ्यादृष्टि नहीं है अर्थात् बाहरसे जैनी ही नाम धराते हैं मिथ्यादृष्टि नहीं परंतु आपका अंतरंग कितने गाढ मिथ्यात्वसे भरा है इसी तरह वहां बाह्य मिथ्यात्वका निषेध करनेसे कुछ अंतरंग मिथ्यादृष्टियोंका अभाव सिद्ध नहीं होता। इसतरह कथा भी आपने आपनी मनगढंत लिखकर लोगोंको धोखा दिया है। अर्थात् एक तो आपने कथा मिथ्या लिखी और लोगोंको धोखा दिया कि आदिपुराणमें ऐसा ही लिखा है फिर उसी झूंठी मनगढ़ंत कथाकी समीक्षाकी क्या एक वकीलको ऐसा करना शोभा देता है। परंतु किया क्या जाय। 'चिरंतनाभ्यासनिबंधनेरिता गुणेषु दोषेषु च जायते मतिः' इसके अनुसार आपको ऐसा करनेका अच्छा अभ्यास है। यह तो सब जानते हैं कि आप काव्य वा संस्कृत भाषाके मर्मज्ञ नहीं है ऐसी हालतमें अर्थ न समझना और अपनी मनगढंत कुछ भी कर लेना जिससे कि केवल लोग धोखेमें पडजांय। यही हाल आपने समाधिमरणके बारेमें लिखा है। जहांपर यह कथन है वह नगरीका वर्णन है लोगोंका नहीं नगरीका वर्णन् करते समय जो लोगोंका वर्णन किया है वह आपेक्षिक वा नयात्मक है जैसे किसीने कहा बम्बईमें बिना छतरीके कोई बाहर नहीं निकलता। अमेरिकामें सब स्वतंत्र हैं यह सब कथन बाहुल्यको लेकर कहा जाता है। इन सब विषयोंको जाननेके लिये बाबूसाहबको अलंकारशास्त्र और काव्यशास्त्र पढ़ना चाहिये तब कहीं समझमें आ

सकेगा। जिसप्रकार एक अबोध वालक वकीली दावपेचोंको न समझकर असंभव वतला देता है उसीप्रकार यह आपका लिखना है।

४—आगे चलकर आपने लिखा है "ऐसे देश और ऐसे नगरमें राजा अरविद और उसके महापाप भी नहीं हो सकते।" क्यों सो कुछ नहीं लिखा, आपको सिद्ध करना चाहिये कि ऐसे पाप इस तरह नहीं हो सकते। क्योंकि यह आपका लिखना 'मेरी मा वांझ' कहनेके समान है आपने जो अरविंदकी कथा लिखी है उसमें साफ लिखा है कि जिसने (अरविंदने), खोटे विचारोंके कारण नरक आयु वांध ली थी। जव आपकी लिखी हुई इस कथापरसे ही अरविंद और महापाप होना सिद्ध होता है फिर 'नही हो सकते' लिखना लोगोंको धोखेमें डालना है। कथामें कहीं आपने भी नहीं वतलाया है कि वहांपर किसीके खोटे विचार भी नहीं होते थे वल्कि साफ लिखा है कि अरविंदके खोटे विचार थे ऐसी हालतमे राजा अरविद और उसके पापोंका होना असंभव नहीं हो सकता। इसके सिवाय हम ऊपर यह भी दिखा चुके है कि वह वर्णन नगर वा देशका है। किसी व्यक्तिगत अभिप्रायका नहीं। आप देश वा नगरकी शोभाको किसी व्यक्तिपर घटाकर समीक्षा करना चाहते हैं परंतु यह एक तरहका छल है समीक्षा नही।

५—आगे चलकर आपने लिखा है कि "अरविंद ऐसे महापापीको किस कारणसे अवधिज्ञान हो गया ग्रंथमें यह वात अवश्य वतानी चाहिये थी" वाह साहव, क्या प्रश्न करना भी समीक्षा है? यह तो आपने दूरकी कौड़ी ढूंढ़ ली है एक ही ग्रंथमें सव विषय तो आ नहीं सकते वस इसमें यह वताना चाहिये था इसमें यह वताना चाहिये था आदि वातें पूछ लीं और समीक्षक वन गये इस तरह सव ग्रंथोंकी समीक्षा सहजमें हो जायगी और समीक्षा हुए वाद तो फिर आपके वुद्धिमहासागरमें सव ग्रंथ डूव ही जायंगे। जनावमन्! अरविंदके अवधिज्ञान नहीं था किंतु विभंगा अवधिज्ञान था। जैसा कि आदिपुराणमें लिखा है 'पुनरप्यवदल्लब्धविभंगोस्मिन्वनांतरे' आप अभी विभंगावधि और अवधिज्ञानमें कुछ अंतर नहीं समझते और सच्चा झूठा लिखकर केवल लोगोंको धोखा देते हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि सव विषय एक ही ग्रंथमें नहीं होते अवधिज्ञान वा विभं-गावधिज्ञान किस कारणसे होते हैं यह ग्रंथांतरका विषय है जहांतक हमारा खयाल है इस वातको साधारण जानकार भी जानते है कि अवधिज्ञानावरण और वीर्यांतरायके क्षयोपशमसे अवधि-ज्ञान होता है यदि इनके क्षयोपशमके साथ मिथ्यात्वका उदय हो तो विभंगावधिज्ञान होता है।

६—आगे चलकर आपने 'अरविंदके विभंगावधिकी समीक्षा की है।' परंतु यह बात पदपदपर लिखनी पड़ती है कि उस पदार्थको समझे विना समीक्षा हो नहीं सकती। अवधि वा विभंगावधिज्ञान द्रव्य क्षेत्र कालभावकी मर्यादा लिये हुए होता है जिसके जैसा और जितना क्षयोपशम होता है वह उतने ही द्रव्य क्षेत्र काल भावसंबंधी पदार्थोंको जानता है। दूसरी वात यह भी है कि मतिज्ञानकी तरह अवधिज्ञान सदा जाग्रत नहीं रहता वह वुद्धिपूर्वक जोड़नेसे जुड़ता है इन्हीं दो कारणोंसे उसे कुछ वातें मालूम हो गईं और कुछ नहीं। ये वहुत मोटी वाते हैं

इन्हें साधारण जानकर भी जानता है। परंतु समीक्षक साहब इतनी मोटी बातें न जानते हुए भी समीक्षक बनगये हैं। यह केवल उनका दुःसाहस है और कुछ नहीं।

७—आगे चलकर आपको 'राजा दंडका मरकर खजानेका सर्प होना बहुत खटका है।' परंतु बाबूसाहब जैसे शास्त्रोंमें अनभिज्ञ हैं वैसे ही लौकिकमें भी अनभिज्ञ जान पड़ते हैं। अन्यथा ऐसी बेतुकी कभी नहीं हांकते। साधारण सांप जब किसीको काट लेता है और मंत्र प्रयोगोंके द्वारा जब वह उस पुरुषके शरीरमें आकर बोलता है तब वह अपनी उसकी शत्रुताका पूरा परिचय देता है। ऐसे उदाहरण प्रतिवर्ष दस बीस पचास होते हैं। इन सब बातोंको भारतवर्षके सब लोग जानते हैं। बाबूसाहब भी यदि जानते होंगे तो उन्होंने जान बूझकर धोखा खाया है या दिया है यदि नहीं जानते तो हमें उनके इस लौकिक अज्ञानके लिये खेद है। जब साधारण सांपोंका यह हाल है तब न तो राजा दंडका मर कर सांप होना असंभव है क्योंकि मनुष्य मर कर सांप हो सकते है और न अपने ही खजानेमें होना असंभव है क्योंकि खजाने तहखानोंमें ही होते है और तहखानोंमें सांपोंका होना असंभव नहीं। इसके सिवाय मोहनीय कर्मका उदय और संस्कार बड़ा ही प्रबल होता है उसके संस्कारसे भी उसका अपने ही खजानेमें सांपका होना साबित होता है। 'भारतवर्षमें' अब भी कितने ही ऐसे प्राचीन खंडहर है। जिनके खोदने पर उनमेंके सांप उपद्रव किया करते हैं। इनमें न तो कोई बात असंभव है और न बाबूसाहबने ही असंभव सिद्ध कर बतलाई है।

आपने यह जो लिखा है कि "आजकल तहखानोंमें खजानोंका रखना छूटता जाता है" सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यद्यपि व्यापारी वर्ग तिजोरियोंमें और लोहेकी बड़ी संदूकोंमें रुपये रखते हैं। क्योंकि उन्हें प्रतिदिन उसमेसे लेने देनेका काम पड़ता है। यद्यपि इन्हें किसी तरह चालू खजाने कह सकते हैं परंतु स्थायी खजाने अब भी तहखानोंमें ही होते हैं। युरोपमें जर्मन-सम्राट्का खजाना भी तहखानेमें ही है, खुली जगहमें नहीं।

८—आगे चलकर आपने फिर वही राग आलापा है कि सांपके किस कारणसे जातिस्मरण हुआ यह बात ग्रंथमें बतानी चाहिये थी। परन्तु हम उसका उत्तर पहिले लिख चुके हैं तथा यह बात क्यों बतानी चाहिये इसका कारण बाबूसाहबने भी नहीं बतलाया है। जान पड़ता है आपके दिव्य ज्ञानमें सांपको जातिस्मरण (जो कि मतिज्ञानका एक भेद है) होना असंभव है शायद इसका भी कारण यह हो कि बाबूसाहबको जातिस्मरण नहीं है जो बात बाबूसाहबके यहां नहीं है वह किसीको भी नहीं होनी चाहिये।

९—आगे चलकर आपने समाधिमरणको अपघात बतलाया है परंतु यहां भी कहना पड़ता है कि आपने न तो समाधिमरणको ही समझा है और न अपघातको ही अपघात कब होता है और समाधिमरण कब इस बातको समझे विना ही ऐसा लिख मारा है। कषायपूर्वक प्राण छोडना अपघात कहलाता है। सांपने किसी कषायके आधीन होकर आहार पानीका त्याग नहीं किया था किंतु आपके ही लिखे अनुसार उसने मोहांधकारके दूर होनेपर तथा विरक्त होकर

आहारपानी छोड़ा था इसकी समीक्षा करते समय बाबूसाहबको अपनी लिखी कथा भी याद नहीं रही इसीतरह बाबू साहबको समाधिमरणका स्वरूप भी विस्तृत रीतिसे समझ लेना चाहिये था। शास्त्रोंमें समाधिमरणकी मर्यादा बारह वर्षतक की कही है। क्या बारह वर्ष पहिले मृत्युका निश्चय हो जाता है अथवा वह बिल्कुल आहारपानी छोड़ देता है। यदि बाबूसाहब इन सब बातोंको पहिले समझ लेते और फिर समीक्षा करते तो संभव है फिर आपकी बुद्धि ठीक ठीक काम करती।

१०—आगे चलकर सांपके वैराग्यका फल स्वर्ग मिला इस पर आपने शोक प्रगट किया है इससे साफ जाहिर है कि आप पुण्यास्रव वा पापास्रवका स्वरूप बिल्कुल नही जानते अथवा यदि जानते है तो इन तत्वोंको माननेकी आपकी इच्छा नहीं "जब सांपने विषयोंकी इच्छाको तेज जहरके समान जानकर उनका त्याग कर दिया और शरीर तथा आहारसे भी ममता छोड़ दी" ऐसा आपने कथामें लिखा है। इससे यह तो अवश्य मानना पडता है कि उसके अधिकांश रूपमे पापास्रव नही था, अधिकांशमें उसके पुण्यास्रव ही था। पुण्यास्रवमें देवायुका आस्रव सबसे अधिक शुभास्रव वा पुण्यास्रव है इसीलिये सांपको देवायुका बंध होनेके कारण देवपर्याय मिली। परंतु इसको बाबूसाहबने अन्याय बतलाया है और लिखा है कि उसे मनुष्यपर्याय मिलनी चाहिये थी। बाबूसाहबके इस प्रकारके लिखनेका आशय यह है कि वास्तवमें नरक देव पर्याय कोई पर्याय नहीं है संसारमें जो दीखता है वही है नरक स्वर्ग न दीखता है न है इसीलिये स्वर्ग मिलना आपको बहुत खटकता है' और आपने उसे अन्याय लिखमारा है। इसीमे आपने लिखा है कि उसे मनुष्यपर्याय मिलनी चाहिये थी परंतु बाबूसाहबको इतना और समझ लेना चाहिये कि देवपर्यायमें जो प्रचुर भोगोंकी सामग्री है वह सब न्यायपूर्वक भोगी जाती है अन्यायपूर्वक नहीं वहांपर कोई भी देव दूसरे देवकी देवांगनासे भोगोपभोग नहीं करता। वह सदा न्यायपूर्वक अपनी ही देवांगनासे भोगोपभोग सेवन करता है यह नियमबद्ध परिपाटी है। परंतु मनुष्यपर्या-यमें भी यह बात नही है यद्यपि मनुष्यपर्यायमे बहुतसे ऐसे सज्जन निकलते हैं तथापि ऐसे भी बहुतसे सफल निकलते है जो बड़े ही दंभी होते है ऐसे लोग धर्मके स्वरूपको कुछ न जानते हुए भी अपनेको तत्वोंका अच्छा ज्ञाता समझते है उनकी विशाल दृष्टिमे अच्छे अच्छे तत्वज्ञ भी कोई चीज नहीं, समय पड़नेपर वे इतना अन्याय करते हैं जिसका ठिकाना नहीं घरमें भले ही उनकी बीबी रोती रहे परंतु वे उपपत्नी रख ही लेते है और मरनेपर विवाहिता स्त्रीके रहते हुए भी अपना कारभार उपपत्नीको सोंप जाते हैं।

इसलिये ऊपर लिखे अनुसार पुण्यका फल देवपर्याय मिलती है वहांपर वे देव लोग न्याय-पूर्वक भोगोंका सेवन करते हुए भी उसकी कारणरूप पुण्यसामग्रीको नही भूलते है और सम-यानुसार पुण्यका सेवन करते ही रहते हैं।

११—आगे चलकर आपने सांपको विरक्त होनेपर तज्जन्यपुण्यास्रवसे जो जो संपदा मिली इसे अन्याय बतलाया है। इसका उत्तर प्रायः दशवें नम्बरमें लिखा जा चुका है असल बात तो

यह है कि बाबू साहब जैनियोंके किसी तत्वको नहीं मानते न जैनधर्मको ही मानते हैं परंतु अपने मतकी पुष्टि करनेके लिये झूठ मूठ जैनका पुछल्ला लगाकर लोगोंको धोखेमें डालनेके लिये उसका खंडन करते है और जन्मसे अभ्यस्त पाश्चिमात्य मतका मंडन करते हैं परंतु बाबूसाहबको खूब समझ लेना चाहिये कि विना हेतुके अट्ट सट्ट लिख देने मात्रसे कुछ नहीं होता है सब विषय हेतुपूर्वक लिखना चाहिये।

१२—आगे आपको 'देवका बेटेको बहुमूल्य हार देना' बहुत खटकता है आप लिखते हैं 'कि ऐसा होनेसे यहीं स्वर्ग बन जाय'। इससे पाठकोंको हमारा पहिले लिखा हुआ यह अवश्य निश्चय हो जायगा कि बाबूसाहब यहां ही स्वर्ग नरक मानते हैं स्वर्ग नरकको अलग कोई चीज नहीं मानते अन्यथा देवके द्वारा कोई चीज देनेमें क्या हानि है सो कुछ नहीं बतलाया। क्या स्वर्गमें देवोंकी संपदा निजकी नहीं है अथवा वे देना नहीं जानते अथवा स्वर्गकी चीज यहां टिक नहीं सकती क्या बात है सो कुछ भी तो नहीं बतलाया। अथवा यों कहना चाहिये कि देवोंकी चीजें कल्पनामात्र हैं। आपके लेखसे तो यही जान पड़ता है कि आप देवोंकी संपदाको कोई चीज नहीं मानते केवल अभावात्मक ही मानते है इसीलिये देवोंकी संपदाके लिये आपने माया शब्द लिखा है। परंतु यह नहीं बतलाया कि वह माया सद्रूप है या असद्रूप। यदि असद्रूप है तब तो आप तीर्थंकरोंके जन्मोत्सवपर ऐरावत हाथी आदिका आना दीक्षाके लिये पालकी आना केवलज्ञानके समय समवसरणका होना गर्भकल्याणके समय रत्नवृष्टिका होना आदि सबका ही अभाव मानना पडेगा। तथा इसीके साथ साथ चक्रवर्त्ती नारायण प्रतिनारायण आदि सबका ही अभाव मानना पडेगा क्योंकि उनकी भी निधिरत्न आदि सब देवोपनीत चीजें है जिनको आप मायारूप कह कर नहीं मानते। इसके सिवाय एक बात यह भी है कि जिस हेतुसे देवोंकी चीजोंको मायारूप वा असद्रूप मानना पड़ेगा उसी हेतुसे देवोको भी असद्रूप मानना पडेगा। ऐसी हालतमें अर्थात् देवपर्यायका अभाव माननेमें पर्यायके अभावमें पर्यायीका भी अभाव होनेसे तत्संबंधी जीवद्रव्यका भी अभाव मानना पड़ेगा और जीव द्रव्यका अभाव माननेसे द्रव्यानुयोग करणानुयोग चरणानुयोग आदि सभी शास्त्रोंको झूठा मानना पडेगा तथा जैनधर्मको भी झूठा मानना पड़ेगा। इस दोषसे बचनेके लिये यदि आप दूसरा पक्ष स्वीकार करेंगे अर्थात् उस मायाको सद्रूप मानेंगे तो फिर सब जगहके समान यहां भी देवके द्वारा हारका देना और एक संतानके समान दर संतान बना रहना मानना ही पडेगा। इसमें खटकनेकी कोई बात नहीं है यदि थी तो आपको भी लिखनी चाहिये थी।

ललितांग देवकी कथाकी समीक्षाकी परीक्षा।

आगे ललितांग देवके लिये आपने लिखा है कि उसे बेहद भोगोंमे फंसना पडा। परंतु बाबूसाहबने यह नहीं बतलाया कि बेहद शब्दसे आपका क्या तात्पर्य है। स्वर्गके जितने भी भोगोपभोग हैं वे सब अपने अपने पुण्यकर्मके अनुसार समर्याद हैं अमर्याद नहीं फिर भी बाबू साहबने जो बेहद शब्द लिखा है इसका कुछ और ही तात्पर्य होना चाहिये। यहांपर बेहद

शब्दसे दो अभिप्राय निकलते है कालसंबंधी बेहद्दपना और भोगसंबंधी बेहद्दपना। यदि काल-वाचक बेहद्दपना ले तो भी ललितांगदेवकी आयु एक सागरकी थी जो कि अनंतानंत संसारकी अपेक्षा कुछ भी नही है बल्कि न कुछके बराबर है और वह भी बेहद नही समर्याद है यदि देवांगना आदि भोगोपभोग सामग्रीका विशेषण बेहद शब्द किया जाय तो भी ठीक नही है क्योंकि वह भी सब सामग्री समर्याद है परिगणित है फिर भी जो बाबू साहबने बेहद शब्द लिखा है उसमें काल और भोगोकी सामग्रीको झूठा ठहरानेका प्रयत्न किया है। कथामे यह शब्द कहीं भी नही आया है केवल बाबूसाहबका मनगढंत है और ऐसे ही मनगढंत शब्दोंसे की हुई समीक्षा भी मनगढंत सिद्ध होती हैं।

आगे चलकर तो आपने बडी ही बुद्धिमत्ताका परिचय दिया है उससे यह भी पता लगता है कि कर्मसिद्धांतको आप बिल्कुल नहीं जानते या मानते नहीं। जिसप्रकार प्रेरक लोग किसी विद्यार्थिको पढनेकी प्रेरणा करते है और चाहते है कि वह ऊंची शिक्षा प्राप्त करले परंतु वह विद्यार्थी बुद्धिके मन्द होनेसे अथवा अन्य किसी कारणसामग्रीके मिल जानेसे ऊंची शिक्षा प्राप्त न कर सकनेके कारण अधबीचमे ही रह जाता है और उसके इसतरह अधबीचमे रहनेका दोष उस प्रेरकपर नहीं लगा सकता इसीतरह चारणमुनिने महाबलके मोक्षमार्गपर जानेके लिये चाहा था तदनुसार वह मोक्षमार्गमे लग भी परंतु सब तरहकी योग्य सामग्री न मिलनेसे वह कर्मोको नष्ट तो नहीं कर सका परंतु मोक्षमार्गमे रहकर भी बीचकी हालतमे आ पड़ा। उससे पूर्ण त्याग न हो सका और तपश्चरणके साथ साथ अंतरंग कषायांश रहनेके कारण वह देवायुका बंध कर देव हुआ ऐसी हालतमें क्या तो चारणमुनिका अपराध है क्या स्वयंबुद्धका है और किसने उसे स्वर्गमें पटका है न चारणमुनि पटकने आए थे और न स्वयं बुद्ध किंतु वैसा ही आयुबंध होनेके कारण उसकी ऐसी अवस्था हुई परंतु बाबूसाहब या तो इन बातोंको भूलगये या पुण्यपाप आयुबंध आदिको माननेके लिये तैयार नहीं है इसलिये आपने बडा भारी शोक प्रगट किया है। अच्छा होता यदि बाबूसाहब यह खुलासा कर देते कि तपश्चरणके साथ साथ अंतरंग कषाय रहनेपर मध्यवर्ती परिणाम होते है या नहीं यदि होते हैं तो उनसे आस्रव होता है या नही यदि होता है तो पुण्यपापमेंसे कौनसा? यदि पुण्यास्रव होता है तो उससे संपदाओके सिवाय और क्या मिल सकता है। यदि पुण्यका फल संपदा नहीं है तो क्या दरिद्रता है क्या बात है सो बाबूसाहबने भी तो बतलाया होता।

आगे चलकर आपने समीक्षकपनेके अभिमानसे बड़ा ही अफसोस प्रगट किया है और लिखा है कि इन कथाग्रंथोसे जैनधर्मका रूप कुछसे कुछ हो गया है परंतु बाबूसाहबने यह नही बतलाया है कि कथाग्रंथोंका फल कैसा होना चाहिये उनकी शैली कैसी होनी चाहिये आदि। प्रायः कथाग्रंथोंमे शुद्धोपयोगसे कर्म नष्ट करना शुभोपयोगसे पुण्यास्रव होना और अशुभोपयोगसे पापास्रव होना बत-लाया है। सूक्ष्मदृष्टिसे यह भी बतलाया है कि जितने अंशमें शुभोपयोग है उससे आस्रव ही होता है संवर वा निर्जरा नहीं जैसा कि पुरुषार्थ सिद्ध्युपायमे लिखा है। 'रत्नत्रयमिह हेतुर्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य।

आस्रवति यत्तु पुण्यं शुभोपयोगोयमपराधः।' अथवा ' 'येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति।' इत्यादि—परंतु फिर भी बाबूसाहबने जो अफसोस किया है उससे जान पड़ता है कि आप शुभोपयोग आदिके फलोको भी मानना नहीं चाहते आपकी समझमें वर्तमानसमयमें अभाव होनेके कारण शुद्धोपयोग और शुभोपयोग कोई चीज नही है क्योंकि दिखती नहीं। यदि आप इनको मानते तो उनका फल पुण्य पाप वा स्वर्ग नरक भोग उपभोग आदि सब ही विषय मानने पड़ते। एक बात यह भी है कि इन कथाग्रंथोमें मुख्य ध्येय मोक्ष ही रक्खा गया है परंतु आत्माकी शक्ति एक साथ प्रगट न होनेके कारण वह अनुक्रमसे ही मिलती है और वही अनुक्रम इन कथाग्रंथोमें उदाहरणरूप दिखलाया गया है। परंतु बाबूसाहब या तो यह बात भूल गये है या प्रत्यक्ष प्रमाणके बाहर होनेके कारण माननेको तैयार नहीं है।

इसी समीक्षामे बाबू साहबने यह एक धोखा भी दिया है कि देव सदा भोगोमे ही लीन रहते है उन्हे और कुछ काम ही नही रहता परंतु बाबू साहबकी यह भूल है देवोंके प्रत्येक विमानमे जिन भवन रहते है इसलिये वे देव समयानुसार उनमे पूजापाठ आदि धर्मकार्य करते ही रहते है। तीर्थंकरोके कल्याणोमे तथा समवसरणमे जा जा कर स्तुति पूजा कर धर्मसेवन करते ही है धर्मोपदेश सुनते ही है तीर्थवन्दना तथा अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वंदना आदि करते ही रहते हैं परंतु बाबू साहबने ये सब बाते उडा ही दी हैं और लोगोंको धोखा दिया है कि देवोंको भोगो-पभोग सेवनके सिवाय कुछ काम ही नही है बाबू साहबको याद रखना चाहिये भव्य देवलोग भोगोपभोग सेवन करते हुए भी मोक्षमार्गसे च्युत नही होते हैं और वर्तमानके बाबू लोगोके समान उच्छृंखल और निरर्गल नहीं हो जाते है।

आगे चलकर आप लिखते है कि "जो कोई विषय कषायोंके छोड़नेकी कोशिश करेगा वह ऐसे भारी भोगोमे फंसाया जायगा कि फिर जिनका छोडना अत्यन्त दुष्कर हो जायगा।' यद्यपि इसका उत्तर ऊपर लिखा जा चुका है तथापि बाबूसाहबसे इतना और पूछ लेना है कि वह जो ऐसे भारी भोगोमे फंसाया जायगा वह किसके द्वारा फंसाया जायगा तीर्थंकरोके द्वारा? जिनसे-नके द्वारा? या हमारे आपके द्वारा? अथवा आप इन सबसे भिन्न किसी निराकार ईश्वरको फंसानेवाला कर्ता समझते हैं आपको स्पष्ट लिखना चाहिये था क्या कोई भी जैन ग्रंथ इस कर्तो-वादका मंडन करता है? परंतु इतनी अजानकारी रखते हुए भी आप समीक्षक बनते है इसपर सख्त अफसोस और शोक है। इसके सिवाय विषयोके छोडनेसे शुभोपयोग, शुभोपयोगसे पुण्यास्रव और पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप भोगोपभोग मिलते है इस बातको भी आप नहीं जानते है अन्यथा **फंसाया जायगा** ऐसे वाक्य कभी नही लिखते। आगे चलकर आपने ऐसी कथा-ओसे जैनधर्मका विलक्षणरूप बनगया बतलाया है परंतु यह नहीं बतलाया कि जैनधर्मका रूप कैसा तो था और कैसा होगया? क्या पुण्यपापका फल दिखलाना रूपांतर करना है यदि है तो किसतरह हेतुपूर्वक सिद्ध करना चाहिये।

आगे चलकर आपको इस कथासे यह शिक्षा मिली है कि "सारी उमर खूब भोग भोगो और आंख मींचकर खूब मौज उडाओ।" वाह साहब, आप शिक्षाके अच्छे पात्र हैं परंतु इसमें आश्चर्यकी बात नहीं कड़वी तूंबीमें रखनेसे दूध कडवा हो ही जाता है। भला कहिये तो आपकी लिखी कथामे वा आदिपुराणमें आपके लिखे हुए वाक्य कहीं लिखे है अथवा कहीं किसीने ऐसा उपदेश दिया लिखा है यदि है तो बताना चाहिये यदि नहीं है तो फिर आपका लिखा लेख महा झूंठा और लोगोंको धोखेमे डालनेवाला होना ही चाहिये। आंख मींचकर खूब मौज उड़ाओ इन शब्दोसे क्या अर्थ निकलता है? यही न कि न्याय अन्यायका कुछ विचार मत करो बहिन मानजी कोई भी हो उसके साथ खूब मौज उड़ाओ क्या इसके सिवाय आंख मीचकरका कुछ और अर्थ हो सकता है अथवा भंगिन चमारिन वेश्या परस्त्री कोई हो मौज उड़ानेसे काम, यह आंख मींचकरका अर्थ हो सकता है इसके सिवाय और कुछ नहीं क्या आप ऐसे कुछ उदाहरण दे सकते है जिनमे ये बाते लिखी हो अन्यथा यह सिद्ध समझा जायगा कि सचका झूंठ बनाकर धोखा देना और अपनी अंतरंग मलिन वासनाएं पुष्ट करना ही आपका एक काम रह गया है जिसे आप इसतरह कर रहे हैं।

आगे चलकर आपने लिखा है कि "मरनेके कुछ दिन पहिले पूजापाठमें लग जानेसे सब कुछ हो जायगा।" सो यह भी ठीक नहीं हैं, क्योंकि? अंतमें पूजापाठमें लग जाना क्या सहज है। जबतक पहिले खूब अच्छी तरह अभ्यास नहीं किया जाता तबतक कभी कोई किसी कामको अंत समयमे नहीं कर सकता इसीलिये आचार्योंने समाधिमरणको सारी उमरके तपश्चरणका फल बतलाया है। इस परसे यह अवश्य सिद्ध होता है कि जिनका समाधिमरण अच्छा हो गया उन्होंने पहिले तपश्चरण इंद्रियसंयम आदिका अवश्य ही अच्छा अभ्यास किया होगा। इसी तरह जो देवलोग अंतमें पूजापाठ आदिमें लग जाते है उन्होंने पहिले अवश्य ही पूजापाठका अच्छा अभ्यास किया होगा विना अभ्यास किये वे अंतमें उस कामको कर नहीं सकते। यही कारण है कि जैन ग्रंथोंकी जानकारी न रखते हुए भी केवल दावपेचोंके अभ्यासके कारण आपको समीक्षक बननेका सौभाग्य प्राप्त है, और जो जीमें आया लिखमारा है।

वज्रजंघकी कथाकी समीक्षाकी परीक्षा।

१ आपने लिखा है "बहुत विचार करने पर भी हमको (बाबू सूरजमानुजीको) यह माळूम नही होसका कि इस धर्म कथाके पढ़ने वा सुननेसे क्या लाभ होता है परिणाम बिगडते है या सुधरते पापकी प्राप्ति होती है या पुण्यकी" वाह क्या समीक्षा। है समीक्षा हो तो ऐसी हो उस विचारकी भी तारीफ है और उस ज्ञानकी भी जब आपको कथा पढ़नेसे कुछ भी नहीं माळूम हुआ तब तो उस कथा संबंधी अज्ञान ही रहा न! फिर उसी अज्ञानसे आपने समीक्षा भी कर डाली! अब उस समीक्षाको क्या कहना चाहिये समीक्षा या केवल अज्ञान जन्य प्रलाप? जब आप एक कथा पढ़कर उसका परिणाम कुछ भी नहीं समझ सकते तब फिर अन्य गहन विषयोंको क्या समझ सकते है और ऐसी वे समझी रहते हुए आप उनकी समीक्षा कैसे कर सकते है

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि आपकी लिखी हुई सब समीक्षाएँ केवल अज्ञानजन्य प्रलाप या कपोल कल्पनाके सिवाय कुछ नही है।

इस कथामे कहीं भी अन्यायकी प्रवृत्ति नहीं वतलाई है कहीं भी झूठ चोरी व्यभिचार वा विधवा-विवाह आदि करने की विधि वा ऐसे दुष्ट कार्योंका उत्तम फल नही वतलाया है फिर उसके पढ़नेसे पाप कैसे हो सकता है परिणाम कैसे विगड़ सकते है जब आप समीक्षक हैं तब आपको कुछ भी तो वतलाना चाहिये था।

२ आगे चलकर आपने ललितांग देवके भोगोंका उल्लेख करते हुए लिखा है कि "सबसे मारी फल इसका यह हुआ कि इस कथाके पढने और सुननेवालोंपर भोगोंमें रत रहनेकाही प्रभाव पड़ता रहा और आगे को भी पड़ता रहेगा आदि" यद्यपि इसका उत्तर पहिले दिया जाचुका है कि पुण्य कर्मोंका बंध होनेसे उन्हे ऐसे उत्तम भोग प्राप्त हुए। परतु उनके पढने सुननेसे भोगोंमे रत रहनेका प्रभाव कैसे पड़ता रहा और कैसे रहेगा सो वावूसाहवने भी वतलाया नहीं है कोरा लिख दिया है मानो वावूसाहव सर्वज्ञ है उनकी वात हर किसीको मानलेनी चाहिये। जनाव वावूसाहव! ग्रंथोंमे वा पुस्तकोमे अक्सर प्रकरणानुसार ही विषय लिखे जाते है इस कथामे ग्रंथकारको केवल पुण्यका फल दिखलाना था इसलिये उसने देवोंके भोगोपभोगोंका वर्णन किया अन्य समयमे वे क्या करते थे सो प्रकरण न होनेसे वतलाया नहीं अन्यथा सागरोंकी आयुका कर्तव्य वे दस वीस पचास श्लोकोंमें कैसे वता सकतेथे यह पहिले भी लिखा जा चुका है कि वे न्यायपूर्वक समयानुसार भोग भोगते थे और धर्म सेवनके समय धर्मसेवन करते थे यदि वे धर्मसेवन न करते तो आगे वे उत्तम राजवंशमें कैसे उत्पन्न होते। इससे आपके विपरीत यह सिद्ध होता है कि न्यायपूर्वक भोगोपभोग सेवन करना पाप नही है किन्तु अन्याय पूर्वक भोगोपभोग सेवन करना पाप है। जैसा कि आत्मानुशासनमे लिखा है—न सुखानुभवात्पापं पापं तद्धेतुघात-कारंभात्। नाजीर्णं मिष्टान्नान्नु तन्मात्राद्यतिक्रमणात्। (सुखोंके अनुभव करनेसे पाप नहीं होता किंतु सुखोंके कारण रूप धर्मसेवनका घात करनेसे पाप होता है जैसे कि मिष्टान्नसे अर्थात् मिठाई खानेसे अजीर्ण नहीं होता किंतु उसकी मात्राका उल्लंघन करनेसे अर्थात् अधिक खालेनेसे अजीर्ण होता है।) इस श्लोकके अनुसार इस कथामे कहीं भी सुखोंके कारणोका घात नहीं वतलाया है इसलिये इस कथासे परिणामोंके विगड़नेकी शंका करना या पाप लगने की शंका करना विल्कुल निर्मूल और व्यर्थ है। तथा भोगोंपभोगोंकी प्रवृत्ति न्याय पूर्वक ही होनी चाहिये समयानुसार धर्म सेवन आदि धार्मिक कृत्य करने ही चाहिये यही इस कथाका सारांश निकलता है। इसलिये इसके सुननेसे पुण्यवंध होना स्वाभाविक ही है।

इसके सिवाय आप पर जो भोगोमे रत रहनेका प्रभाव पड़ा है सो क्या आप इस कथामे वतला सकते है कि इसमे कहीं भी भोगोमे रत रहना आत्माका कल्याण वतलाया है? जब ऐसा इस कथामे कहीं भी नही है तब तो केवल आपका यह आक्षेप झूंठा ही ठहरा न?

३—आगे चलकर आपने देवोंको देखकर श्रीमतीका डरना असंभव बतलाया है और इसका हेतु दिया है कि यशोधर तीर्थंकर इसके दादा थे इसलिये उनके पहिले तीनों कल्याणकोंमें देव आए ही होंगे परंतु बाबूसाहबने यह किस दिव्यज्ञानसे जान लिया कि यशोधरके तीनों कल्याणक श्रीमतीके सामने ही हुए थे? क्या बतलानेकी कृपा करेंगे? दूसरे सबसे बडी बात यह है कि आपने जो कथा लिखी है उसमें भी लिखा है कि "श्रीमती उस समय सो रही थी बाजे और जयजयकारका भारी शोर सुनकर ही जागगई और डरगई थी" क्या सोते समय कोई अकस्मात् भारी शोरके होनेसे मनुष्य डर नहीं सकता और फिर खासकर स्त्रीजाति। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि जो बातें मनुष्य समाजमें प्रतिदिन होती हैं उन्हींको आपने असंभव कहकर साफ साफ झूंठ लिखा है और लोगोंको धोखेमें डालना चाहा है। क्या ऐसी ऐसी बेतुकी और झूंठी बातें लिखकर किताब बना देना ही समीक्षा है?

४—आगे चलकर आपने लिखा है "श्रीमतीको जातिसारण किस पुण्यके प्रतापसे हुआ यह बात ग्रंथमें बतानी जरूर थी"। ऐसी समीक्षा आपने पहिले भी लिखी थी और उसका उत्तर भी लिखा जा चुका है। ऐसे प्रश्नोंको समीक्षा नहीं कहना चाहिये क्योंकि ऐसे प्रश्न साधारण बच्चा भी कर सकता है। इसके सिवाय इसमें आपने लोगोंको धोखेमें भी खूब डाला है, क्योंकि उसपरसे लोग यह अवश्य समझ लेंगे कि जातिस्मरण किसी पुण्यके प्रतापसे नहीं होता मतिज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्म जो कि पापकर्म हैं उनके विशेष क्षयोपशमसे होता है अर्थात् पापकर्मोंके क्षयोपशमसे होता है। पुण्यके प्रतापसे नहीं। पापकर्मोंके क्षयोपशमसे होना क्षायोपशमिक भाव है और पुण्यके प्रतापसे होना औदयिक भाव है क्योंकि वह पुण्यकर्मोंके उदयसे होता है। औदयिक और क्षायोपशमिक भावोंमें आकाश पातालका अंतर है परंतु बाबूसाहब यह बात समझें तब न. उन्हें तो अट्टसट्ट लिखकर प्रसिद्ध होनेसे काम है।

५—आगे चलकर आपने लिखा है 'भगवान्के कल्याणकमें इतने अगणित देव आते हैं कि सारा स्वर्ग खाली होकर आकाश ही स्वर्ग बन जाता है'। वाह आप जैनशास्त्रोंके कैसे अच्छे जानकार हैं इसी जानकारी पर तो सच्ची परीक्षा और खरे खोटेकी पहिचान पर आप उतारू हुए हैं परंतु आपको यह भी मालूम नहीं है कि स्वर्गोंसे जो देव आते हैं सो उनका मूल शरीर नहीं आता केवल उनका वैक्रियक शरीर आता है, उनका मूल शरीर स्वर्गमें ही रहता है ऐसी हालतमें भला स्वर्ग खाली कैसे हो सकता है?

फिर आगे आपने इस कथाको टकसाली मगनदंत सिद्ध करना चाहा है, और उसमें हेतु दिया है कि 'जब देवोंके आनेपर सब जगह कोलाहल होगया होगा फिर वज्रदंतको इसकी खबर क्यों नहीं हुई और बाहर आनेपर आदमीके द्वारा खबर क्यों हुई।' इस जगह आपने लोगोंको समझानेके लिये लिख तो दिया परंतु आपने ही जो कथा लिखी है उसीपरसे आपकी इस बातका खंडन हो जाता है। आपने कथामें लिखा है कि महलके बाहर गया ही था कि उसे यशोधरके केवलज्ञानके प्राप्त होनेकी खबर मिली। बस इसीसे आपके ऊपर लिखे वाक्यमें बाधा

आ जाती है माना कि नगरमें कोलाहल हुआ होगा परंतु वह कोलाहल महलमें तो नहीं हुआ। बिना किसी आदमीके द्वारा खबर दिये उसकी खबर महलके भीतर कैसे हो सकती है इस बातको तो एक साधारण बच्चा भी समझ सकता है। कदाचित् आप कहेंगे कि श्रीमतीको देवोंके आनेकी खबर कैसे हुई सो भी ठीक नहीं है क्योंकि आपकी लिखी कथा परसे ही मालूम हो जाता है कि वह छतपर सो रही थी छतसे तो नगरकी तथा समीपवर्ती जंगलकी खबर मालूम हो सकती है परन्तु महलके अंदर कैसे खबर हो सकती है इस बातको बाबूसाहबका दिव्य ज्ञान ही जानता होगा? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि आपकी वह समीक्षा बिल्कुल मनगढ़ंत और बनावटी है।

६—आगे चलकर आपने लिखा है कि "जातिस्मरण होनेके बाद श्रीमतीको उसके कई भव याद आ गये थे जिससे वह बहुत ही जियादा अनुभवशालिनी हो गई थी वह जरूर जानती थी कि जीवकी चौरासी लाख योनि और कई करोड़ किस्में हैं आदि" परंतु बाबू साहबका यह सब लिखना बनावटी मनगढ़ंत वा ठकसाली है क्योंकि जातिस्मरणसे अनुभव बढ़ जाता है इस बातको आपका दिव्यज्ञान ही जानता है दूसरा तो इसे कोई भी स्वीकार कर नहीं सकता। जातिस्मरण पहिले भवका स्मरण हो आना है इससे अनुभवसे कोई सम्बन्ध नहीं यदि है तो बाबू साहबको बतलाना चाहिये। इसपर भी तुर्रा यह है कि आप निश्चयपूर्वक लिखते हैं कि 'वह जरूर जानती थी कि जीवकी ८४ लाख योनि और कई करोड़ किस्में हैं' यह सब कोई जानता है कि यह विषय श्रुतज्ञानका है परंतु बाबूसाहबने निश्चय कर लिख-दिया है कि जातिस्मरण जोकि मतिज्ञानका एक भेद है उससे ही जरूर जानती थी। मानों वे वहां मौजूद थे अथवा उन्हें कोई ऐसा दिव्यज्ञान है कि जिससे वे इतने पहिलेकी बातें भी निश्चयपूर्वक जान लेते हैं क्योंकि ग्रंथमें तो कहीं भी नहीं लिखा है कि श्रीमतीको इन बातोंका ज्ञान था या नहीं। ऐसे ऐसे मिथ्या हेतु और मिथ्या बातें लिखकर ही बाबूसाहबने कथाको झूंठा ठहरानेका प्रयत्न किया है जो कि केवल उनके दु:साहसको ही सूचित करता है।

७—आगे चलकर आपने लिखा है कि मानों श्रीमतीको यह निश्चय था कि ललितांगदेवने मनुष्यपर्याय ही पाई है और वह इसी देशमें पैदा हुआ है" सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि इसी देशमें (श्रीमतीके देशमें) ललितांगदेवके पैदा होनेका निश्चय श्रीमतीको होता तो वह इतना प्रयत्न ही क्यों करती और क्यों इतनी व्याकुल होती इससे सिद्ध है कि उसे निश्चय तो नहीं था किंतु संदेह था संदेहमें प्रयत्न करना स्वाभाविक ही है। सब लोग करते हैं और तदनुसार उसने भी किया। रही मनुष्यपर्यायकी बात सो इसका उत्तर यह है कि जीवोंके परि-णामोंकी जातियां रातदिनके सहवासियोंसे छिपी नहीं रहतीं। जातिस्मरण होनेसे श्रीमतीको यह मालूम हो गया था कि जब ललितांगदेव स्वर्गमें मेरे साथ रहता था तब करीब करीब उसके और मेरे परिणाम समान ही रहते थे। इसलिये उसने अनुमान किया होगा कि जब मैंने मनुष्य-पर्याय पाई है तब ललितांगदेवने भी पाई होगी बस इसी अनुमानके भरोसेपर उनसे तस्वीर

बना अपनी धायको देकर उसके ढूंढनेका प्रयत्न किया था। हम समझते है कि इतना सब समझ लेनेपर बाबूसाहबका भी इस कथाके बनावटी होनेका संदेह कपूर हो जायगा। परंतु बाबू-साहब शुद्ध हृदयसे प्रगट करे तब न।

८—आगे चलकर आपने लिखा है कि 'क्या श्रीमतीको यह भी निश्चय हो गया था कि ललितांगके जीवको जातिस्मरण या अवधिज्ञान हो गया है जिसके द्वारा वह अपने पहिले भवकी तस्वीरको पहिचान लेगा' उत्तरमे निवेदन है कि श्रीमतीको यह निश्चय नहीं था यदि निश्चय होता तो वह तस्वीर आदिके बनानेके झगड़ेमे ही क्यों पडती वह निश्चय कर लेती कि अवधिज्ञानसे जानकर वह मेरे पास आ ही जायगा उसे तो संदेह था और समझती थी कि जैसा मुझे जातिस्मरण हुआ है उसीतरह कदाचित् उसे भी हो तो फिर उसके पहिचानने और पता लगानेमे देर नही लगेगी एक कार्यके अनेक उपाय होते है। उनमेसे उसने इसी उपायको अच्छा समझा था इसीलिये किया यदि वह कोई और उपाय करती और वही लिखा जाता तो भी आप तो यही लिखते कि इसके द्वारा इसकी तलाश कैसे हो सकती है क्योकि आपको ता इधर उध-रसे लिख लिखाकर समीक्षाका ढांचा ढालना है इससे तो आपकी समीक्षा ही वेजोड़ मालूम होती है कथामे कोई वेजोड़ और बनावटीपना नही है क्योकि उसमे कोई असंभव बात नहीं है।

९—आगे चलकर आपने लिखा है कि ग्रंथमे यह कहीं लिखा है कि वज्रजंघको जाति, स्मरण या अवधिज्ञान होगया था" आपका यह लिखना भी बिलकुल झूंठ है क्योंकि इसी वज्रजंघके बारेमे आदि पुराणमे लिखा है " स तथापि कृतप्रज्ञो यौवनं परमापिमान् । स्वयंप्रभानुरागेण प्रायोभूत्स्त्रीषु निस्पृहः॥ ४८ ॥ पर्व ६। अर्थात्—" यद्यपि पुण्याचरण करनेवाला वह वज्रजंघ यौवन अवस्थाको प्राप्त हो गया या तथापि स्वयंप्रभाके अनुरागसे प्रायः अन्य स्त्रियोमे निपृह ही था।" इससे स्पष्ट सिद्ध है किं उसे जाति स्मरण था यदि जाति स्मरण न होता तो उसे स्वयंप्रभाका अनुराग कैसे होता स्वयंप्रभाकी याद कैसे आती क्या पहिले भवकी स्वयंप्रभाका स्मरण हो आना जाती स्मरण नही है इससे सिद्ध है कि आपने जो समीक्षा की है वह ऐसी ही वेजोड़ बातोसे भरी है आपने समीक्षा करनेके पहिले आदिपुरणको अच्छी तरह वांचा भी नहीं है और यो ही मन माना लिख मारा है यदि आप आदिपुराणको अच्छी तरह वांच लेते तो कदाचित् आपको ऐसा लिखनेका समय ही न आता। आपने इसी परसे इस कथाको बच्चोका खेल बतलाया है परंतु अब आपकी लिखी समीक्षा ही बच्चोंका खेल हो गई है क्योंकि जिसप्रकार बच्चे आंख मिचौनी खेलते है उसी प्रकार आपने भी कथा की कुछ बाते छिपाकर पूछ मारा है कि ग्रंथमें ये बातें है ही नहीं लिखी ही नही क्या समीक्षकको ऐसा करना शोभा देता है?

ऊपरके श्लोकसे स्पष्ट सिद्ध है कि वज्रजंघको जाति स्मरण था इसीलिये उसने वह तस्वीर पहिचानली और पहिले भवकी वे बातें भी बता दीं जो तस्वीरमे नही थी।

१०—आगे चलकर आपने लिखा है "श्रीमतीने पूर्वभवकी इस तस्वीरके सिवाय और कोई सुराग ललितांगके जीवका अपनी धायको नही बताया, और न स्वयं श्रीमतीहीको उसका

पता निशान माळूम था मानों विना किसी प्रकारके पता निशानके ही पृथ्वीभरके मनुष्योंमेंसे एक आदमीके ढूंढ निकालनेका काम दासीने अपने जिम्मे लिया और ऐसे बडे महान्‌कार्यको पूरा इस तरह कर दिखाया कि एक चैत्यालयमें जा बैठी और जब तक अपना काम न बना वहीं बैठी रही और तमाशा यह है कि काम भी वहींसेही पूरा हुआ। अगर ऐसी ऐसी कहानियां बनावटी न मानी जावें तो हमको आश्चर्य है कि फिर ऐसी कौन कहानियां होंगी जो बनावटी हों" इसमें आपने जो यह लिखा है कि मानों विना किसी प्रकारके पता निशानके पृथ्वी भरके मनुष्योंमेंसे एक आदमीके ढूंढ निकालनेका काम दासीने अपने जिम्मे लिया" सो भी ठीक नहीं है क्योंकि प्रथम तो पृथ्वीभरके मनुष्योंमेंसे एक आदमीके ढूंढ निकालनेका काम दासीने अपने जिम्मे नहीं लिया था किंतु अपने ही देशके मनुष्योंमेंसे उसे ढूंढ निकालनेका उपाय किया था दूसरे द्वीप और क्षेत्रोंमें तो वह जाही नहीं सकती थी फिर आपने पृथ्वीभरके मनुष्योंमेंसे कैसे लिख दिया क्या आपको यह भी किसी दिव्यज्ञानसे माळूम हो गया है कि वह पृथ्वीभरके मनुष्योंमेंसे ढूंढ रही है और फिर आपने लिखा है कि विना किसी प्रकारके पता निशानके ही सो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि पहिले भवकी तस्वीर उसके साथ थी फिर आपने विना किसी प्रकारके पता निशानके कैसे लिख मारा इससे तो कथा बनावटी सिद्ध नहीं होती किंतु आपकी समीक्षा बिल्कुल बनावटी और मिथ्या सिद्ध होती है। आगे आपने यह जो लिखा है कि " तमाशा यह है कि काम भी वहींसे ही पूरा " सो भी आपका पुराना राग है क्योंकि होनहार काम कहींसे भी तो होगा और जहांसे होगा वहांसे भी अविश्वास होनेके कारण आपको तो संदेह बनाही रहेगा क्या यह तमाशा नहीं है कि समीक्षाएं सब देवबंदसेही निकल रही हैं और इसपर भी तुर्रा यह है कि हितैषी भी वहीं पहुंच गया है।

११—आगे चलकर आपने लिखा है "इससे भी ज्यादा तमाशा यह है कि वज्रजंघने चैत्यालयमें धायसे बातें करते ही करते अनेक रंगोंसे भरी हुई अपने पूर्वभवके भोगोंकी एक खूबसूरत तस्वीर धायको देदी इससे सिद्ध होता है कि यह कोई वास्तविक कथा नहीं है किंतु एक जादूका पिटारा है जिसमेंसे जो जिस समय चाहें वह ही निकल आता है।" इसपरसे पाठक धोखेमें पड़ सकते हैं भला बातें करते करते तस्वीर कैसे बनाई जा सकती है परंतु यह तो बाबूसाहबने लिखनेका ढंग ही ऐसा रक्खा है असलमें यह बात नहीं है असल बात यह है कि पहिले यह सिद्ध किया जा चुका है कि वज्रजंघको भी जातिस्मरण था और उसी जातिस्मरणके कारण उसने पहिलेसे ही तस्वीर बनाकर रक्खी थी जो कि धायको उस तस्वीरके बदले देदी आदि पुराणमें इसी तरह लिखा है यथा—तदस्मत्पट्टकं पाणौ कृतवान्स कुतूहली। स्वपट्टकमिदं चान्यन्मम हस्ते समार्पिपत्। अर्थात्—अंतमें उसने वह हमारा चित्र अपने हाथमें लेलिया और अपना यह चित्र मुझे सौंप दिया जब वज्रजंघ स्वयंप्रभाके अनुरागसे अन्य स्त्रियोंमें निस्पृह था जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है तब यह स्वाभाविक बात है कि वह भी श्रीमतीके समान उसकी खोजमें लगा होगा और उसकी खोजके लिये तस्वीर बनाई होगी क्योंकि जातिस्मरण उसे था ही वज्रजंघने स्वयंप्रभाके जीवके लिये

अवश्य खोज की होगी इसका एक प्रमाण यह भी है कि जब चक्रवर्तीने वज्रबाहुसे कुछ मांगने की प्रार्थना की है तब उसने कन्या ही मागी है यथा—तत्प्रसीद विभो दातुं भागिनेयाय कन्यकाम्, अथवा-वस्तु वाहन सर्वस्वं लब्धये वासकृन्मया। किं तेनालब्धपूर्वं नः कन्यारत्नं प्रदीयताम्। इससे कथा तो प्राकृतिक नियमोंके अनुसार स्वाभाविक और वास्तविक सिद्ध होती है और आपकी यह समीक्षा जादूका पिटारा सिद्ध होती है क्योंकि आपके मनमें जिस समय जो आता है वही लिख देते है।

१२—आगे आपने लिखा है "धायने भी इस कथामे अवधिज्ञानियोंसे ज्यादा काम किया है क्योंकि चैत्यालयमें बातें करते करते जब वज्रजंघने उससे पूछा है कि यह तस्वीर किसने बनाई है तो वह उत्तर देती है कि यह तस्वीर तुम्हारे मामाकी बेटीकी बनाई हुई है। उनका रिश्ता उस समय धायको किसी अपने दिव्यज्ञानसे ही माळूम हुआ होगा और तो कोई कारण इस संबंधके जाननेका उस समय था नहीं।" इसके लिखते समय भी बाबू साहबको यह किसी अपने दिव्यज्ञानसे ही माळूम हुआ होगा कि चक्रवर्तीके घरमें कितने ही वर्षोंसे रही हुई धाय उस चक्रवर्तीकी बहिन बहिनोई भानेज आदिका नाम भी नहीं जानती थी। आपके दिव्यज्ञानमें संबंधियोंका नाम जाननेमें भी किसी कारणकी आवश्यकता है तभी तो आपने लिखा है कि "और तो कोई कारण इस संबंधके जाननेका उस समय था नहीं" और उस समय कोई कारण नही था यह बात भी आपका दिव्यज्ञान ही जानता है। यह स्वाभाविक वा प्राकृतिक बात है कि पुराने नौकर संबंधियोंका सब नाम जानते ही हैं उन्हे पहिचानते भी है आगे वज्रदंतके साथ बातचीत करते समय वज्रबाहुने कहा भी है कि वस्तुवाहन आदि चीजें आपसे मुझे कईबार मिल चुकी है इससे सिद्ध है कि वह कईबार वज्रदंतके घर आया होगा हां इतना अवश्य है कि इन दोनोंके जातिस्मरण होनेके बाद उसका आना नही हुआ होगा। क्या इतनेमें ही वह धाय उसे भूल गई। इससे तो कथाका प्राकृतिक होना दृढ होता है क्योंकि धायने चक्रवर्तीके भानजेको देखते ही पहिचान लिया और इसका भी कारण यह है कि चक्रवर्तीको घरमें वह बहुत वर्षोंसे रहती थी। पुराने नौकर वा घरमे रहनेवालेको संबंधियोंका नाम जाननेके लिये वा उन्हें पहिचाननेके लिये अवधिज्ञानकी कोई आवश्यकता नहीं है जो आपने लिखी है।

१३—आगे आपने लिखा है कि "चैत्यालय भी इस कथामें दुनियांसे निराला ही है जिसकी उंचाई सुमेरु पर्वतके बराबर है जो कि एक लाख ऊंचा है और स्वर्गतक पहुंच गया है।" यहां भी आपने खूब ही छल किया और अलंकारशास्त्रका गला घोट डाला है। मूलमें लिखा है "सुमेरुमिवोच्छ्रितं" अर्थात् वह मेरुके समान ऊंचा था इसका यह तात्पर्य है कि वह बहुत ऊंचा था, यह नहीं है कि मेरुपर्वत लाख योजन उंचा है इसलिये वह चैत्यालय भी लाख योजन ऊंचा है। यदि इस अलंकारका यही अर्थ लिया जायगा तो इसी चैत्यालयके लिये इसी आदिपुराणमे लिखा है "यद्भित्तयो जगच्चित्तहारिण्यो गणिका इव" अर्थात् उस चैत्यालयकी दीवालें गणिकाके समान संसारके चित्तको ग्रहण करनेवाली थीं, तब क्या वे अचेतन दीवालें गणिकाके

समान विषय सेवन करती थीं क्या ऐसा अर्थ करना छल करना नहीं है और अलंकारका गला घोंटना नहीं है। परंतु बाबू साहब समझें तब न उन्हें तो अपने स्वार्थसे काम।

१४—आगे आपने लिखा है " इस चैत्यालयमें चित्रशाला भी एक निराली ही चीज है जो कहीं भी किसी मंदिरमे नहीं देखी गई है शायद यह चित्रशाला इस कथाके ही वास्ते बनी हो।" परंतु आपका यह लिखना भी ठीक नहीं है क्योंकि शहरके बाहर जो चैत्यालय होते हैं उनके समीप चित्रशालाएं बाग बगीचे तालब आदि मनोरंजक चीजें होती ही हैं जैसे कि कलकत्तेमें बलगाछियाका मंदिर एक बहुत बडे बागमें हैं और उसके सामनें एक बहुत बड़ा तालाब है पिछाडी भी छोटे दो तालाब और हैं इसी तरह यदि कोई इसके समीप अजायबघर या चित्रशाला बनादे तो कोई पाप नहीं है। देहली आदिके मंदिरोंमें अच्छे अच्छे चित्र है इससे यह बात तो निश्चित ही है कि चैत्यालयोंमें चित्र बनानेकी प्रथा बहुत प्राचीन है यदि कोई चित्रोंका अधिक प्रेमी हो तो पाठशाला धर्मशाला स्वाध्यायशाला और भोजनशालाके समान चित्रशाला भी बना सकता है इससे आपने यह कैसे लिखमारा कि वह चित्रशाला निराली ही चीज है और इस कथाके ही वास्ते बनी है क्या आपने किसी दिव्यज्ञानसे जान लिया है कि चित्रशाला वहां थी ही नहीं और किसी मंदिरमें नहीं होती है क्या आपने दुनियांभरके मंदिर देख लिये हैं। और देख लिये हैं तो किस दिव्य ज्ञानसे ?।

१५—आगे आपने लिखा है कि " उस चैत्यालयमें जहां अनेक मुनि मौजूद रहते हैं और अनेक लोग पूजा वंदनाको आते हैं वहाँ उस भोगोंकी तस्वीरका रक्खा जाना किसी तरह भी संभव नहीं हो सकता ' परंतु यह लिखना भी ठीक नहीं है। क्योंकि ऊपर यह लिखा जा चुका है कि चित्रशालाएं आदि मंदिरके समीप रहती हैं और जो उसके शौकीन हैं वे ही वहां जाते हैं मुनि वा केवल पूजावंदना करनेवाले लोग नहीं। फिर आगे आपने लिखा है " साधारण चैत्यालयमें तो यह बातें नहीं हो सकती हैं इसलिये इस कथाकी ही पूर्तिके वास्ते ही यह अद्भुत चैत्यालय गढ़ा गया है।" परंतु आपका यह लिखना भी स्ववचन बाधित है क्योंकि आपने यहीं लिखा है कि साधारण चैत्यालयमें तो यह बातें नहीं हो सकती हैं इससे सिद्ध है कि विशेष चैत्यालयमें अवश्य होती है और वे ऊपर लिखे अनुसार ही होती हैं अर्थात् मांदिरके समीप धर्मशाला वा चित्रशाला आदिमें होती हैं इससे चैत्यालयका गढ़ा जाना तो सिद्ध नहीं होता किंतु आपकी समीक्षाका गढ़ा जाना अवश्य सिद्ध होता है। क्योंकि साधारण चैत्यालयोंमें ऐसी बातें न होकर विशेष चैत्यालयोंमें आप भी स्वीकार करते हैं। फिर आपने लिखा है कि ज्यादा खटकनेकी बात इसमें यह है कि वह धाय भी हरवक्त उस तस्वीरके साथ उस चैत्यालयमें रहती थी सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसे बडे चैत्यालयोके समीप धर्मशालाएं रहती ही हैं संभव है वह किसी धर्मशालामें रहती हो और समयानुसार चित्रशालामें पहुंच जाती हो अथवा वह चैत्यालय शहरसे बहुत दूर भी नहीं था इससे संभव है कि वह घर भी आ जाती हो और समयानुसार चित्रशालामें पहुंच जाती हो यह दूसरी बात है कि यह बात बहुत छोटी और निःप्रयोजन होनेके कारण ग्रंथकारने नहीं

दिखलाई है इससे आपने यह किस दिव्यज्ञानसे जान लिया कि वह चैत्यालयमे ही रहती थी और उसे किसीने नही रोका ? संभव है किसीने मना किया हो और अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये उसने न माना हो जैसे आप इन कथाग्रंथोका दुरुपयोग कर रहे है समाजके लोग आपको हर तरहसे समझा रहे है आपकी भूल दिखला रहे है और आप नहीं मानते।

१६—आगे आपने श्रीयशोधर तीर्थंकरके केवल ज्ञानके समय श्रीमतीके बेहोश हो जाने-पर और वज्रजंघके चैत्यालयमे बेहोश हो जानेपर शोक प्रगट किया है। सो भी ठीक नहीं है क्योकि यह ऊपर बताया जा चुका है कि चित्रशाला चैत्यालयसे अलग थी और उसीमे वज्रजंघ बेहोश हुआ था चैत्यालयमें नहीं। दूसरी बात यह है कि निमित्त नैमित्तिक संबंध अनिवार्य होता है वह किसीसे रुक नहीं सकता अन्यथा बरसातमे बादलोंका बरसना भी रोका जा सकता है। परंतु निमित्त नैमित्तिक संबंधको कोई रोक नहीं सकता। इसी तरह उन दोनोके बेहोश होनेके निमित्तको रोकनेकी किसीको ताकत नहीं थी इसीलिये वे अपने अपने निमित्तको पाकर बेहोश हुए इससे आपका यह खयाल बिल्कुल झूठा है कि आर्यावर्त देश और पंचमकालमे लिखी हुई विदेह क्षेत्र और चौथे कालकी कथा झूंठी है बल्कि प्राकृतिक होनेके कारण कथा तो सच्ची ही है यह तो केवल आपका अविश्वास है आपने जो 'विदेह क्षेत्र और चौथे कालकी' ऐसा लिखा है उससे भी अविश्वास टपकता है क्योंकि विदेह क्षेत्रमें सदा चौथा काल रहताही है उसके दुह-रानेकी क्या आवश्यकता थी।

१७—आगे आपने लिखा है कि श्रीमतीके पिताको दिग्विजय करनेमे कितना समय लगा यह ग्रंथमे नहीं लिखा सो ठीक नही है क्योंकि ग्रंथमे लिखा है—"इति कतिपयैरेवाहोभिः कृती-कृतदिग्जयो जयप्रतनया सार्द्धं चक्री निवृत्य पुरी विशन्" अर्थात् "वह कृतकृत्य वज्रदंत चक्रवर्ती कितने ही दिनोमे सब दिशाओको जीतकर वापिस लौटा और अपनी विजय करनेवाली सेनाके साथ उसने अपने नगरमे प्रवेश किया।" इससे स्पष्ट सिद्ध है कि वह कितने ही दिनोमे वापिस लौट आया ग्रंथकर्ताने कितने ही के साथ दिन लगाये है वर्ष वा महीना नही इससे साफ माळूम होता है कि उसे दिग्विजय करनेमें बहुत दिन नही लगे थे। परंतु आपने भरतके दिग्विजय करनेके समान साठ हजार वर्षका अनुमान कर डाला है। और फिर दिग्विजयका साठ हजार वर्ष ही समय निश्चित कर आपने समीक्षा कर डाली है। बाबूसाहबको यह भी ध्यान नहीं आया कि आगेके चक्रवर्त्तियोंकी आयु भी साठ हजार वर्षकी नही है जयसेन चक्रवर्त्तीकी तीन हजार वर्षकी ही आयु थी तो क्या उसने छहो खंड और बत्तीस हजार राजा नहीं जीते थे? जब ग्रंथमें कितने ही दिनमें वापिस लौट आया ऐसा साफ लिखा है फिर भी आपने जो साठ हजार वर्ष समय बतलाया है सो बिल्कुल झूंठ है या नही। इससे साफ माळूम होता है कि आपने ग्रंथ पूरा नहीं पढ़ा है केवल सच झूंठ लिखकर लोगोंको बहकानेका प्रयत्न किया है। क्या ऐसी झूंठी बाते लिख देना ही समीक्षा है।

फिर आपने लिखा है कि वह धाय साठ हजार वर्ष तक चैत्यालयमें बैठी रही सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ग्रंथके ऊपर लिखे श्लोकके अनुसार वह कुछ ही दिन रही सो भी चैत्यालयमें नहीं चित्रशालमें। फिर आपने लिखा है कि चक्रवर्तीके आनेपर धाय भी आ गई वज्रजंघ भी आ गया और तुरंत ही उनका विवाह भी हो गया सो भी ठीक नहीं है उनका तुरंत ही विवाह हो गया यह आपने किस दिव्यज्ञानसे जान लिया। ग्रंथमें लिखा है 'इतिप्रमदविस्तारमुद्वहत्त-त्पुरं तदा। राजवेश्म च संवृत्तं श्रियमन्यामिवाश्रितं' अर्थात् "इस प्रकारके अनेक आनंदसमूहोंसे वह नगर बहुत ही सुशोभित हुआ था और राजमहल तो ऐसा शोभायमान हुआ था मानों इसकी शोभा पहिलेसे सर्वथा बदल गई हो" इससे सिद्ध है कि विवाहका खूब उत्सव मनाया गया था खूब तैयारियां की गई थीं, क्या तैयारियां करने और उत्सव मनाने आदिमें समय नहीं लगा था और वज्रजंघके आते ही उसे श्रीमतीका हाथ पकड़ा दिया था? और देखिये चक्रवर्तीने दिग्विजयसे वापिस आकर जब श्रीमतीको समझाया है तब कहा है "त्वदिष्टसंगमोवश्यमद्य-श्वो वा भविष्यति' अर्थात् तेरे इष्टका समागम आज या कल अवश्य होगा।' क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि चक्रवर्ती जब श्रीमतीको समझा रहा था तब भी वज्रजंघ नहीं आया था और कब आवेगा ऐसा निश्चित समय भी उसे मालूम नहीं था फिर आपने तुरंत ही उनका विवाह हो गया कैसे लिख मारा क्या इस तरह ग्रंथको बिना पढ़े ही समीक्षा लिखकर आपने एक थियेटरके ऐक्टरका काम नहीं किया है? और इसपर आपको बलिहारी नहीं देनी चाहिये?

१८—आगे आपने लिखा है कि जैन कथा ग्रंथोमें बहुत करके मामा फूफीके बहिन भाई-योंमें ही विवाह होना कथन किया गया है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जैसे खंडेलवाल जातिमें चार गोत्र टाले जाते हैं परंतु आपकी अग्रवाल जातिमें एकही गोत्र टाला जाता है एक लडका उसी गोत्र-वाली लडकीसें शादी कर सकता है जोकि उस लड़केकी माका गोत्र है इस हिसाबसे क्या वह लड़की उस लडकेकी बहिन वा मौसी नही लगेगी? परंतु बात यह है कि अग्रवाल जातिमें उस माके गोत्रवाली लडकीके साथ बहिन वा मौसीका संकल्प नहीं होता है इसलिये विवाह हो जाता है इसी तरह जहां मामाकी लड़कीके साथ विवाह किया जाता है वहां बहिनका संकल्प नहीं होता है इसीलिये उनका विवाह हो जाता है आपने 'जैन कथा ग्रंथोंमें बहुत करके कथन किया है' ऐसा जो लिखा है उस परसे तो मालूम होता है कि आप अकेले देवबंदकी बातें जानते हैं कोल्हापुर बेलगांव आदि दक्षिण प्रांतमें अबभी ऐसा होता है यह बात आपको मालूम नहीं है इसीलिये आपने कथाको बनावटी लिखमारा है सो ठीक ही है क्योंकि 'नवेत्ति यो यस्य गुण प्रभावं सत्तस्य निंदां सततं करोति यथा किराती करिकुम्भजातां मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाम्' अर्थात् जो जिसका प्रभाव नहीं जानता वह उसकी सदा निंदा किया करता है जैसे भीलिनी हाथियोंके मस्तकसे निकले हुए मोतियोंको तो छोड देती है और गुंजाओंका (गोंगचियोंका) हार बनाकर पहिनती है"

जनाब! श्रीमती जिसको ढूंढती थी वह उसकी फूफीका ही बेटा निकला यह संयोग और भाग्यकी बात है। संबंधियोंका संबंध पूर्व कर्मके अनुसार होता है यही बात ग्रंथकारने स्वयं चक्र-

वर्तीके मुंहसे कहलवाई है यथा—"प्रागेव चिंतितं कार्यं मयेदमतिमानुषं। विधिरस्तु प्राक्तरामेव सावधानोत्र के वयं" अर्थात् यह कार्य मनुष्यकी बुद्धिके बाहर है तथापि मैने पहिलेसे ही इसप्रकार करनेके लिये विचार कर रक्खा है अथवा इस कार्यके करनेके लिये इन दोनोंके पूर्वकर्मोंका उदय पहिले ही सावधान हो रहा है इसमें हमलोग क्या कर सकते हैं?

१९—आगे आपने लिखा है कि "चक्रवर्तीको वज्रजंघका पता मालूम होते हुए भी श्रीमतीको तड़फती छोड़ कर दिग्विजयको चला गया जिसमें साठ हजार वर्ष लगते हैं" सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऊपर यह सप्रमाण लिखा जा चुका है कि उसे साठ हजार वर्ष नहीं लगे बल्कि बहुत थोड़े दिन लगे जब वह थोड़े ही दिनमें लौट आया तो यह भी मानना ही पड़ता है कि जाते समय भी उसने थोड़े ही दिनमें लौटनेका विचार अवश्य कर लिया होगा और इसीलिये उसने लौटकर ही विवाह करना उचित समझा होगा। पीछेसे धायने वह तस्वीर चित्रशालामे रक्खी और वह तस्वीर भोगोंकी होनेसे आपको उसीपरसे मजा बंधनेका स्वप्न आ गया यह आपके तीव्र रागकी बात है ऐसे लोगोंके लिये श्रीमान् पंडित टोडरमलजीने लिखा है "बहुरि तू कहै है ताकै निमित्ततैं रागादिक वधि जाय सो जैसे कोऊ चैत्यालय बनावै सो वाका तो प्रयोजन तहां धर्मकार्य करावनेका है और कोई पापी तहां पापकार्य करे तो चैत्यालय बनावनेवालेका तो दोष नाहीं तैसे श्रीगुरु पुराणादिविषैं शृंगारादि वर्णन किये तहां उनका प्रयोजन रागादि करावनेका तौ है नहीं धर्मविषैं लगावनेका प्रयोजन है अर कोई पापी धर्म न करै अर रागादिक ही वधावै तौ श्रीगुरुका कहा दोष है—इत्यादि। इसमें आपने उस तस्वीरको जिनमंदिरमे रक्खा जाना वतलाया है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि वह चित्रशालामें रक्खी गई थी जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है जिनमंदिरमें नहीं।

२०—आगे आपने लिखा है कि "वह चैत्यालय भी बहुत दूर नहीं था क्योंकि विवाहके पीछे वज्रजंघ शामके वक्त चिराग लेकर उसकी पूजाको गया था और श्रीमती भी उसके पीछे पीछे गई थी ऐसी हालतमें धाय रोजाना वापिस आ सकती थी और जा सकती थी लेकिन इस कथाका तो कुछ बच्चोंकी कहानीवाला ऐसा ढांचा बांधा गया है, मानों दिग्विजयको भी एक दो ही दिन लगे और धायको भी एक दो ही दिन चैत्यालयमें रहना पड़ा" यह समीक्षा लिखनेके पहिले बाबूसाहबने केवल अपने मनमें निश्चित कर रक्खा है कि दिग्विजयको साठ हजार वर्ष लगे धाय भी वहां साठ हजार वर्ष तक बैठी रही। तभी तो अपने इस स्वाभाविक बातको भी बच्चोंकी कहानी बतला दी है यदि बाबूसाहब अपने मनके इस झूंठे सिद्धांतको निकाल दें कि दिग्विजयको साठ हजार वर्ष लगे और धाय साठ हजार वर्ष तक बैठी रही तो फिर सब ठीक बन जाता है। पहिले भी लिखा जा चुका है कि दिग्विजयको थोडे ही दिन लगे और वह धाय या तो धर्मशालामे रही होगी या रोज वापिस लौटकर घर आ जाती होगी और समयपर चित्रशालामें जाती होगी। ग्रंथकारने कितने ही दिनमें चक्रवर्तिके दिग्विजयसे वापिस लौटनेका हाल लिखा है परंतु आपने अपने दिव्यज्ञानसे पहिले तो यह निश्चय कर लिया कि उसे

साठ हजार वर्ष लगे और फिर उसी दिव्यज्ञानसे एक दो दिनका निश्चय कर लियां। इससे मालूम होता है कि आपका दिव्यज्ञान भी एक जादूका पिटारा है। जिसमेंसे जब जो चाहे सो इसी समय निकल आता है।

२१—आगे आपने लिखा है कि "श्रीमतीने किसी अवधिज्ञानी मुनिसे अथवा अपने दादा तीर्थंकरसे पूछकर पतिकी खोज क्यों नहीं की" इसपर बाबूसाहबको यह समझ लेना चाहिये था कि जिन कन्याओंके बारेमें किसी अवधिज्ञानी वा केवलज्ञानी से पूछनेका वर्णन आया है वह किसी प्रसंगानुसार आया है विना प्रसंगके नहीं ऐसा प्रसंग श्रीमतीको नहीं आया यदि आता तो वह भी पूछ लेती। तथा ऐसा प्रसंग न आनेसे ही उसे तस्वीर आदि बनाकर उसकी खोजका उपाय करना पड़ा। इसमें रसिकताकी क्या बात है? यदि ऐसी ही रसिकता देखी जाय तो जैसे मरी हुई किसी वेश्याको देखकर किसी कामीका चित्त चंचल वा कामपीड़ित हुआ पर उसीतरह तीव्र-रागियोंको प्रत्येक कथासे राग उत्पन्न हो सकता है। आपको यह भी याद रखना चाहिये कि ये चरित्र चक्रवर्त्ति ऐसे बड़े बड़े राजाओंके हैं हमारे वा आपसरीखे नाचीज मनुष्योंके नहीं महा-पुरुषोंके चरित्रोंमें सभी तरहकी बातें होती हैं जो कि ग्रंथकारोंने सब समयानुसार ज्योंकी त्यों लिखी हैं इसमें भ्रम करना केवल अज्ञान है और कुछ नहीं।

२२—आगे आपने लिखा है कि "महापूत चैत्यालयमें सदा अनेक विभूतिकेधारी मुनि रहते थे अनुमान साठ हजार वर्षतक धाय उस चैत्यालयमें रही परंतु कैसे अचंभेकी बात है कि उसने एक दिन भी किसी अवधिज्ञानी मुनिसे ललितांगके जीवका पता न पूछा उसके न पूछनेका कारण भी इसके सिवाय और कोई मालूम नहीं होता कि इसप्रकार पूछ लेनेसे यह कथा फीकी हो जाती" परंतु आपका यह लिखना भी बिल्कुल ठीक नहीं है क्योंकि इसमें आपकी सब बातें मनगढंत लिखी हैं वास्तविक नहीं आपने लिखा है कि 'उस महापूत चैत्यालयमें सदा अनेक विभूतिके धारी मुनि रहते थे।' सो भी आपको किसी दिव्यज्ञानसे ही मालूम हुआ होगा क्योंकि मुनि लोग प्रायः एक जगह रहते ही नहीं फिर 'वे सदा रहते थे' लिखना बिल्कुल मिथ्या और मनगढंतके सिवाय और क्या हो सकता है। इसके सिवाय धायका साठ हजार वर्ष रहना जो लिखा है सो भी मनगढंत ही है और इस बातका खंडन ऊपर अच्छी तरह किया जा चुका है जब ये दोनों ही बातें आपकी सही नहीं है तब फिर इनके सहारे लिखी हुई आपकी समीक्षा सही कैसे हो सकती है? जनाब! इससे तो हम जो कुछ ऊपर लिख चुके हैं वह और दृढ़ होता है कि वह धाय चैत्यालयमें नहीं बैठी थी किंतु चित्रशालामें बैठी थी और चित्रशाला उस चैत्यालयके समीप किंतु अलग थी। जिसमें कि प्रायः चित्रोंके प्रेमी ही लोग वहां जाते थे अन्य मुनि आदिक नहीं। इसीसे धायको किसी मुनिसे पूछनेका समय नहीं मिला। शोकके साथ लिखना पड़ता है कि आपने ऊटपटांग और मिथ्या बात लिखकर प्राकृतिक बातोंको उलटना चाहा है परंतु याद रखिये कि प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन किसीसे हो नहीं सकता।

वज्रजंघकी आगेकी कथाकी समीक्षाकी परीक्षा।

१—आपने लिखा है "मुनिको आहार देना साधारण बात है वज्रजंघने भी अनेकवार आहार दिया होगा इस समय वज्रजंघके आहार देनेपर देवताओंका आकाशसे पंचाश्चर्य करना बिल्कुल बेसवब माछ्म होता है"। सो भी ठीक नहीं है क्योंकि साधारण मुनियोंको आहार देनेसे पंचाश्चर्य नहीं होते है किंतु ऋद्धिधारी मुनियोंको आहार देनेसे होते है शायद पंचाश्चर्य होनेका यह सबब बाबूसाहबको माछ्म नही था इसीसे इसे बेसवब लिखमारा है आपको चाहिये था कि समीक्षा लिखनेके पहिले ये सब बातें जानतो लेते।

२—फिर आपने लिखा है कि "इस कथनके पढनेसे तो यह माछ्म होता है कि कथा जोड़नेवालेको इस स्थानपर आहारदानकी महिमा वर्णन करनेकी ही धुन होगई है जिससे सबही जीवोंका अगला पिछला सब कथन आहारदानका ही कथन बन गया है।" सो भी ठीक नहीं है क्योंकि सबही जीवोंका अगला पिछला सब कथन आहारदानका कथन नही बना है। सूकर बंदर न्योला आदि जीवोंके पूर्व भव कथन करनेमें कही आहारदानका कथन नहीं आया है फिर आपने सबही जीवोंका अगला पिछला सब कथन आहारदानका कथन बन गया कैसे लिख दिया इस परसे तो यह सिद्ध होता है कि आपको केवल समीक्षक बननेकी धुन समाई है इसीलिये तो आपने ऐसी बातें जोड़कर लिख दी हैं जो कथामें नहीं हैं।

३—फिर आप लिखते हैं "अगर मुनिको एकवार आहारदान देनेवाले वा दानकी अनुमोदना करनेवालेको भोगभूमि मिलती हो तो चौथे कालके तो सबही जीव भोगभूमि जाते होंगे क्योंकि उस समय तो सब जगह अनेकानेक मुनि विचरते रहते थे, बीस हजार राजाओंने तो एक वज्रदंतके साथ दीक्षा ली थी ऐसे समयमे मुनियोंकी और उनके आहार देनेवालों और अनुमोदना करनेवालोंकी क्या कमी हो सकती है" परंतु 'बाबूसाहबने यह भी विना विचार किये ही लिखा है। यह ठीक है कि उस समय बहुतसे मुनि थे और उन्हें आहार दान देनेवाले वा अनुमोदना करनेवाले भी बहुत थे परंतु क्या उन आहारदान देनेवाले और अनुमोदना करनेवालोंमेसे कोई भी दीक्षा लेकर स्वर्ग मोक्ष नहीं जाते थे। यदि नहीं जाते थे तो आपने यह बात किस दिव्यज्ञानसे जानी यदि जाते थे तो फिर सबही जीव भोगभूमि जाते होंगे यह क्यों लिखा? प्रिय बाबूसाहब! आपको ये सब बातें विचारकर लिखनी थीं तथा इसके साथ साथ यह भी विचार करना था कि सब जीवोंके परिणामोंकी जातियां एकसी नहीं होती है किन्हीं किन्हीं जीवोंके परिणामोंकी जातियां ऐकसी मिल भी जाती हैं परंतु सबकी नही। इसी तरह आहार देनेवाले वा अनुमोदना करनेवालोंके सबके परिणाम भोगभूमिके कर्म बांधने लायक होते होंगे यह कहा नही जा सकता है जिन जीवोंके शुभ कर्मोका प्रबल उदय होता है उन्हींके ऐसी सामग्रीका योग मिलता है सबके नहीं।

—४ आगे चलकर आपने तमाशा दिखलाया है कि "राजा प्रीतिवर्द्धनके आहार देने पर भी तो पंचाश्चर्यका होना वर्णन कर दिया" परंतु इसका समाधान ऊपर लिखा जा चुका है कि।

ऋद्धि धारियोंको आहार देनेसे पंचाश्चर्य होतें हैं प्रीतिवर्द्धनने जिन मुनिको आहार दिया था वे ऋद्धिधारी थे क्योंकि वे अवधिज्ञानी थे अवधिज्ञान भी एक ऋद्धि है ऋद्धिधारीको आहार देनेसे पंचाश्चर्यका होना आगम सिद्ध है तमाशा तो मनगढ़ंत बातें लिखकर आप दिखला रहे है आगे आपने कुटिल शब्दोंमे प्रीतिवर्द्धनकी कथा लिखकर उसके दानकी विधिके बिल्कुल ही प्रतिकूल बताया है सो भी ठीक नहीं हैं क्योंकि ग्रंथमें लिखा है कि 'ततो नृपतिना तस्मै दत्तं दानं यथा विधि, अर्थात् तदंनतर राजा प्रीतिवर्द्धनने उन मुनिराजको विधि पूर्वक दान दिया इससे यह तो सिद्ध है कि राजाने जो दान दिया वह विधिपूर्वक दिया विधिके प्रतिकूल नहीं परंतु फिर भी बाबूसाहबने उसे विधिके प्रतिकूल ही लिखा है, जान पडता है बाबूसाहबका ध्यान कथा बांचते समय ऊपर लिखे श्लोकपर नहीं गया होगा अथवा अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये जानकर भी उसे छिपा लिया है और इस तरह लोगोको धोखा दिया है आगे आपने अपनी सूझती श्रद्धासे पानी छिड़कनेको भी पाप वतलाया है हम समझते हैं कि दुनियाभरके सब शहरोंकी गवर्नन्मेंटें जो अपने शहरोंमें प्रतिदिन दोवार पानी छिड़कवाया करती हैं उसके बंद करानेकी भी कोशिश आपने जरूर की होगी और कमसे कम देववंदमें पानीका छिड़काव जरूर ही बंद करा दिया होगा क्योंकि आप वहाँके नामी धर्मभीरु वकील है एक राजनीतिज्ञ वकीलकी कलमसे ऐसा लिखा जाना सचमुच ही बड़ेसे बड़ा आश्चर्य बढ़ानेवाला है।

फिर आपने लिखा है "सबही लोग इन फूलों परसे चले होंगे" फिर आपने लिखा है "व्रती श्रावक न मालूम कबतक चलने फिरनेसे बंद होकर रुके पड़े रहे होंगे" वाह, कैसे अच्छे शब्द लिखे हैं 'रुके पड़े रहे होगें' मानों वे गेंहुओंके थैला थे जो पड़े रहे होंगे और फिर सब ही लोग इन फूलोंपरसे चले होंगे और व्रती श्रावक रुके पड़े रहे होगे ये दोनो वाक्य कैसे पूर्वापर विरुद्ध है कहां तो सब लोगोंका चलना और फिर कहां व्रती श्रावकोंका रुका रहना क्या यही सत्यकी खोज है और फिर सब लोगोंका चलना आपने जाना किस दिव्यज्ञानसे ? क्योंकि कथामें तो कहीं लिखा नहीं है शोक है कि आपकी समीक्षा बिल्कुल ऐसी ही मिथ्याबातोंसे भरी हुई हैं।

५—आगे आपने लिखा है कि "जिन मुनिमहाराजको आहार देनेसे ये पंचाश्चर्य हुए वेह अवधिज्ञानी थे और ऐसे अवधिज्ञानी थे कि प्रत्येक जीवके अगले पिछले अनेक भव बता सकते थे, उनको शहरमें जानेसे पहिले इतना भी मालूम न हुआ कि शहरकी तमाम गलियोंमें फूल बिछे हुए हैं इसवास्ते वहां नहीं जाना चाहिये कमसे कम शहरमें जाकर वहां सब जगह फूल बिछे हुए देखकर वहांसे लौटनेके लिये लाचार होनेपर तो उनको अपने अवधिज्ञानसे अवश्य ही यह बात मालूम हो गई होगी कि राजा इस प्रपंचके द्वारा हमारा आहार जबर्दस्ती अपने यहां कराना चाहता है इसवास्ते सबसे ज्यादा आश्चर्य इस बातका है कि ऐसा मालूम होनेपर भी मुनिराजको आहारका अंतराय नहीं हुआ और शहरसे इसप्रकार लौटनेपर भी वह आहारके लिये राजाके पड़ावमें चले गये।" परंतु बाबूसाहबने इतना सब रोना भी वे समझे बूझे लिखा है बाबूसाहबको यह मालूम नहीं है कि मुनिको आहारके लिये अवधिज्ञान जोड़नेकी आज्ञा नहीं है।

परंतु सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि बाबूसाहबको इन सब बातोंका ज्ञान न रहते हुए भी आपने निश्चयात्मक वाक्य लिखमारा है कि ऐसा मालूम होनेपर मुनिराजको आहारका अंतराय नहीं हुआ। मानो आपको यह बात भी किसी दिव्यज्ञानसे ही मालूम होगई होगी कि मुनिराजको उसका ज्ञान होगया था पाठक देखो तो कि यह कैसी कपोलकल्पित और मनगढंत और टकसालकी ढली समीक्षा है।

६—आगे आपने लिखा है "राजा वज्रजंघ और श्रीमतीने जिन दो मुनियोंको आहार दिया था वह दोनों उनके सबसे छोटे बेटे थे लेकिन आश्चर्य है कि मावाप तो उनको पहिचान न सके और कंचुकीने उनको पहिचान लिया बच्चोंको दीक्षा नहीं दी जाती है इसकारण दीक्षाके समय वह जरूर जवान होगये होंगे ऐसी दशामे भी मावापने उनको नहीं पहिचाना यह बात जीको प्रिय नही लगती है" इससे मालूम होता है कि बाबूसाहबको संसारका अनुभव भी बहुत कम है इस बातको सब कोई जानते हैं कि प्रायः बड़े आदमियोंके लड़के और फिर वज्रजंघ ऐसे बड़े महाराजके लड़के अवश्य धाय और कंचुकियोंके समीप रहते होंगे जैन शास्त्रोंके अनुसार दीक्षाका समय भी साढ़े आठ वर्षकी आयुसे ऊपरका है और यह ग्रंथमे लिखा ही है कि वे सबसे छोटे बेटे थे ऐसी हालतमें मावापके न पहिचाननेके कई कारण आ इकट्ठा होगये थे। एक तो छोटी उमरमें उनका दीक्षा धारण करना दूसरे तपश्चरणसे तथा समय अधिक लग जानसे शरीरमें अंतर पड़जाना और तीसरे सबसे बड़ा कारण यह है कि मावाप दोनों ही उस समय उनकी भक्तिमें चूर थे। इसलिये उस ओर उनका लक्ष्य न ही गया। सिर और दाढ़ी मूछ मुड़ालेनेपर रातदिन पास बैठनेवाला आदमी भी विना लक्ष्यके पहिचाननेमें नहीं आता फिर भला न जाने कितने दिनका तपस्वी विना लक्ष्यके कैसे पहिचाना जा सकता है। रही कंचुकीके पहिचाननेकी बात सो कंचुकीका लक्ष्य उस ओर पहुंच गया होगा। क्योंकि वह किसी भक्तिमें तो लीन था ही नही इसलिये उसने पहिचान लिया क्योंकि उस कंचुकीने रात दिन उसे खिलाया होगा। इसमें जीको अप्रिय लगनेकी कोई बात नहीं है। सब स्वाभाविक कथा है।

७—आगे आपने लिखा है कि वज्रजंघने अपने और श्रीमतीके भव मुनि महाराजसे क्यो पूछे यह बात समझमे नहीं आती क्योंकि श्रीमतीको तो जब विवाहसे पहिले ही देवोंको देखकर जातिस्मरण होगया था तब उसने विनाकारण ही अपने पहिले तीन भव अपनी धायको सुना दिये थे, रहे वज्रजंघके पूर्व भव सो उसने तो, विना जातिस्मरण ही चैत्यालयमे रक्खी हुई तस्वीरको देखकर पहिचान लिया था कि यह मेरे पूर्व भवकी तस्वीर है और अपने पूर्वभवके अनेक भोग वर्णन करके तुरंत ही अपने पहिले भवकी एक तस्वीर भी बनादी थी।" सो भी आपने ठीक नहीं लिखा है क्योकि विना जातिस्मरणके चैत्यालयमें रक्खी हुई तस्वीर पहिचान ली थी यह लिखना बिल्कुल मिथ्या है उसके जातिस्मरण था स्वयंप्रभाका अनुराग था और इसीसे वह अन्य स्त्रियोंमें निस्पृह था यह बात पहिले लिखी जा चुकी है। फिर आपने तुरंतही पहिले भवकी तस्वीर बना दी लिखा है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि तुरंत तस्वीर बन नहीं सकती है। यह

बात विस्तारसे पहिले भी लिखी जा चुकी है। कि जातिस्मरण और स्वयंप्रभाका अनुराग होनेसे पहिले हीसे उसने तस्वीर बना रक्खी थी उस समय तो उसने दी थी जैसा कि पहिले ग्रंथका श्लोक देकर लिखा जा चुका है। इससे सिद्ध है कि उसने न तो तुरंत तस्वीर बनाई और न बिना जातिस्मरणके तस्वीर पहिचानी। इस तरह आपके दोनों दिये हुए हेतु मिथ्या ठहरते हैं जब आपके हेतु ही मिथ्या हैं तो फिर आपका साध्य मिथ्या होना ही चाहिये।

ग्रंथके देखनेसे पता लगता है और यह ऊपर लिखा भी जा चुका है कि वज्रजंघको केवल अपने पहिले एक भवका जातिस्मरण था अधिक नहीं इसलिये भी कुछ भव और पूछनेके लिये वज्रजंघने अपने भव पूछे थे और साथमें अपने दृढ निश्चयके लिये श्रीमतीके भी भव पूछे थे। हम समझते है कि आपकी लंबी समझमें इतनी छोटीसी बात अवश्य आ जायगी।

८—आगे आपने बड़े तमाशेकी बात लिखी है कि वज्रजंघने जो मुनिको आहार दिया था उसपर तो पंचाश्चर्य हुए ही थे लेकिन मुनिराजने जो पूर्व भव सुनाये उसमें भी दान देने और पंचाश्चर्य होनेका ही कथन आया और आगामीके वास्ते भी यह माऌम हुआ कि यह श्रीमती जब राजा श्रेयांस होकर दान देगी तब भी पंचाश्चर्य होंगे इससे तो यह ही माऌम होता है कि कथा लिखने वालेको जिस बातकी धुन समाजाती है सारी कथा वैसी ही बन जाती है इस धुनका ऐसा ही एक सबूत श्रीमती और उसके पिता वज्रदंतके पूर्वभवके वर्णनमें मिलता है जिसका उल्लेख आगे किया गया है" परंतु बाबू-साहबने यह सब भी बिना विचारे लिखा है जब यह निश्चित है कि ऋद्धिधारियोंको आहार देनेसे पंचाश्चर्य होते हैं तब जहां जहां ऋद्धिधारियोंको आहार देनेका उल्लेख आया है वहां पंचाश्चर्यका भी उल्लेख आया है यह तो स्वाभाविक और नियमित बात है इससे आपको यह तो किस दिव्य ज्ञानसे माऌम होगया कि कथा लिखने वालेको जिस बातकी धुन समाजाती है सारी कथा वैसी ही बन जाती है ? यदि यह कथा बनावटी होती और जैसा कि आपने लिखा है कि लिखनेवालेको जिस बातकी धुन समाजाती है सारी कथा वैसी ही बन जाती है तो मुनिराजने जो न्योला सूकर और बंदरके पूर्वभव सुनाये थे उसमें भी वे आहार दान और पंचाश्चर्यकी कथा लिखते परंतु ग्रंथ-कारने ऐसा नहीं किया इससे सिद्ध है कि न तो लिखनेवालेको धुन समाई थी और न यह कथा ही बनगई है किंतु जैसा हुआ था वैसा ही लिखा गया है, तमाशा तो यह है कि आपको जो इस कथाके वा ग्रंथके बनावटी लिखने की धुन समाई है उसीको आप सब जगह चिल्लाते आरहे हैं यहां तक कि स्वभाविक बाते भी आपको बेजोड़ माऌम होती है और ग्रंथमें लिखी हुई बातें भी आपको दिखती नहीं।

९—आगे आपने लिखा है कि "राजा वज्रजंघने तो मुनिराजसे यह प्रश्न किया था कि शेर सूअर बंदर और न्योला मनुष्योंकी भारी सभामें निर्भयरूपसे कैसें हैं परंतु हम यह प्रश्न करते हैं कि वहां शेर आदिक भयानक जानवरोंके आने और बैठे रहनेपर इतने आदमी किस प्रकार निराकुल बैठे रहे। शेरके पास लोगोंका निराकुल बैठा रहना तो दूरही रहना शेरके आनेपर ही तमाम लश्करमें शोर मच जाना चाहिये था इससे यह कहानी बिल्कुलही बे जोड और अटकल

पच्चू तुकबंदी माळूम होती है ।" बाबूसाहबने यह समीक्षा अपने अनुभव और बुद्धिके अनुसार लिखी है । जिस मनुष्यको जितना अनुभव और जितनी बुद्धि होती है वह उसीके अनुसार उतना ही काम कर सकता है अधिक नही बाबूसाहबके इस लिखनेपरसे ऐसा माळूम होता है कि आपको सदा पतित आत्माओंका अनुभव रहा है उन्नत आत्माओंका नही क्योंकि वे तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि उन्नत आत्माओंके चरित्रको तो बनावटी समझते है इसलिये उनका अनुभव भी उन्हे कैसे हो सकता है । जनाब ! ऋद्धिधारी मुनियोंका तो ऐसा प्रभाव होता है कि उनके समीपवर्ती देशमें सब क्रूर और हिंसक वा भयानक जीव भी अपना सब क्रूरपना हिसकपना और भयानकपना छोड़कर अत्यत शांत हो जाते है जो जीव शांत हो जाते है उनकी शातता उनके चेहरेपरसे माळूम हो जाती है इसीके अनुसार वह शेर भी उन मुनियोंके प्रभावसे शांत हो गया था और लोगोके पास आ गया था । लोगोंने जब उसे शाततासे आते हुए देखा होगा तब वे भी निराकुलतासे बैठे रहे होगे । वर्तमानमे भी इसके उदाहरण जहां तहां मिल ही जाते है एक वार शोलापुर निवासी शेठ हीराचदजी नेमिचन्दजी तथा बम्बई निवासी स्वर्गीय शेठ मानिकचंदजीके साथ हमको भी कोल्हापुर जानेका प्रसग आ पड़ा था वहापर हम लोगोको दिखानेके लिये एक लंगड़ा आदमी शेरके पिंजरेमे घुस गया था और उसे प्यारकर तथा पांच मिनिट ठहरकर लौट आया था । सरकसोंमे भी शेर पिंजडेके बाहर निकाले जाते है परंतु देखनेवाले सब लोग निराकुलतासे बैठ रहते है जब अशांत शेरोके पास भी लोग निराकुलतासे बैठे रहते है तब शात हुए शेरके पास लोगोका निराकुल बैठे रहना बहुत ही सहज बात है । इसतरह यह कथा तो प्राकृतिक सिद्ध होती ही है किंतु उसके साथ साथ आपकी यह समीक्षा बेजोड और अटकलपच्चू तुकबंदी सिद्ध हो जाती है ।

वज्रजंघकी भोगभूमिमें जानेकी समीक्षाकी परीक्षा ।

१—आपने लिखा है कि यह बडा आश्चर्य है कि आहारदान देनेवाले वज्रजंघ और श्रीमती भी भोगभूमिमे मनुष्य हुए और सिर्फ दानकी अनुमोदना करनेवाले चारो तिर्यंच भी उनके ही बराबर भोगभूमिमे मनुष्य हुए और सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि सब एक ही स्थानमे उपजे ।" परंतु बाबूसाहबका यह लिखना भी जैन सिद्धांतकी अजानकारीसे भरा हुआ है । जैन सिद्धांत डंकेकी चोट इस बातको कहता है कि कृत कारित अनुमोदनाका समान फल भी होता है । जैन सिद्धांतकी इस आज्ञा वा उपदेशके अनुसार जैसे दान देनेवाले वज्रजंघ और श्रीमती भोगभूमिमें मनुष्य हुए उसीतरह उसकी अनुमोदना करनेवाले तिर्यंच भी उसी जगह मनुष्य हुए । फिर इसमे आश्चर्य और सबसे बड़े आश्चर्यकी क्या बात है । क्या आप और बाबू जुगुलकिशोरजी दोनो ही समीक्षक एक ही शहरमे हुए इसपर आपको आश्चर्य नही होता है? और यदि नही होता है तो क्यो नहीं ?

२—फिर आपने लिखा है "इधर वज्रजंघ और श्रीमतीको जातिस्मरण हुआ और उधरसे मुनिराज आ पहुंचे क्या यह जोड़ बनावटी नहीं है" सो भी ठीक नही है क्योंकि ऐसा

आकस्मिक निमित्त मिल जाना कही भी बनावटी नहीं माना जाता है। कुछ वर्ष पहिले बाबू जुगमंदिरलालजी बार. एट्. ला. जब इंगलैण्डसे लौटे थे उसी समय श्रवणबेलगुलमें श्रीगोमट्टस्वामीका मस्तकाभिषेक था जिससे वे सीधे जहाजसे उतर कर तथा बम्बईमें एक ही दो दिन रह कर शेठ मानिकचंदजीके साथ श्रवण बेलगुल गये थे। क्या इस निमित्तको भी आप बनावटी मानते हैं यदि इसको आप बनावटी नहीं मानते तो फिर वज्रजंघके जीवका वह निमित्त मिलना आपने किस दिव्यज्ञानसे बनावटी जान लिया है? । क्या इससे आपकी यह समीक्षा बनावटी सिद्ध नही होती ?

३—आगे चलकर तो आपने बडी ही तत्त्वज्ञानकी बात लिखमारी है। आप लिखते हैं अगर वज्रजंघ और श्रीमतीको जातिस्मरण न होता तो वह मुनिराजकी बोली ही न समझ सकते और अगर मुनिराज भोगभूमिकी ही बोलीमें उपदेश देते तो उनके लिये सम्यग्दर्शनका उपदेश देना असंभव हो जाता क्योंकि भोगभूमियां विचारे संसारकी बहुत ही थोडी बातोंको जानते हैं यहां तक कि जब उनको सूरज चांद और तारे दीखने लगते हैं तो बडा आश्चर्य करते है और डरते हैं और जब वह पुत्रके पैदा होनेके पीछे तक भी जिंदा रहने लगते है तो पुत्रको देखकर महान् आश्चर्य करते हैं कि यह क्या वस्तु है ऐसी दशामें वह विचारे आत्मा और उसकी विशु-द्धताको क्या समझ सकते हैं और इस कथनको समझनेके वास्ते उनकी भाषामें शब्द ही कहांसे हो सकते हैं" इसमें आपने तत्त्वज्ञानकी बडी खोजकी बात यह लिखी है कि 'अगर वज्रजंघ और श्रीमतीको जातिस्मरण न होता तो वह मुनिराजकी बोली ही न समझ सकते' मानो जाति-स्मरणके साथ उन्हे उन मुनिकी देशभाषाका ज्ञान होगया वाह कैसी अच्छी खोज है। यदि आज इस खोजका परखैया कोई होता तो कुछ न कुछ इनाम आपको जरूर देता। शायद यह खोज आपने अपने किसी दिव्यज्ञानसे ही की होगी। क्योंकि इस लेखपरसे मालूम होता है कि बाबूसाहबको यह भी ज्ञान नही है कि जातिस्मरणका काम भिन्न है और भाषाका ज्ञान होना बात दूसरी है। आचार्योंने स्मरणका लक्षण इसप्रकार लिखा है 'संस्काराद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः' अर्थात् संस्कारपूर्वक ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला जो 'वह' इस प्रकारका ज्ञान है उसे स्मृति वा स्मरण कहते है और भाषाज्ञान इससे बिल्कुल अलग चीज है भाषाज्ञानसे और जातिस्मरणसे कोई सम्बन्ध नही है। और न जातिस्मरण होनेसे पहिले जन्मकी भाषाका ज्ञान हो ही जाता है। इससे आपकी यह खोज बिल्कुल ऊटपटांग सिद्ध होती है। आगे आप लिखते हैं अगर मुनिराज भोगभूमिकी ही बोलीमें उपदेश देते तो उनके लिये सम्यग्दर्शनका उपदेश देना असंभव हो जाता' क्यों सो शायद आपने किसी दिव्यज्ञानसे ही जाना होगा तभी तो लिखा है तथा भोग-भूमियोंको बहुत थोडा ज्ञान होता है यह बात भी आपको किसी दिव्यज्ञानसे ही मालूम हुई होगी अथवा यों कहना चाहिये कि बाबूसाहबका यह लिखना बिल्कुल झूंठ है क्योंकि आदिपुरा-णमें लिखा है कि 'कलाज्ञानेन सप्ताहं निर्विशंति गुणैश्च ते' अर्थात् पांचवे सप्ताहमे उन्हें कला-ओंका ज्ञान हो जाता है और वे अनेक गुणोंसे सुशोभित हो जाते है" कलाओंमें पुस्तकवाचन,

१ देखो साहित्यदर्पण-पेज १११ सन् १९०२ का निर्णयसागर बंबईका छपा हुआ।

नाटकाख्यायिकादर्शन, काव्यसमस्यापूरण, देशभाषाविज्ञान, निमित्तज्ञान, काव्यक्रिया, अभिधान-कोश, छंदोज्ञान, गीत, आलेख्य ये सब कलाएं लिखी गई हैं। ऐसी हालतमें बाबूसाहबका यह लिखना कि वह बिचारे आत्मा और उसकी विशुद्धताको क्या समझ सकते हैं और इस कथनको समझानेके वास्ते उनकी भाषामें शब्द ही कहां हो सकते हैं' बिल्कुल झूंठके सिवाय और क्या हो सकता है। रही सूरज चांद तारे और पुत्र आदिको देखकर आश्चर्य करने और डरनेकी बात सो अपूर्व चीजको देखकर लोग आश्चर्य करते ही हैं तथा डरते ही हैं अपूर्व चीजोंको देखकर तो बडे बडे विद्वानोंको भी आश्चर्य होता है क्या आप यह समझते है कि अपूर्व चीजोंको देखकर आश्चर्य करना अज्ञानियोंका ही काम है विद्वानोंका नहीं यदि सचमुच आपकी ऐसी समझ है तो फिर फिर उस समझको भी कोटि कोटि बलिहारी है।

४—फिर आपने लिखा है कि चारों तिर्यंचोंके जीवको तो जातिस्मरण भी नहीं हुआ था तब उनको किसतरह मुनिमहाराजने सम्यक्त्वका स्वरूप समझाया। यह बात समझमें नहीं आती' परंतु बाबूसाहबको समझानेके लिये ही हमने सब बातें ऊपर लिख दी हैं उसपरसे बाबूसाहब अच्छी तरह समझ सकते हैं कि मुनिमहाराजके सम्यक्त्वका स्वरूप समझानेमें जातिस्मरण कोई *कारण नहीं है जातिस्मरणसे तो केवल पहिलेके कृत्य स्मरण हो आते हैं यही बात वज्रजंघके* जातिस्मरणपर लिखी है यथा "सूर्यप्रभस्य देवस्य नभोयायि विमानकं। दृष्ट्वा जातिस्मरो भूत्वा प्रबुद्धः प्रियया समं॥ ९५॥ पर्व-९—इस श्लोकमें जो प्रबुद्धः लिखा है वही जातिस्मरणका कार्य वा फल है अर्थात् जातिस्मरण होनेसे अर्थात् पहिलेके कृत्योंकी याद आ जानेसे वह प्रबुद्ध हुआ अर्थात् उसे संसारके स्वरूपका (संसारकी अनित्यता आदिका) ज्ञान हुआ। इससे सिद्ध है कि जातिस्मरणके विना भी वे सम्यक्त्वका स्वरूप समझ सकते।

५—आगे आपने लिखा है कि स्वयंबुद्धमंत्रीका जीव अवधिज्ञानी और चारणऋद्धिधारी मुनि होगया लेकिन उसको पहिले भवका मोह यहां तक बना रहा कि महाबलके जीवको समझानेके वास्ते भोगभूमिमें आया अगर मोह वश नहीं आया तो यह आम दस्तूर होना चाहिये था कि सबही चारण मुनि भोगभूमियोंको उपदेश देनेके वास्ते जाया करें और अगर सब जाया करते और स्वयंबुद्धके जीवको ही यह शौक पैदा हुआ था तो वह सबही भोगभूमियाओंको उपदेश देता लेकिन वह तो महाबलके जीव और उसकी स्त्री और उनके पहिले जन्मके साथी चारों तिर्यंचोंको ही उपदेश देकर चल दिये"। परंतु बाबूसाहबने यह भी जैन सिद्धांतकी अजानकारीसे ही लिखा है आचार्योंने मुनियोंके लिये लिखा है "परानुग्रहबुध्या तु केवलं मार्गदेशनं। कुर्वन्त्यमी प्रगल्भ्यापि निसर्गोयं महात्मनाम्॥ भवंतु सुखिनः सर्वे सत्त्वा इत्येव केवलं। यतो यतंते तेनैषां यतित्वं सन्निरुच्यते॥ अर्थात् मुनि केवल जीवोंका कल्याण करनेके लिये उनके समीप जाकर भी मोक्षमार्गका उपदेश दिया करते है सो ठीक ही है क्योंकि केवल अनुग्रह बुद्धिसे सन्मार्गका उपदेश देना महात्माओंका स्वभाव ही है। संसारके सभी जीव सुखी हों यही प्रयत्न वे साधु लोग सदा किया करते हैं इस लिये ही लोग उन्हें यति कहते हैं इससे सिद्ध है कि भव्य जीवोंका कल्याण

करना साधु लोगोंका स्वभाव है इसीलिये जहां वे आवश्यक समझते हैं और काललब्धि आदिको देख लेते है वहां स्वयं जाकर भी उपदेश देते हैं इसमें मोह बने रहनेकी कोई वात नहीं है यह तो उनका स्वाभाविक कृत्य है यदि उस समय वहांके निवासी किसी दूसरे जीवकी काललब्धि आदि होती तो वहां जाकर भी वे उपदेश देते दूसरे ऐसे मुनियोंसे उपदेश सुननेके लिये लोगोंका पुण्य भी चाहिये। जिनको ऐसा पुण्योदय होता है उनको ऐसा समागम मिल जाता है। तीसरे संभव है कि और भोगभूमियाओंको भी उनने उस समय या और किसी समय उपदेश दिया हो और प्रकरण न होनेसे ग्रंथकारने न लिखा हो प्रकरण न होनेसे आपने भी इस समीक्षामें कोई कानूनकी धारा नहीं लगाई है इससे क्या यह सिद्ध होता है कि आप कानून नहीं जानते। इसी तरह प्रकरणके अनुसार सब विषय लिखे जाते है वहां प्रकरण अन्य जीवोंका नहीं था इससे नहीं लिखा। चौथे भोगभूमिया कुछ नगर वसाकर एक जगह नहीं रहते हैं इसलिये संभव है कि वहां उतने ही जीव हों। इस परसे आपने उनका मोह और शौक किस दिव्यज्ञानसे जान लिया शौक तो जनाव लिखनेका आपको हुआ है जो विना जानकारीके भी जो जीमे आया वहीं ऊटपटांग लिखमारा है।

६—आगे आपने लिखा है कि कथामें यह नहीं वताया कि वज्रजंघके जीवको किस पुण्यके प्रतापसे जातिस्मरण हुआ और कितने जन्म पहिलेका जातिस्मरण हुआ शायद महावलकी पर्याय तक हुआ होगा क्योंकि मुनिराजके आने पर वहीं तककी वातोंके याद आनेकी जरूरत हुई थी" इन प्रश्नोंका उत्तर पहिले सविस्तर दिया जा चुका है कि जातिस्मरण किसी पुण्यके प्रतापसे नहीं होता किंतु पापकर्मोंके क्षयोपशमसे होता है इसके सिवाय पहिले यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि ऐसे ऐसे प्रश्न करना कुछ समीक्षा नहीं है किंतु अवोध बच्चोंकासा एक खेल है। वावू साहवने यह पूछा है कि कितने जन्म पहिलेका जाति स्मरण हुआ परंतु हम वावूसाहवसे यह पूछते है कि महावलकी पर्यायतक हुआ होगा यह आपने किस दिव्यज्ञानसे जान लिया क्या वतलानेकी कृपा करेंगे और साथमें यह भी कि क्या ऐसीं अटकलपच्चू मिथ्या वातें लिख देना ही समीक्षा कहलाती है? और यह भी कि क्या ऐसीं मिथ्या वाते लिख कर समीक्षक वनने की डींग हाकना आपको शोभा देता है?

७—आगे आपने लिखा है "बिना सम्यक्त्वके सिर्फ पात्र दानसे ही तुझे भोग भूमि मिली है यह जो मुनिराजने वज्रजंघके जीवको निश्चय कराया इसकी क्या जरूरत थी, वावूसाहवने तो पूछा है कि यह जो मुनिराजने वज्रजंघके जीवको निश्चय कराया इसकी क्या जरूरत थी परंतु हम वावूसावसे पूछते हैं कि आपने जो यही पूछा इसकी क्या जरूरत थी इससे तो उल्टा यह सिद्ध होता है कि आपको किसी भी तरह ऊटपटांग लिखनेकी धुन समाई है इसीलिये आप जो जीमें आता है वही पूछ मारते हैं और वही लिख मारते हैं गरज यह है कि किसी तरह अपनी उठी हुई धुनको शांत करते है इस कारण उसी धुनमें आपने ऐसा पूछ मारा है नहीं तो सीधी सादी वात है कि जैसा हुआ था वही मुनिराजने निश्चय काराया वज्रजंघ मुख्यतया पात्र दान देनेसे ही

भोगभूमीमे पैदा हुआ था इसलिये मुनिराजने भी वैसा ही बतलाया मुनिराजने आपके समान ऊट-पटांग तो नहीं बतलाया अथवा मिथ्या तो नही बतलाया यदि मुनिराजके इस प्रकार सच्ची बात कहनेसे लोगोंके हृदयमें पात्र दानकी महिमा ठस जाय तो इससे और अच्छी बात कौनसी हो सकती है इससे आपका हृदय क्यों कांपता है? क्यो दुःख पाता है? क्या दान देना बुरा है? क्या है सो कुछ भी तो बतलाइये? इसीमें आपने लिखा है कि तीन पल्यतक मौज उड़ाता है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि मौज उड़ाने की व्याख्या पहिले सविस्तर की जा चुकी है। भोग भूमिया स्वर्ग भी अवश्य जाता है इसका कारण उनके कोमल परिणामोका होना है यही बात आदि पुराणमें लिखी है यथा—स्वभावमार्दवाद्यांति दिवमेव यदुद्भवाः' अर्थात् स्वभावसे ही कोमल परिणामी होनेसे भोगभूमिया जीव मरकर स्वर्गमें ही उत्पन्न होते है इसके सिवाय एक कारण यह भी है कि वहां अनाचार आदि पाप क्रियाएं नहीं होती हैं जैसा कि लिखा है—न यत्र मदन ज्वरः, न विपादो भयं ग्लानिर्नारुचिः कुपितं च न। न कार्पण्यमनाचारो नबली यत्र नाबल मात्सर्येष्यादिवैकल्यंमपि यत्र निसर्गजं। अर्थात् भोग भूमियाओंमे न मदन ज्वर वा कामज्वर है, न विपाद है, न भय है, न ग्लानि है न अरुचि है, न क्रोध है न कृपणता है न अनाचार है न कोई बलवान् है न निर्बल है तथा वहांपर स्वभावसे ही मात्सर्य और ईर्ष्याका अभाव है" इससे सिद्ध है कि इन पाप क्रियाओंके न होनेसे ही वे स्वर्ग जाते हैं और अवश्य जाते हैं।

८—आगे चलकर तो आप बहुत दूरकी कौढी ढूंढ लाये हैं देखिये आप लिखते हैं "मुनिराजने यह बात किसतरह जानी कि वज्रजंघकी सम्यक्त्व प्राप्तिके वास्ते अब काललब्धि आ गई है। क्या यह अवधिज्ञानका विषय है? लेकिन अवधिज्ञान तो सिर्फ रूपी पदार्थको ही जान सकता है और सम्यक्त्वकी प्राप्तिके वास्ते काललब्धीमें सिर्फ कालकी पर्यायों और आत्माके परिणामोका ही संबंध है और यह दोनों अमूर्त्तिक हैं" इसमे पहिले तो आपने यह पूछा कि मुनिराजने वज्रजंघकी काललब्धि किसतरह जानी, फिर पूछा कि क्या यह अवधिज्ञानका विषय है और फिर लिखा काललब्धिमें सिर्फ कालकी पर्यायों और आत्माके परिणामोंका ही संबंध है और यह दोनो अमूर्त्तिक हैं हम समझते है कि पाठकोमेंसे कोई भी इतनी दूरकी कौढ़ी नहीं ला सकता है क्योंकि जैन सिद्धांतोंकी इतनी जानकारी किसीको भी नहीं होगी हम समझते हैं कि बाबू सूरजभानजीने अपने सत्योदयके एक लेखमें 'मंगलं कुंदकुंदार्यो जैनधर्मोस्तु मंगलं' इस श्लोकमें कुंदकुंदाचार्यके बदले वर्तमानके लीडरोंका नाम देना होगा ऐसी जो सिफारिश की थी वह शायद आपके ही लिये की होगी। क्योंकि आपने काललब्धिको कालकी पर्याय लिखी है। उसे अमूर्त्त बतलाया है और वज्रजंघ ऐसे संसारी जीवोंके परिणामोंको भी अमूर्त कह डाला है। परंतु वास्तवमें ऐसा नहीं है न तो काललब्धि कालकी पर्याय है और न संसारी जीवोके परिणाम अमूर्त्त होते हैं। देखिये सर्वार्थसिद्धि और राजवार्त्तिकालंकारमें काललब्धिका ऐसा स्वरूप लिखा है यथा—तत्र काललब्धिस्तावत् कर्माविष्ट आत्मा भव्यः कालेऽर्द्धपुद्गलपरिवर्तनाख्येऽवशिष्टे प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य योग्यो भवति नाधिके इति इयमेका काललब्धिः अपरा कर्मस्थिति काललब्धिः

उत्कृष्टस्थितिकेषुं कर्मसु जघन्यस्थितिकेषु च प्रथमसम्यक्त्व लाभो न भवति क्व तर्हि भवति अन्तः कोटीकोटीसागरोपस्थितिकेषु कर्मसु बंधमापद्यमानेषु विशुद्धपरिणामवशात् सत्कर्मसु च ततः संख्येयसागरोपमसहस्रोनायामन्तःकोटीकोटीसागरोपस्थितौ स्थापितेषु प्रथम सम्यक्त्वयोग्यो भवति। अपरा काललब्धिर्भवापेक्षया भव्यः पचेंद्रियः संज्ञी पर्याप्तकः सर्वविशुद्धः प्रथमसम्यक्त्व-मुत्पादयति। **भावार्थ**—काललब्धि बतलाते हैं—कर्मसहित भव्य आत्मा अर्द्धपुद्गलपरावर्तन काल बाकी रहनेपर प्रथम सम्यक्त्वके योग्य होता है यदि इससे अधिक समय शेष रहे तो वह सम्यक्त्व ग्रहणके योग्य नहीं होता। यह पहिली काललब्धि है। दूसरी कर्मोंकी स्थिति रूप काललब्धि है कर्मोंकी स्थिति यदि उत्कृष्ट हो अथवा जघन्य हो तो प्रथम सम्यक्त्वका लाभ नहीं होता है फिर कब होता है यदि अंतःकोड़ाकोड़ी सागर स्थितिको लिये हुए कर्मोंका बंध होता हो और विशुद्ध परिणामोंसे जो कर्म विद्यमान है उनकी स्थिति संख्यात हजार सागर कम अंतः कोड़ाकोड़ी सागरकी हो तब वह सम्यत्वके योग्य होता है। इसीतरह तीसरी काललब्धि, भवकी अपेक्षासे है जो जीव भव्य हो, पचेन्द्रिय हो, संज्ञी (सेनी) हो पर्याप्तक हो और सब तरहसे विशुद्ध परिणामोवाला हो वही प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकता है। इससे पाठक समझ सकते है कि काललब्धि बाबूसाहबकी लिखी हुई कोरी कालकी पर्याय नहीं है किंतु कर्मोंकी विशेष सत्ता, विशेष बंध, विशेष उदय विशेष क्षयोपशाम और विशेष स्थिति रूपही काललब्धि है। भव्य, पंचेंद्रिय, सेनी, पर्याप्तक होना कर्मोंका उदयरूप है जो कि पुद्गलात्मक वा मूर्त है विशुद्ध परिणामोंका होना कर्मोंका क्षयोपशमरूप है जो कि कुछ कर्मोंका उदयाभावी क्षयरूप और कुछ कर्मोंका उदयरूप होता है इस तरह यह भी पुद्गलसे संबंध रख-नेवाला पुद्गलात्मक वा मूर्त है इसी तरह अर्द्ध पुद्गलपरावर्तन काल रहा है या नहीं इसका संबंध उन कार्माण वर्गणाओंसे है जो कि आगामी कालमें बंध होनेवाले है इस तरह पहिली काललब्धि भी पुद्गलरूप वा मूर्त है। दूसरी काललब्धि मूर्त है ही क्योंकि जो कर्म बंध रहे हैं वा विद्यमान है उनका स्थितिबंध जान लेना है, स्थितिबंध बंधके प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश इन चारों भेदों-मेंसे एक भेद है इसलिये वह पुद्गलात्मक वा मूर्त है क्योंकि बंध मूर्तका ही भेद है जैसा कि शब्दबंधसूक्ष्मस्थूल, इत्यादि सूत्रमें कहा है अथवा 'सद्दोबंधो सुहुमो' इत्यादि द्रव्यसंग्रहमें कहा है। इस प्रकार यह भलीभांति सिद्ध है कि काललब्धि कालकी पर्याय नहीं है किंतु पुद्गलरूप वा मूर्त है। और मूर्त वा रूपी पदार्थोंको अवधिज्ञान जानता ही है। इसलिये मुनिराजने वह काललब्धि जानली। इसी तरह संसारी जीवोंके परिणाम भी अमूर्त नही होते क्योंकि संसारी जीव कर्मवि-शिष्ट होनेसें मूर्त वा रूपी ही होते है द्रव्यसंग्रहमें लिखा है "वण्णरसपंचगंधा दो फासा अट्ठणि-च्छया जीवे। णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्तिबंधादो।" अर्थात् पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध, आठ स्पर्श ये निश्चयसे जीवमें नहीं है इसलिये जीव अमूर्त है परंतु बंध विशिष्ट होनेसे व्यवहारसे मूर्त है जब संसारी जीव मूर्त है तो उनके परिणाम भी मूर्त ही होने चाहिये क्योंकि मूर्तद्रव्यकी पर्याय मूर्तही होनी चाहिये इस तरह जो दोनों चीजें मूर्त हैं उन्हें अमूर्तीक लिखकर या तो बाबू-

साहबने लोगोंका धोखोंका डालना चाहा है या बिना समझे बूझे लिखा है। चाहे तो उन्होंने बिन समझ बूझे लिखा हो अथवा जानबूझकर भी लोगोंको धोखेमें डालनेके लिये लिखा हो दोनों ही हालतमें कानूनको जाननेवाले एक वकीलको कभी शोभा नहीं दे सकता।

९—आगे आपने एक तमाशेकी बात और लिख दी है आप लिखते है कि काललब्धि तो हुई वज्रजंघके जीवको और सम्यक्त्वकी विशुद्धि उसके साथ श्रीमतीके जीवकी भी और चारों तिर्यंचोंके जीवको भी क्या इन लोगोंको काललब्धिकी जरूरत नहीं थी या सबकी काललब्धि एकही साथ आगई थी। इसमें तमाशेकी बात आपने यह लिखी है कि क्या इन लोगोंको काल-लब्धिकी जरूरत नहीं थी? परंतु जिस आदिपुराणकी आप समीक्षा करने बैठे हैं उसीमें इसी प्रकरणमें लिखा है, काललब्ध्या विना नार्य तदुत्पत्तिरिहांगिनाम्। अर्थात् काललब्धिके बिना इस संसारमें जीवोंको सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति कभी नहीं होती है। समीक्षा करते समय आपने आदिपुराण तो बांचा और समझाही होगा और ऊपर लिखा श्लोक बांचा वा मनन किया ही होगा परंतु फिर भी 'काललब्धिकी जरूरत नहीं थी' लिखना तमाशा नहीं तो क्या है। रही काललब्धिकी एकही साथकी बात सो ठीकही है क्योंकि आप और बाबू जुगुलकिशोर जी ये दोनों भी तो एकही साथ समीक्षक बन पड़े है इसी तरह उन जीवोंकी भी एक साथ काललब्धि आगई इसमें आश्चर्यकी क्या बात है। मुनिराजने उपदेश देते समय कहा ही है "युवां कतिपयै रेव भवैः श्रेयोनुबंधिभिः ध्यानाग्निदग्धकर्माणौ प्राप्तास्थः परमं पदं" अर्थात् तुम दोनों ही जीव कल्याण करनेवाले थोड़ेसे भव धारण कर और अंतमें ध्यानरूपी अग्निसे कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष-स्थानको प्राप्त होओगे इससे श्रीमतीकी काललब्धि तो सिद्ध है तथा न्योला आदि तिर्यंचोंके जब सम्यक्त्व होगया तो काललब्धि उनके माननी ही पडती है क्योंकि बिना काललब्धिके सम्यक्त्व होताही नहीं। जैसे बिना बादलोंके पानी नहीं बरसता इसलिये पानी बरसने पर बादलोंका अस्तित्व मानना ही पड़ता है।

१०—आगे आपने लिखा है महाबलके जीवको समाधिमरण करते हुए न भोगोंकी आशा छूटी और न सम्यक्त्व ही हुआ था क्या ऐसी दशामें भी समाधि मरण हो जाता है?" परंतु बाबूसाहबका यह लिखना बिल्कुल गलत है क्योंकि महाबलके जीवके लिये आदि पुराणमें ही लिखा है कि 'सर्वत्र समतां मैत्री मनौत्सुक्यंच भावयन्। सोभून्मुनिरिवासंगस्त्यक्तबाह्येतरोपधिः। २३५। देहाहारपरित्यागव्रतमास्थाय धीरधीः। परमाराधनशुद्धिं स भेजे सुसमाहितः। २३६। कोशा-दसे रिवान्यंस्वं देहाज्जीवस्य भावयन्। भावितात्मा सुखं प्राणानौज्झतसन्मंत्रिसाक्षिकं। २५३। अर्थात् समता मैत्री अनुत्सुकता आदिका चिंतवन करता हुआ बाह्य आभ्यंतर परिग्रहोंका त्यागकर मुनिके समान निर्ग्रंथ हो गया था। उस धीरवीर बुद्धिमानने शरीर और आहारके त्याग करनेका (उससे ममत्व छोडनेका) व्रत लिया था तथा समाधि पूर्वक आराधनाओंकी विशुद्धि धारणकी थी जिसप्रकार म्यानसे तलवार अलग होती है उसी प्रकार उसने शरीरसे जीवको भिन्न मानते हुए तथा आत्माका चिंतवन करते हुए प्राण छोड़े इत्यादि करीब बीस श्लोकोमें महाबलका तपश्चरण

दिखलाया है और ऐसा तपश्चरण दिखलाया है जिसमें बाह्य आभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहोंका त्याग शामिल था परंतु फिर भी बाबूसाहबने लिख ही दिया कि उसकी भोगोंकी आशा नहीं छूटी थी क्या समीक्षा करते समय बाबूसाहबने इतने भी श्लोक नहीं पढे थे और यदि पढ़े थे तो क्या लोगोंको धोखेमें डालनेके लिये ही लिखा और ग्रंथमें उसके इतने विरक्त परिणाम लिखे रहनेपर भी आपने किस दिव्य ज्ञानसे जान लिया कि उसकी भोगोंकी आशा नहीं छूटी थी आपने अपनी लिखी कथामें भी तो लिखा है कि राजाको वैराग्य हुआ परंतु शोक है कि फिर भी आपने लिख दिया कि भोगोंकी आशा नहीं इन पूर्वापर विरुद्ध वचन लिखनेसे आपका क्या तात्पर्य है उसे साफ क्यों नहीं लिखते रही सम्यक्त्व न होनेकी बात सो समाधिमरणमें सम्यक्त्व न होना कुछ बाधक नहीं होता क्योंकि कषायोंका कम करनाही सल्लेखना वा समाधि मरण कहलाता है जैसा कि पुरुषार्थ सिद्धुपायमें लिखा है नीयंतेत्र कषाया हिंसाया हेतवो यतस्तनुतां । सल्लेखनामपि ततः प्राहुरहिंसा प्रसिद्ध्यर्थम् । अर्थात् इस सल्लेखनामें हिंसाके कारण कषायही कम किये जाते हैं इस लिये सल्लेखना भी अहिंसाकी प्रसिद्धिके ही लिये है शोकके साथ लिखना पड़ता है कि जिन बातोंकी समीक्षा आपने लिखी है उनका परिज्ञान आपको बिल्कुल नहीं है आपने जो कुछ लिखा है वह ऊट पटांगके सिवाय और कुछ नहीं है।

११—ऐसी ही ऊटपटांग बातें आपने आगे भी लिखी हैं आप लिखते हैं कि भोगोंकी इच्छा न छूटने और सम्यक्त्व न होनेपर भी समाधिमरण करनेसे महाबल 'मरकर ललितांगदेव हुआ था' सो भी ठीक नहीं हैं क्योंकि महाबल विरक्त हो गया था उसकी सब इच्छायें छूट गईं थीं तथा विना सम्यक्त्वके भी समाधिमरण हो सकता है यह बात ऊपर अच्छी तरह लिखी जा चुकी है फिर आपने लिखा है 'तो क्या भोगोंकी इच्छा रहनेके प्रभावसे ही उसको भोगके वास्ते चार हजार सुन्दर देवांगनाएं मिलीं थीं' सो भी मिथ्या हैं क्योंकि ऊपर लिखा ही जा चुका है उसके भोगोंकी इच्छा नहीं थी यह तो बाबूसाहबने लोगोंको बहकानेके लिये टकसाली मनगढंत लिख-मारी है। यह सब कोई जानते हैं कि देव होना और देवांगनाएं मिलना पुण्यकर्मोंके उदयका काम है। जो कि महाबलके तपश्चरणके प्रतापसे हुआ था। इसके बाद जो आपन लिखा है कि क्या सम्यक्त्वके न होनेके प्रतापसे ही वह महाविभूतिका धारी ऐसा ललितांग देव हुआ था सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि बाबूसाहब जैनमतको जानते तो कुछ नहीं, यहां तक कि जिस आदिपुराणकी समीक्षा करने आप बैठे हैं उसकी बातें मालूम नहीं हैं परंतु समीक्षक बननेको तैयार हो ही गये हैं एक नामी वकीलके लिये यह कितनी लज्जाकी बात है फिर आपने लिखा है,—महाबलसे पहिले भवमें भी जब वह द्रव्यलिंगी मुनि था तब भी न उसको सम्यक्त्व ही प्राप्त हुआ था और न भोगोंसे ही उनकी तृष्णा हटी थी और विद्याधरोंके समान भोगोपभोगकी प्राप्तिकी इच्छा करनेपर वह मरकर विद्याधरोंका राजा महाबल हो गया था जहां उसको मन माने भोग मिले थे सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि महाबलसे पहिले भवमें जब वह जयवर्मा था तब भी उसने परम विरक्तता धारण की थी और तपश्चरण किया था जैसा कि आदिपुराणमें लिखा है

'जयवर्माथ निर्वेदं परं प्राप्य तपोग्रहीत्' इससे सिद्ध है कि उसके भोगोंकी तृष्णा नहीं थी क्योंकि वैराग्य रहते हुए भोगोंकी तृष्णा रही ही नहीं सकती। रही निदानकी बात सो इसका उत्तर सविस्तर पहिले दिया ही जा चुका है।

१२—आगे आपने लिखा है "कि वज्रजंघ और श्रीमतीके जीवके सिरपर ही क्यों मुनिराज धर्म प्रेमसे वारंवार हाथ फेरते थे चारों तिर्यंचों जीवके सिरपर क्यों नहीं हाथ फेरते थे क्योंकि उस समय तो इन सबकी अवस्था एकसी ही थी"। यह बात कईवार लिखी जाचुकी है कि प्रश्न करना कुछ समीक्षा नहीं है आपने पुस्तकका नाम तो लिखा है आदिपुराण समीक्षा परंतु लिखे गये हैं उसमें प्रश्न। लोग समझते होंगे कि इसमें कोई महत्त्वकी बातें होंगीं परंतु हैं चर्चोंके खेल या ऊटपटांग बातें। यद्यपि समीक्षाकी परीक्षा करते समय हमें उत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं है परीक्षाका तो इतना ही काम है कि जो कुछ लिखा गया है वह सही है या गलत। परंतु आपके इन प्रश्नोंसे भी लोग धोखेमें पड़ सकते हैं इसलिये लोगोंको धोखेसे बचानेके लिये जहां तहां हमने उत्तर भी लिख दिये हैं तदनुसार यहां भी लिखना पड़ता है कि आपने जो पूछा है ग्रंथमें ही लिखा है तथा समीक्षा वा प्रश्नमें आपने ही लिख दिया है, शोक यही है कि— लिख जानेपर भी आप समझे नहीं है। देखिये आपने ही लिखा है कि 'धर्मप्रेमसे हाथ फेरते थे'। कहा भी है 'अत्रानुरागशब्देन नाभिलाषो निरूप्यते। किंतु शेषमधर्माद्वा निवृत्तिस्तत्फलादपि। इतरत्र पुनाराग स्तद्गुणे स्वनुरागतः नातद्गुणेऽनुरागोऽपि तत्फलस्याप्यलिप्सया, अर्थात् धर्मानुराग शब्दसे अभिलाषा अर्थ नहीं लेना चाहिये किन्तु गुणप्रेम लेना चाहिये अथवा अधर्म और अधर्मके फलसे निवृत्त होना भी अनुरागशब्दका अर्थ है। समानधर्मियोंमें जो प्रेम बतलाया है वह केवल उनके गुणोंमें अनुराग बुद्धिसे होना चाहिये अतद्गु—रागद्वेष और उनके फल इन्द्रिय विषय इनमें अभिलाषाको गुणप्रीति (प्रेम) नहीं कहते। ऐसे धर्मप्रेमका संबंध उन मुनिराजका उन दोनोंके ही साथ था। क्योंकि उन्हींके साथ अनुरागका संस्कार था। उन तिर्यंचोंके जीवोंके साथ नहीं इसीलिये वे उन्हींके सिरपर हाथ फेरते थे।

१३—आगे आपने लिखा है—"यह सब भोगभूमियां मरकर स्वर्ग गये और शायद सब ही *भोगभूमियां इसकारण स्वर्ग* जाते हैं। (किसकारण सो आपने बताया नहीं इसलिये वाक्यरचना भी स्खलित ही रही, ठीक नहीं हुई) 'लेकिन क्या यह सब इसकारण स्वर्ग गये कि तीन पल्यतक सिवाय भोगभोगनेके इनको और कुछ कार्य ही नहीं था"। सो भी ठीक नहीं लिखा है। क्योंकि आपका यह लिखना कि 'तीन पल्यतक सिवाय भोगभोगनेके इनको और कुछ कार्य ही नहीं था' विल्कुल मिथ्या है। आदिपुराणमें ही लिखा है कि भोगभूमियाँ सब कलाओंके जानकार होते हैं जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है। जब वे सब कलाओंके जानकार थे तो क्या वे उनका उपयोग नहीं करते थे और करते थे तो दूसरा कार्य हुआ या नहीं इसके सिवाय इसी आदिपुराणमें लिखा है कि उनके कामज्वर कभी नहीं होता था। यथा 'न यत्र मदनज्वरः' इससे तो सिद्ध है कि उनके भोग भोगनेकी वासनाएं बहुत कम थीं फिर आपने सिवाय भोग

भोगनेके इनको और कुछ कार्य ही नहीं था यह कैसे लिखमारा और किस दिव्यज्ञानसे यह जान लिया। क्या बतानेकी कृपा करेंगे?

फिर आपने लिखा है-"क्या यह सब भोगभूमियाँ स्वर्ग जाते हैं कि एकबार मुनिको आहार देने वा आहारकी अनुमोदना करनेसे जो पुण्यकी प्राप्ति होती है उसकी समाप्ति तीन पल्यतक भोगभूमिके भोग लेनेसे नहीं हो सकती इसवास्ते बाकी बचे हुए पुण्यको भोगनेके वास्ते इनको स्वर्गमें जाना पड़ता हो और वहां सागरोंतक अनेक देवांगनाओं और अप्सराओंके साथ अनेक प्रकारके भोग भोगकर ही आहारदान देने वा दानकी अनुमोदना करनेके महापुण्यको खतम करना पडता हो या कोई अन्य कारण है" यहांपर बाबूसाहबने कितना धोखा दिया है और कितना मिथ्या लिखा है? यह सब कोई जानते हैं सब भोगभूमियाओंकी आयु तीन पल्यकी नहीं होती उत्कृष्ट भोगभूमिमें तीन पल्य मध्यममें दो पल्य और जघन्यमें एक पल्यकी आयु होती है सो भी अवस्थित भोगभूमियोंमें, अनवस्थित भोगभूमियोंमें उत्कृष्टमें भी किसीसमय तीन किसीसमय पौने तीन किसीसमय ढाई आदि समयके ह्रासके साथ साथ आयु घटती रहती है वा वृद्धिके साथ बढ़ती रहती है। परंतु बाबूसाहबने सब ही भोगभूमियाओंके लिये तीन पल्य लिखमारा है यह धोखा देना नहीं है तो और क्या है। इसीतरह बाबूसाहबने लिखा है कि उस पुण्यकी समाप्ति तीन पल्यतक नहीं हो सकती इसवास्ते बाकी बचें हुए पुण्यको भोगनेके वास्ते स्वर्गमें जाना पडता हो और वहीं उस पुण्यको खतम करना पडता हो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि भोगभूमिमें उत्पन्न होना अथवा स्वर्गमें उत्पन्न होना आयुकर्मपर निर्भर है और उदयमें आया हुआ आयुकर्म अगिले जन्ममें जाता नहीं वह वहीं नष्ट हो जाता है और अगिले जन्मके लिये दूसरा ही आयुकर्म बंधता है परंतु शोकके साथ कहना पडता है कि बाबूसाहबने जैन सिद्धांतोंको विना समझे ही जो ऊटपटांग मनमें आया है वही लिखमारा है। और इस तरह कुछका कुछ लिखकर लोगोंको धोखेमें डाल दिया है।

बाबूसाहबने आदिपुराणकी समीक्षा की है परन्तु आपके "या अन्य कोई कारण है" इस प्रश्नसे तो जान पडता है कि आपने आदिपुराणको भी अच्छी तरह नहीं बांचा है अथवा यदि बांचा है तो जान बूझकर लोगोंको धोखा दिया है क्योंकि आदिपुराणमें ही लिखा है "स्वभाव-मार्द्रवाद्यांति दिवमेव यद्भुद्भवाः" ७० पर्व ९। अर्थात् भोगभूमियां स्वभावसे ही कोमल परिणामी होनेसे स्वर्गको ही जाते हैं। इसतरह आदिपुराणमें ही उनके स्वर्ग जानेका स्पष्ट कारण लिखा है फिर पूछनेकी क्या आवश्यकता थी, और मिथ्या ही इतना तूल लिखकर लोगोंको धोखा देनेकी क्या जरूरत थी।

१४—आगे आपने लिखा है-मुनिको एकवार भी आहार देने वा आहारदानकी अनुमोदना करनेसे भोगभूमिके ऐसे महान् भोग मिलते हैं जो चक्रवर्तीको भी नसीब नहीं हो सके और फिर इसके पीछे स्वर्गोंके भोग प्राप्त होते हैं इस सिद्धांतमें हमारी समझमें यह बात नहीं आती कि मुनिको आहारदेनेका इन भोगोंसे क्या संबंध है अर्थात् आहारदान देनेसे क्यों ऐसे

भोगोंकी प्राप्ति होती है।" इसकी समीक्षा लिखते समय बाबूसाहबकी विशाल समझमें यह बात नहीं आई है कि आहारदेनेसे भोग कैसे मिल गये यद्यपि बाबूसाहबकी समझमें यह छोटीसी बात न आई हो तथापि पाठक गण यह न समझले कि इस समझमें नहीं आई हुई बातकी वे समीक्षा भी नहीं कर सकते ? आप वकील हैं इसलिये वात चाहे समझमें आवे या न आवे उसकी समीक्षा तो अवश्य कर सकते हैं क्योंकि ऐसी समीक्षा करनेका उन्हें अच्छा अभ्यास है। अच्छा अब जो बात समझमें नहीं आई है। उसको हम समझायें देते हैं--आहारदान देनेसे हिंसाकी पर्यायस्वरूप लोभका त्याग किया जाता है और लोभरूप हिंसाका त्याग करनेसे अहिंसाव्रत पलता है। (जैसा कि पुरुषार्थ सिद्धुपायमें लिखा है (हिंसायाः पर्यायो लोभोत्र निरस्यते यतो दाने। तस्मादतिथि-वितरणं हिंसाव्युपरमणमेवेष्टम्।) और अहिंसा व्रतका पालन करनेसे पुण्यका बंध होता है तथा उस पुण्यका उदय होनेसे भोगोपभोग सामग्री मिलती है। इस तरह आहारदान देनेसे भोगमिल जाते हैं। यहां पर हम अपने पाठकोको एक बात और बतला देना उचित समझते है और वह यह है कि बाबूसाहब कुछ इस बातसे अपरिचित नहीं है क्योंकि जिस पुरुषार्थ सिद्ध्युपायका श्लोक हमने ऊपर लिखा है उसी पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय ग्रंथकी आपने टीका लिखी है और छपाई है। शोक केवल इतनाही है कि आपने इन सब बातोंको जानते हुए भी केवल लोगोंको धोखेमें डालनेके लिये लिख दिया है कि "यह बात हमारी समझमें नहीं आई" इसे आप चाहे तो सत्यकी खोज समझलें या छल समझले। फिर आपने लिखा है कि "मुनिको जो दान दिया जाता है वह भक्तिसे ही दिया जाता है और मुनिके वैराग्य रूप गुणोंके कारणही मुनिकी भक्ति की जाती है इस हेतु, भक्तिके साथ मुनिको दान देनेसे तो दान देनेवालेको कुछ वैराग्यकीही प्राप्ति होनी चाहिये थी। न कि उल्टी भोगोंकी और वह भी पल्यों और सागरों तकके वास्ते" सो भी ठीक नहीं लिखा है क्योकि आपने जो यह लिखा है कि 'कुछ वैराग्यकी ही प्राप्ति होनी चाहिये थी' इससे जान पडता है कि आपको यह निश्चय है कि उसे वैराग्यकी प्राप्ति नहीं होती परंतु आपने यह नहीं बतलाया कि ऐसा निश्चय आपको किस दिव्यज्ञानसे होगया। जनाबमन् ! भक्तिके द्वारा वैराग्यका कुछ अंश उमड़ आनेसे ही तो वह आहार देता है परंतु रागभावोंका सर्वथा त्याग न होनेसे उसके साथ साथ जो वैराग्य और शुभ परिणाम होते है उनके द्वारा बंधे हुए शुभ कर्म ही उन भोगोंके कारण होते है यदि आप उस वैराग्य जन्य किंतु अप्रत्यक्ष शुभास्रवको उसके फलरूप हेतुके द्वारा अच्छी तरह समझ लेते, तो शायद आपको इतने गुटालेमें और संदेहमें नहीं पड़ना पड़ता आप जो संदेहसागरमे डूब गये हैं जैसा कि आपने आगे लिखा है उसका एक मात्र कारण शुभास्रव आदि अप्रत्यक्ष बातोंका न माननाही है। परंतु याद रखिये हेतु वो चीज है जो कि सूक्ष्मसे सूक्ष्म अप्रत्यक्ष पदार्थोंको भी सिद्ध कर दिखाता है। आगे आपने लिखा है "हमको तो ऐसे कथनोंसे यह संदेह होता है कि मुनिको आहारदान देनेकी प्रवृत्ति चलानेके वास्ते भोगोंकी तृष्णामें फंसे हुए मनुष्योंको यह लालच दिखाया गया है परंतु ऐसा लालच दिखानेवालोंने यह विचार नहीं किया है कि ऐसे कथनोंके सुननेवालोकी लालसा भोगोंमें कितनी बढ जायगी और भक्तिके द्वारा

मुनिको आहार देनेकी प्रथा छूटकर भोगभूमि और स्वर्गोंके भोग प्राप्त करनेके वास्तेही मुनियोको आहार दिया जाना शुरू हो जायगा" वाह, यहां तो आपकी बुद्धिने कमालका काम किया है। कहां तो आपको संदेह हुआ और फिर तुरंत ही आपने निर्णयात्मक लिख मारा कि ऐसा लालच दिखानेवालोने यह नही विचार किया इसे बड़ी ही बुद्धिमत्ताका काम कहना चाहिये। इससे यह अवश्य जान पडता है कि आपकी बुद्धि ठिकाने नहीं है इसीलिये आप संदेह सागरमे डूब गये है नहीं तो लालच दिखानेकी महा मिथ्या बाते भी कभी नही लिखते। जनाब! आचार्योंने लालचकी बात नहीं लिखी है किंतु शुभास्रव और शुभ बंधका जैसा स्वरूप है और जो कुछ उसका यथार्थ फल है। वही। दिखलाया है इससे जोकके समान कोई अपात्र श्रोता मुनियोकी भक्ति करना छोडदे और लालचमे आजाय तो इसमे आचार्योंका कोई दोप नहीं है यह तो पात्रका दोप है जैसे इन्हीं ग्रंथोसे बहुतसे लोग पुण्यसंचय कर रहे है और आप स्वराज्यके लोभमे फसकर इन्हीं ग्रंथोसे महापाप कर रहे है यद्यपि आपने आचार्योंको लालच दिखलानेवाला आदि कटुक और मिथ्या वाक्य लिखकर लोगोकी रुचि हटानी चाही है। वा आस्रव बंधका स्वरूप छिपाना वा अस्वीकार करना चाहा है और स्वराज्यके हमारी भूमिकामे लिखा हुआ अपना मंतव्य सिद्ध करना चाहा है परंतु याद रखिये आपकी यह कच्ची कलई वा वालूकी दीवाल ठहर नही सकती उसके लिये आपके ही लिखे हुए परस्पर विरुद्ध वाक्य घातक हो जाते है।

श्रीधरदेवके बारेमें

१—आगे आपने लिखा है—महाबल राजाके हृदयसे भोगोकी इच्छा नही गई थी और न उसको सम्यक्त्वकी ही प्राप्ति हुई थी इस वास्ते समाधिमरण करने पर भी वह स्वर्गमे गया जहा उसको अकथनीय भोग मिले लेकिन भोग भूमियाओंको तो मुनिराजके उपदेशसे विशुद्ध सम्यक्त्व भी प्राप्त हो गया था और भोगोंकी इच्छा भी जाती रही थी फिर भी इनको स्वर्ग और उसके भोग क्यो मिले? पाठक समझते होगे कि बाबूसाहबने यह सब सच लिखा है परंतु वास्तवमे देखा जाय तो बिल्कुल झूठ है क्योकि 'महाबल राजाके हृदयसे भोगोकी इच्छा नही गई थी' इस बातका खडन पहिले अच्छी तरह सप्रमाण किया जा चुका है और भोगभूमियाँ सरल परिणाम होनेके कारण स्वर्ग जाते है यह भी सप्रमाण लिखा जा चुका है। बाबूसाहब इसी रागको कईवार गा चुके है इससे स्पष्ट समझमे आता है कि बाबूसाहबको केवल लिखनेकी ही धुन समाई है इसीलिये उच्छृंखलतासे चाहे जो चाहे जितना कर लिख मारा है और पूर्वापरका कुछ विचार नहीं किया है। आगे आप शोकसे दुखी होते है और लिखते है कि "शोक है आचार्य महाराज स्वर्गके भोगोको ही सुखका कारण और स्वर्गके भोगोको ही धर्मका फल बताते है और हमारी समझमे मनुष्य जन्म पाना ही सुखका कारण है। जहा भोग भी बहुत कम हैं आकुलता भी बहुत थोडी है। और जहा धर्मका साधन भी सब कुछ हो सकता है इसीकारण धर्मका फल भी यह ही होना चाहिये कि उत्तम मनुष्य पर्याय मिले जिससे आगेको भी धर्म साधन हो सके" यह बात ऊपर लिखी जा चुकी है कि स्वर्गोंमे न्याय पूर्वक भोगोका उपभोग किया

जाता है और वहांके देव धर्मका विघात कभी नही करते परंतु मनुष्य पर्यायमे यह नियम बद्ध परिपाटी नहीं है मनुष्य पर्यायमें ऐसे भी बहुतसे सपूत होते हैं जो उपपत्नियां रखते फिरते हैं मद्यपान करते है वेश्या सेवन करते है जूआ खेलते है, छल कपटकर वा अनेक सच झूठ बोलकर धन कमाते है इसके सिवाय मनुष्योंमे आकुलता थोडी है यह लिखना भी मिथ्या है क्योंकि किसी भी धर्म कार्यमें देव तो सब उपस्थित हो जाते है परंतु मनुष्य सब कभी उपस्थित नही होते इसके सिवाय भोगोकी तृष्णा उनके अधिक होती है। जन्ममरण रोग बुढापा संबंधी अनेक दुख उठाने पडते हैं कुटंबसंबंधी दुःख दरिद्रताके दुःख आदि कहां तक कहा जाय मनुष्योको अनेक तरहके दुःख है परंतु तो भी बाबूसाहबके दिमाग शरीफ मै यही सुखका कारण समझ पड़ता है इससे यह नही समझ लेना चाहिये कि बाबूसाहब स्वर्ग नहीं चाहते वे चाहते तो जरूर होंगे क्योंकि कुछ वर्ष पहिलेके उनके लेख इस बातके साक्षी है परंतु अब उन्होने देखा होगा कि वकालती धंधा करते करते हमसे स्वर्गका साधन नहीं बन सका है इसलिये अपने साथियोको भी अपने ही साथ रखनेकी कोशिश की होगी इसके सिवाय इससे यह तो स्पष्ट ही है कि आप स्वर्ग नरक मानते नहीं क्योंकि आपको दिखते नही, शायद इसीलिये आपको शोक हो रहा होगा।

आगे चलकर तो आपने बडी ही बेतुकी हांकी है देखिये आप लिखते है "नही मालूम कथा ग्रंथोंमें सब ही धर्मात्माओको स्वर्गमे भेज भेज कर और एक लंबे चौडे समय तक उनको खूब भोगोमे डुबाकर और सम्यक्त्व चारित्र पालनेसे वंचित रखकर क्या फायदा निकाला है" इसका उत्तर पहिले दिया जा चुका है कि धर्मात्माओको स्वर्गमे भेजनेवाला और उससे फीस लेकर फायदा उठानेवाला कर्ता बाबूसाहब ही मानते है क्योंकि वे उसीके अनुयायी है जैन शास्त्रोमे ऐसे कर्ता वादका मंडन कहीं भी नहीं है बाबूसाहबको याद रखना चाहिये कि जैसे आपका मिथ्यात्व कर्म आपके द्वारा ऐसी ऐसी मिथ्या बाते लिखनेमे अनिवार्य है वैसे ही पुण्यकर्म धर्मात्माओको स्वर्गमे ले जानेके लिये अनिवार्य है। इसके सिवाय 'सम्यक्त पालनेसे बंचित रखकर' ऐसा जो आपने लिखा है वह बिल्कुल झूंठ ही है क्योकि स्वर्गमे विशुद्ध सम्यक्त्व हो सकता है और वह श्रीधरदेवके भी था ही।

२—फिर आपने लिखा है "केवली महाराजने अपने पहिले जन्मके साथी शतमतिको उपदेश दिलानेके वास्ते उसके पास नरकमे श्रीधरदेवको भेजा और इस उपदेशसे वह नारकी विशुद्ध सम्यक्ती हो गया क्या अच्छा होता अगर केवलीमहाराज श्रीधरदेवको यह भी आज्ञा देते कि उस नरकके सब ही नारकियोको धर्मका उपदेश देकर आना और अगर श्रीधरदेव अपने आप ही सर्व नारकियोको उपदेश देकर आता तो और भी उत्तम बात थी सिर्फ शतमतिके जीवको ही उपदेश देकर चले आनेसे तो कुछ धर्मका भाव प्रगट नहीं होता बल्कि मोह ही सिद्ध होता" यह भी आपने विना समझे बूझे ही और मिथ्या लिखा है। क्योंकि ग्रंथमे यह बात कही नहींलिखी है कि केवलीमहाराजने भेजा यह तो आपकी मनगढ़ंत टकसाली कलम है। ग्रंथमें सिर्फ इतना ही लिखा है कि श्रीधरने शतमतिका पता पूछा था केवलीने बतलादिया कि वह नरकमे है। बस इसी

निर्देश (उपदेश वा आज्ञा) से वह नरकमे गया था भेजनेका जिकर ग्रंथमे कहीं भी नहीं आया है। रही सब नारकियोको उपदेश देनेकी बात सो यह सब कोई जानता है कि काललब्धिके विना उपदेश और सम्यक्त्वकी प्राप्ति कही नहीं होती है। बाबूसाहबको याद रखना चाहिये कि आप जबतक इन सब बातोको अच्छी तरह न समझलेंगे तबतक आपको कभी धर्मका भाव प्रगट नहीं हो सकता और न मोहसे ही छूट सकते है हां यदि आप इन सब बातोंको समझ बूझ कर झूठ लिखना छोड देंगे तो अवश्य ही धर्मका भाव प्रगट हो जायगा और मोहमहासागरमें डूबनेसे बच जायगे।

३—फिर आपने लिखा है—अगर स्वर्गके देव नरकमे जाकर धर्मका उपदेश दे सकते है और नारकी उनके उपदेशसे धर्मश्रवण कर सकते हैं। और इसहीके साथ जबकि देवोको धर्मका इतना अनुराग भी है कि तीर्थकर भगवानके जन्मकल्याणकमे यह देव करोडों और संखों आ मौजूद होते है तो फिर वह लाखो करोडो देव सदा इस ही तरह नरकमे जाकर क्यों नारकियोको धर्मका उपदेश नहीं देते रहते है जिससे इन महा दुखिया जीवोका कल्याण होता रहे और इस पंचमकालमे आकर यह देव क्यो हम लोगोको उपदेश नहीं देते है" परंतु यह भी बाबूसाहबने विना समझे ही लिखा है। क्योंकि यह ऊपर भी लिखा जा चुका है कि उपदेशकी प्राप्ति विना काललब्धिके नही हो सकती जब नारकियोके इतने पुण्यका उदय ही नहीं है तो उन्हे उपदेशका संयोग कैसे मिल सकता है? रही पंचमकालकी बात सो भी ठीक नहीं है। क्योकि यहां तो आप ऐसे महर्षि उपदेशक धर्मका गला घोटकर और झूंठा उपदेश देकर पात्रोको भी कुपात्र वा अपात्र बना रहे है। इसके सिवाय यह भी याद रखना चाहिये कि उपदेश देना देवोका नित्यकर्म नहीं है उनमेसे कोई कोई देव ऐसा ही संयोग मिलनेपर किसीको समझाया करता है। परंतु इस बातको समझे विना ही आपने पूछ ही मारा है कि क्यो उपदेश नहीं देते है मानो बाबूसाहबका उनपर कर्जा ही हो यह बाबूसाहबकी सत्यकी खोजका नमूना है।

४—आगे चलकर तो आपने खूब ही स्वांग बनाया है और खूब ही खयालाती पुलाव पकाया है आप लिखते है "हमारा तो यह खयाल होता कि कथा बनानेवालेको भोगभूमिका कथन करते करते स्वयंबुद्ध मंत्रीकी याद आगई थी जिसपर उसने स्वयंबुद्धको चारण मुनिके रूपमे भोगभूमिमे जा और इसका वहां जाना सार्थक करनेके वास्ते ही यह कथन करना पड़ा कि वज्रजंघके जीवको अबतक विशुद्ध सम्यक्त्व प्राप्त नही हुआ था इसवास्ते इसकी प्राप्ति करानेके वास्ते ही स्वयंबुद्धका जीव उसके पास गया फिर इसप्रकार स्वयंबुद्धमंत्रीके जीवनका कथन करते करते कथा बनानेवालेको राजा महाबलके सब ही मंत्रियोंकी कथा कहनेकी धुन हो आई वह तीनो मंत्री नास्तिक थे इस वास्ते उनमेंसे दोको तो निगोदमें भेजा और एकको नरकमे पटककर नरकवालेकी कथाको और भी आगे खैच दिया, कथा कहनेवालेको अगर इसस्थानपर इन चारों मंत्रियोकी कथा कहनेकी धुन न हो गई होती तो वह ग्रंथमे श्रीधर और स्वयंप्रभा आदि देवोकी कुछ तो कथा वर्णन करते परंतु यहाँ तो इन मंत्रियोकी

कथाके सिवाय और कोई कथनही नहीं है यहाँ तककि इस कथनमे श्रीधर देवको तीनो मंत्रियोके जीवका पता मालूम करनेके वास्ते केवलज्ञानी भी स्वयंबुद्धमंत्रीका जीव ही मिला।" परंतु बाबूसाहबका यह सब लिखना ऊट पटांग और वे सिरपैरका है। आपको इन वे सिरपैरकी वाते लिखनेकी इतनी धुन कि श्रीधर देवकी समीक्षा लिखते आपको फिर वज्रजंघ और चारण मुनिकी याद आगई और विना किसी संबंधके भी उनके विषयमें खयाली पुलाव पकामारा। आपने लिखा है "स्वयंबुद्धको चारण मुनिके रूपमे भोगभूमिमे भेजा और इसका वहां जाना सार्थक करनेके वास्ते ही यह कथन करना पड़ा" मानो बाबूसाहब यहां जरूर मौजूद थे तभी तो आपने ऐसे निश्चयात्मक वाक्य लिखे है क्या विना किसी प्रमाणके ऐसे निश्चयात्मक वाक्य लिखना लोगोको धोका देना नहीं है परंतु एक वकीलकी तो धुन ठहरी आपकी धुन है कि कथा बनानेवालेने ही चारण मुनिको भेजा नास्तिकोको निगोद और नरकमे पटका आदि। इस धुनसे यह ध्वनि तो जरूर निकलती है कि बाबूसाहबको यह डर जरूर लगा गया है कि कोई कथा बनानेवाला हमको भी नरक निगोदमे न पटकदे। परंतु हम बाबूसाहबको विश्वास दिलाते है कि कथा बनानेवाला वा कहनेवाला कभी किसीको नरक निगोदमे नहीं पटक सकता सब जीवोके अलग २ किये हुए कर्म ही स्वर्ग नरक वा निगोदमे ले,जाते है इसी तरह नास्तिक मन्त्रियोके जीव नरक निगोदमे गये और आगे भी जो नास्तिक होगे सो जायँगे शास्त्रोका वचन ही ऐसा है। इसी तरह पिछले कथनमे भी ऊटपटांग और मिथ्या बाते है क्योकि श्रीधर स्वयंप्रभकी विभूति आदि ललितांग देवके समान बतला दी है फिर क्या उनकी डायरी लिखने बैठते मंत्रियोंके जीवोका प्रकरण श्रीधरने पूछा जब कहा, वे आपके समान अपने आपही नहीं वकते फिरते थे स्वयं बुद्धके जीवको केवलज्ञान हो गया था इसलिये उससे पूछनेका सयोग मिल गया यदि उस समय आपके जीवको केवलज्ञान हो गया होता तो आपसे ही पूछ लेता.

५—फिर आपने लिखा है "शतमति मंत्रीके जीवको नरकमे विशुद्ध सम्यक्त्व प्राप्त होनेके वास्ते काल लब्धी जरूर हो गई होगी क्योकि काललब्धिके विदून यो वह विशुद्ध सम्यक्त्व हो ही नही सकता है और जब श्रीधर देव नरकमे गया तबही शतमतिके जीवको काल लब्धी हुई होगी जैसा कि भोगभूमिके चारण मुनिके जाने पर वज्रजंघके जीवको काललब्धि हो गई थी।" क्या पाठक समझ सकते है कि बाबूसाहबने इसमे क्या समीक्षाकी है बाबूसाहब एक जगहतो पूछते है कि काल लब्धि होगई होगी फिर लिखते है श्रीधरके जानेके समय ही हुई होगी इससे बाबूसाहबका यह अभिप्राय है कि सम्यक्त्व काललब्धि आदि कोई चीजे वास्तमे है नही क्योकि दिखती नहीं है इससे जान पडता है कि आप प्रत्यक्षवादी है और प्रत्यक्षवादी होनेसे शायद दादा परदादा आदिको भी नही मानते होगे। इसके सिवाय आप किसी निमित्तको भी नहीं मानते क्योकि यदि मानते होते तो ऐसा कभी नहीं पूछते कि वह श्रीधरके जाते समय ही हुई होगी हम बाबूसाहबसे पूछते है कि आपने जो आदिपुराण समीक्षा प्रगट की वह बाबू जुगुलकिशोरीकी समीक्षाओंके वाद ही क्यो की पहिले क्यो नहीं की तथा आपने बाबूचंद्रसेनजीके यहां ही क्यों छपाई। आप अग्र-

वाल ही क्यों हुए देववंदमें ही क्यों रहे ? बीसवीं शताब्दीमें ही क्यों हुए । उन ईसवी वा सत्रहवीं अठारहवींमें क्यों नहीं। क्या आपके पास इनका कुछ उत्तर है ?

६—आगे चलकर सोते ही सोते आपको बडा खटका हुआ है आप लिखते हैं—जिस-दिन जयसेनका विवाह होनेवाला था उस ही दिन श्रीधरदेव उसको उपदेश देने गया पहिले क्यों नहीं गया यह बात बहुत खटकती है। और ऐसी माळूम होती है कि मानों कथाको रंगत देनेके वास्ते कही गई है।"—इसमें बाबूसाहबने पूछा है कि जिस दिन जयसेनका विवाह होने-वाला था उस ही दिन श्रीधरदेव उसको उपदेश देने गया पहिले क्यों नहीं गया परंतु बाबू-साहब देववंदके रहनेवाले हैं इसलिये हम बाबूसाहबसे देववंद ही की बात पूछते हैं कि बाबू जुगलकिशोरजी साहब जब जैनहितैषीको संपादन करनेवाले थे तब ही उनकी स्त्री क्यों स्वर्गवा-सिनी हुई पहिले क्यों नहीं हुई क्या यह बात आपको नहीं खटकी क्या यहां भी यह नहीं कहा जा सकता है कि जैनहितैषीके संपादनकार्यको रंगत देनेके लिये ही यह घटना की गई है ? क्या कोई भी बुद्धिमान इस बातको मान सकता है यदि नहीं तो फिर आपकी ही लिखी हुई समीक्षा वा प्रश्न मिथ्या और झूठे क्यों नहीं हैं।

७—आगे चलकर फिर आपने वही पुराना राग आलापा है आप लिखते हैं "विना किसी प्रकारके आचरणके नरकमें सिर्फ सम्यक्त्व ही ग्रहण कर लेनेका तो यह फल हुआ कि उसको उत्तम मनुष्य जन्म मिला जहां दीक्षा लेकर वह उत्कृष्ट धर्मसाधन करसका लेकिन अफसोस है कि विवाह करानेको छोड़कर और भोगोंकी इच्छाको सर्वथा त्याग कर उसके उत्कृष्ट धर्मसाध-नका यह फल मिला कि पांचवें स्वर्गका इंद्र बनाया जहां जाकर वह चिरकालके वास्ते भोगोंमें ऐसा डुबा दिया गया कि वहां वह रंचमात्र भी सम्यक् चारित्र धारण न कर सका और भोगोंका ही दास बना पड़ा रहा।" परंतु यह बाबूसाहबने लोगोंको धोखा देनेके लिये ही लिखा है। जैनसिद्धांतको विना समझे बूझे लिखा है। क्योंकि जैनसिद्धांतके अनुसार नरकसे निकलकर सम्यक्त्वी जीव सिवाय मनुष्यपर्यायके और कुछ पा ही नहीं सकता और सम्यग्दृष्टी तपस्वी यदि कर्म नष्ट न कर सके तो वह स्वर्गके सिवाय और कोई गति नहीं पा सकता इनका भी कारण यह है कि सम्यग्दर्शनके होनेसे उसके आस्रव ही वैसा होता है। परंतु फिर भी जो बाबूसाह-बने अफसोस किया है और इंद्रको भोगोंका दास लिखदिया है इसका कारण यही जान पडता है कि बाबूसाहबको ऐसे इंद्र बननेकी इच्छा तो बहुत कुछ है परंतु विना समजे बूझे केवल लोगोंको धोखेमें डालनेके लिये आपने जो यह महापाप कमाया है उससे फिर आपको ऐसे भोग मिलनेका विश्वास उठ गया है और इसीलिये ऊंचे होनेसे लोमडीको अंगूर खट्टे माळूम देते ही है नहीं तो अफसोस करनेकी इसमें कोई बात ही नहीं थी क्योंकि यह कईबार लिखा जा चुका है कि शुभोपयोगसे शुभास्रव और शुभास्रवसे भोगोपभोगकी प्राप्ति होती है। परंतु बुढ़ियाको तो उसी पुराने चरखेसे काम उस विचारीको क्या माळूम है कि दुनियामें इस पुराने चरखेके सिवाय और भी कुछ चीजें हैं।

राजा सुविधिकी कथा—

१—आपने लिखा है कि "राजा सुविधिका बेटा केशव पहिले कई भवमें उसकी प्यारी स्त्री था इस वास्ते सुविधिको अपने बेटेसे बहुतही ज्यादा स्नेह था यह कथन कथा सुननेवालोंके मोहको उत्तेजित करता है और बुरा प्रभाव डालता है" इसमें भी बाबूसाहबने ठीक जोंकका काम किया है। क्योकि आपकी विशाल दृष्टिमें उसका स्नेह तो दिख गया परंतु 'वह सद्धर्मका स्वरूप भी बालक अवस्थामे ही अच्छी तरह जानता था' जैसा कि आदि पुराणमें लिखा है " सबाल्यएव सद्धर्मप्रबुद्धप्रतिबुद्धधीः। प्रायेणात्मवतां चित्तमात्मश्रेयसि रज्यते'। अर्थात् बालक अवस्थामेही उसकी बुद्धि स्फुरायमान थी और वह सद्धर्मका स्वरूप अच्छी तरह जानता था सो ठीक ही है क्योंकि, बुद्धिमान पुरुषोका चित्त प्रायः आत्मकल्याण करनेमें ही प्रसन्न होता है।" क्या इसे पढ़कर सद्धर्ममें बुद्धि नहीं लगती? मोह तो गृहस्थी जीवोंके होता ही है परंतु बालक अवस्थामें ही सद्धर्मका जानकार होना और आत्मकल्याणमे प्रसन्न होना क्या चमत्कारक अच्छा प्रभाव नहीं डालता और सद्धर्ममे रुचि उत्पन्न नही करता परंतु बाबूसाहबका चित्त और हो तब न आपको तो जोंकके समान केवल अपने स्वार्थसे काम है। इसलिये आपको सब जगह मोह और बुरा प्रभाव ही दिखता है क्योंकि आपपर पड़ा है?

२—आगे चलकर तो आपको बड़ीही बढिया सनक सवार हुई है और बडीही अपूर्व सत्यकी खोजकर निकाली है देखिये आप लिखते है "केशव इस भवसे पहिले भवमे पुरुष था स्त्री नहीं था हो उस पहिले भवसे भी पहिले तो भवोमें वह बेशक सुविधिके जीवकी स्त्री रहा स्त्रीपुरुषोंके प्यारका इतनी दूरतक बना रहना प्यारका बिल्कुलही हदसे बाहर निकल जाना है और इस प्यारका कथन करना धर्मकथन नहीं है बल्कि प्यारकी महिमाके गीतोका गाना और प्यारको भड़काना है" ग्रंथमें लिखा है कि सुविधि बेटे केशवपर प्यार करता था और केशव दो भव पहिले उसकी स्त्री था इसलिये प्रेमका अधिक संस्कार होनेसे वह और भी अधिक प्रेम करता था। परंतु यह कहीं नहीं लिखा है कि सुविधि केशवपर वैसाही प्रेम करता था जैसा कि स्त्रीपर किया जाता है। यह तो आपने अपनी अंतरंगकी भावना लिख दी है। ग्रंथमें यह भी नहीं लिखा है कि वही प्यार बना रहा था यह तो आपने अपनी मनगढंत टकसालसे निकालकर लोगोंको धोखा दिया है। प्रेम मोहनीयकर्मके एक रतिनाम कर्मके उदयसे होता है और उसकी स्थिति दश कोड़ाकोड़ी सागरकी है इसलिये उसका संस्कार कई भवतक रह सकता है परंतु वही प्रेम नहीं रहता जैसा कि आपने लिखा है। रही धर्मकथनकी बात सो ग्रंथमें कही नहीं लिखा है कि ऐसा प्यार करना धर्म है यह भी आपने अपनी टकसालसे ढाल लिया है। और इसी अपनी टकसालपरसे केवल लोगोंको धोखा देनेके लिये लिखमारा है कि प्यारके गीत गाना है और प्यारको भड़काना है।

३—फिर आपने लिखा है "राजा सुविधिको न तो जातिस्मरण हुआ था और न अवधिज्ञान और न और ही किसी प्रकारसे उसको अपने पहिले भव याद आकर अपने बेटेमें अपनी

स्त्रीका भाव होता था और न बेटेके साथ ऐसा प्रेम ही उत्पन्न होता था जैसा कि पुरुषको स्त्रीपर होता है फिर उसको क्यों पहिले भवके स्त्रीपुरुषके संबंधके कारण अपने बेटे केशवपर अधिक प्रेम होता था यह बात समझमें नहीं आती " इसमें भी बाबूसाहबने सत्यकी अच्छी खोज ढूंढ निकाली है। आपकी सुविशाल खोजमें प्रेमके लिये भी जातिस्मरण वा अवधिज्ञान चाहिये क्या ऐसी सत्यकी खोजकी कोटि कोटि बलिहारी नहीं लेनी चाहिये। क्या स्त्रीका जीव मरकर बेटा होगया इसपरसे उसमें प्रेम भी स्त्रीसरीखा होना चाहिये ? जान पड़ता है आपकी समझ न तो जैनशास्त्र जानती है और संसारके अनुकूल है। जैन सिद्धांतके अनुसार मोहनीय कर्मकी स्थिति अधिक होनेसे प्रेमका संस्कार कई भव तक रह सकता है जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। और संसारमें भी ऐसा प्रेम कोई नहीं करता शायद आप भले ही करते हों और न ग्रंथमें ही यह बात लिखी है। ग्रंथका अभिप्राय यही है कि उनका प्रेमका संस्कार कई भवका था इसलिये प्रेमकी मात्रा अधिक थी इसतरह यह विषय न ग्रंथमें है न शास्त्रानुकूल है और न संसारानुकूल है परंतु फिर भी आपने लिखमारा है इसलिये इसे सिवाय आपकी सत्यकी खोजके और क्या कह सकते हैं ?

४—आगे चलकर भी आपने एक महा झूंठी बात लिखकर लोगोंको खूब ही धोखेमें डाला है। आप लिखते हैं "सुविधिको अबसे दो भव पहिलेसे विशुद्ध सम्यक्त्व प्राप्त हो गया है जो भोगोंकी इच्छाके कम होनेसे प्राप्त होता है" परंतु बाबूसाहबका यह लिखना जैनशास्त्रके अनुसार बिल्कुल झूंठ वा मिथ्या है क्योंकि भोगोंकी इच्छा चारित्रमोहनीयका भेद है और सम्यग्दर्शन दर्शनमोहनीयके क्षय, क्षयोपशम, वा उपशमसे होत है। सम्यग्दर्शन तो चौथे गुणस्थानमें हो जाता है परंतु इच्छा जो कि लोभकी पर्याय है वह दशवें गुणस्थानतक रहती है। शास्त्रमें भी मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इन सात प्रकृतियोंके क्षय उपशम वा क्षयोपशम होनेसे ही सम्यक्त्वकी प्राप्ति बतलाई है। परंतु बाबूसाहबने इच्छाके कम होनेसे ही सम्यक्त्वकी प्राप्ति लिख दी है। क्या बाबूसाहबके मतमें ऐसी झूंठी बातें लिख देना ही सत्यकी खोज है और यही समीक्षा है ? क्या यह लोगोंको धोखा देना नहीं है और क्या एक नामी वकीलकी कलमसे ऐसी मिथ्या बातें लिखी जाना शोककी बात नहीं है।

फिर आपने लिखा है "इसके अतिरिक्त इस ही सुविधिके जीवने पहिले भवमें नरकमें जाकर शतमतिके जीवको विशुद्ध सम्यक्त्व ग्रहण कराया और अगले भव जब शतमतिका जीवका विवाह होनेवाला था तब उसको विवाहसे रोककर दीक्षा ग्रहण कराई थी ऐसी अवस्थामें भी पूर्वभवके संस्कारोंके कारण अपने पुत्रसे ऐसा गाढा स्नेह होता कि जिसके सबब दीक्षा न ली जा सके बड़ा आश्चर्य पैदा करता है और कथाके सुननेवालोंपर कुछ अच्छा असर नहीं डालता।" यह भी आपने मोहनीय कर्मके उदयकी अजानकारीसे ही लिखा है। हम पहिले लिखचुके हैं कि स्नेह रतिकर्मके उदयसे होता है और रतिकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति १० कोड़ाकोड़ी सागर है इसके

सिवाय मोहनीय कर्मका वासनाकाल अनंतभव तक रहता है जैसा कि गोम्मटसागरमे लिखा है— अंतो मुहुत्त पक्खो छम्मासं संख संख णतयवं संजलणमादियाणं वासणकालोदु णियमेण, इसलिये उसका संस्कार और उदय कई भवो तक रहता ही है। इसमे आश्चर्यकी क्या बात है। आश्चर्य तो आपकी अजानकारीपर है जो आप जैनी होकर जैनसिद्धातकी ऐसी २ छोटी बाते भी नही जानते। रही असरकी बात सो भी आपने ठीक नही लिखी है क्योंकि कथा सुननेवालोपर इस कथाका यह असर पड़ता है कि यह प्रेम वा मोह एक सुविधि ऐसे राजाको भी दीक्षा लेनेसे रोक सकता है इसलिये इसको कम करना या घटाना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है।" यह असर कुछ भी बुरा नही है बल्कि प्रेमको घटानेवाला वा मोहको कम करनेवाला है और इसको विना समझे ही आपने मिथ्यारूपमे लिख दिया है।

५—विशुद्ध सम्यक्त्व ग्रहण करनेके कारण ही श्रीमतीको पुरुषपर्याय मिली थी और वज्र-जंघ और श्रीमती दोनोके जीवने एक साथ ही सम्यक्त्व ग्रहण किया था इस कारण श्रीमतीके जीवको पुरुषपर्यायमे देखकर वज्रजंघके जीव राजा सुविधिका सम्यक्त्व और भी अधिक गाढा हो जाना चाहिये था और अधिक वैराग्य हो आना चाहिये था और तीन जन्मकी प्यारी स्त्रीका अपना बेटा वन जानेपर संसारसे बिल्कुल ही वैराग्य आ जाना चाहिये था परंतु यहा इससे उलटा ही गीत गाया जा रहा है" परतु यह भी बाबूसाहबने विना समझे ही लिखा है। वर्तमानमे ससारका स्वरूप प्रायः सब जानते है और आप भी अच्छी तरह जानते है (यह आपके पहिले लेखोसे सिद्ध होता है) फिर अब तक सब लोगोने या आपने विरक्त होकर दीक्षा क्यो नही धारण की! परन्तु इसका कारण यही है कि मोहनीय कर्म सबसे प्रवल है। जब तक इसका प्रवल उदय रहता है तव तक जान बूझकर भी संसार नही छोड़ा जाता। इसके लिये भी इसके योग्य काललब्धिकी आवश्यकता है यही कारण है कि सौधर्म इंद्र पूर्णश्रुतज्ञानी और अव-धिज्ञानी होनेपर भी विरक्त होकर दीक्षा धारण नही कर सकता तीर्थंकर भगवान् भी मति श्रुत अवधि तीनो ज्ञानोके धारण करनेवाले होकर भी विना काललब्धिके दीक्षा धारण नही कर सकते। यही कारण सुविधिके दीक्षा धारण न करनेका है। परतु बाबूसाहबने इस बातको समझे विना ही उल्टा गीत गाया जाना लिखमारा है।

दूसरी बात यह है कि राजा सुविधिने अंतिमसमयमे सब बाह्य आभ्यन्तर परिग्रहोका त्याग कर निर्ग्रंथ दीक्षा धारण की ही है जैसा कि आदिपुराणमे लिखा है—"ततो दर्शनसंपूता व्रतशु-द्धिमुपेयिवान्। उपाशिष्ट स मोक्षस्य मार्गं राजर्षिरूर्जितं॥ ६८॥ अथावसाने नैर्ग्रंथिप्रव्रज्यामुप-सेदिवान्। सुविधि विधिनाराध्य मुक्तिमार्गमनुत्तरम्॥ ६९॥ अर्थात्—तदनतर राजा सुविधिने सम्यग्दर्शन कर सहित ऊपर कहे हुए बारह व्रतोकी पूर्ण शुद्धता धारण की और उत्तम ऋषियो द्वारा सेवन करने योग्य ऐसे मोक्षमार्गकी आराधना की। अनंतर आयुके अंत समयमे संपूर्ण परि-ग्रहका त्यागकर उसने निर्ग्रंथ दीक्षा धारण की और विधिपूर्वक मोक्षमार्गका आराधन किया।" परंतु बाबूसाहब इस विषयको खा ही गये है अथवा ग्रंथमे रहते हुए भी शायद आपको दीखा

नहीं होगा तभी तो आपने उल्टा गीत गाया जाना लिखदिया है और अपनी इस उल्टी रागिनीकी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया है।

६—आगे आप लिखते हैं—सब देवोंको अवधिज्ञान होता है इस कारण जब स्वर्गमें सुविधिका जीव श्रीधरदेव और केशवका जीव स्वयंप्रभ देव थे तब दोनों ही इस बातको जानते होंगे कि पहिले तीन भवमें हम आपसमें स्त्रीपुरुष रहे हैं लेकिन ऐसा जानकर भी वह दोनों अपने अपने हृदयमें स्त्रीपुरुषका भाव नहीं लाते थे फिर इससे अगिले भवमें पितापुत्र होनेपर तो ऐसा भाव आना बिल्कुल ही असंभव है' परंतु बाबूसाहबका लिखना महा मिथ्या है ग्रंथमें यह कहीं नहीं लिखा है कि राजा सुविधि अपने बेटेपर स्त्रीकासा भाव रखता था और न आपने ही अपनी बनाई कथामें लिखा है। फिर आपने जो समीक्षामें केवल लोगोंको धोखा देनेके लिये मनगढंत टकसाली बिल्कुल झूंठ बात लिखी है वह सिवाय अपना शौक या अंतरंग भावना प्रगट करनेके और क्या कही जा सकती है। एक नामी वकीलकी कलमसे ग्रंथमें न रहते हुए भी एक भारी श्रेष्ठ राजापर मिथ्या कलंक लगानेके लिये झूंठ मूंठ ही ऐसा अश्लील विषय लिखा जाना कहां तक शोभा देता है और इससे वकीलसाहबकी अंतरंग भावनाएं कैसी प्रगट होती हैं इसका पाठकगण स्वयं विचार लें।

फिर इसीमें आपने लिखा है "इसवास्ते यह करना कि पहिले तीन भवमें स्त्रीपुरुषका संबंध रहनेके कारण सुविधिको अपने पुत्रपर अधिक प्रेम था बिल्कुल ही बेजोड़ बात है और कथा रंगीली और मनभाविनी बनानेके वास्ते ही बात कही गई है" सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इसकी परीक्षा ऊपर की जा चुकी है जिस अभिप्रायको लेकर कथा बाबूसाहबको रंगीली और मनभाविनी दिख रही है वह अभिप्राय केवल बाबूसाहबका मनगढंत टकसाली है ग्रंथमें कहीं नहीं है। इसीलिये मिथ्या और झूंठ है।

७—आगे आपने लिखा है "राजा सुविधि और केशवके जीव ललितांगदेव और स्वयंप्रभा देवी बनकर राजा वज्रजंघ और श्रीमती बनकर और फिर भोगभूमिमें भी स्त्रीपुरुष ही रहकर अर्थात् इसप्रकार तीन भवतक निरंतर भोगोंमें फंसे रहनेके कारण आपसके मोहमें इतने अंधे होगये थे कि वह मोह अबतक चला आता है और दीक्षा धारण करनेसे रोकता है। लेकिन यह महान् भोग इसकारण तो उनको मिले और इस ही कारण तो उनकी यह जोड़ी बनी कि उन्होंने ललितांगदेव और स्वयंप्रभाकी पर्याय पानेसे पहिले जैनधर्मका सेवन किया था। क्या इस कथाको पढ़कर वैराग्यधर्मके सच्चे श्रद्धानियोंको इस बातका भय नहीं होता होगा कि ऐसा न हो कि हमारे धर्माचरण करनेसे हमको भी स्वर्ग मिलजावे जहां हमको चिरकालतक भोगोंमें ही फंसा रहना पड़े और वहां हमको किसीसे ऐसा मोह उत्पन्न हो जावे जो जन्मजन्मांतर तक दुःख दे और धर्मसे परान्मुख करदे" इससे जान पड़ता है कि बाबूसाहब वैराग्यधर्मके बड़े ही सच्चे श्रद्धानी हैं तभी तो आपको धर्माचरण करनेसे भय होता है और स्वर्गकी बजाय नरकमें जानेके लिये और इस तरह नरकमें जाकर जन्मजन्मांतरोंके दुःखोंसे बचनेके लिये और धर्मसे परान्मुख न होनेके लिये

आप जैनधर्मका खंडन कर रहे है और अपने साथियोंको साथ ले जानेके लिये इसे ही सत्यकी खोजकी दुहाई दे रहे हैं तथा इसी सत्यकी खोजकी आड़में शिकार खेल रहे हैं अन्यथा जैनधर्मके सेवन करनेसे जोड़ी बनती है, जैनधर्मका सेवन करनेसे ही जन्मजन्मांतर तक दुःख देनेवाला और धर्मसे परान्मुख कर देनेवाला मोह उत्पन्न होता है धर्मका सेवन करनेसे ही भोगोंमे फंसा रहना पड़ता है और मोहमें अंधा हो जाना पड़ता है आदि प्रलाप सरीखी महा मिथ्या बातें कभी नहीं लिखते। जैनधर्मका साधारण जानकार भी ये बातें जानता है कि जोडी बनना मोह उत्पन्न होना मोहमें अंधा हो जाना भोगोंमे फंसा रहना आदि बातें मोहनीय कर्मके उदयसे होती हैं जिसको जैनधर्म आत्माका शत्रु मानता है और उसका नाश ही आत्माका कल्याण बतलाता है। परंतु बाबूसाहबने विना समझे बूझे अथवा केवल लोगोंको धोखा देनेके लिये ही ऐसा लिखा है। जोकि एक नामी वकीलकी शानके बिल्कुल विरुद्ध है।

इंद्रसंबंधी कथाकी समीक्षाकी परीक्षा।

इसमें आपने लिखा है " इस कथनपर हमको अधिक लिखनेकी जरूरत माल्म नहीं होती है क्योंकि इस कथनको पढ़कर अनेक गृहस्थी लोगोंके मुंहमें पानी भर आया होगा और सोचते होंगे कि लाखों करोडों अर्बों संखों वर्षोंसे भी बहुत ज्यादा वर्षोंतक अर्थात् पल्यों और सागरोतकके लिये ऐसे उत्तम उत्तम भोग मिलनेका मार्ग यही है कि इस मनुष्यजन्मके कुछ भोग छोड़ दिये जावें तो यह तो बहुत ही सुगम बात है। क्योंकि यहां मनुष्यपर्यायमें तो बदतमीज, भद्दी, बदसूरत नाचना गाना न जाननेवाली स्त्री मिलती है और वह भी सिर्फ वीस तीस वर्षके वास्ते, जिससे भी अनेक रोग इसके सिवाय गर्भधारण करना, बच्चा जनना, और फिर बूढ़ी होजाना रहा अलग, लेकिन स्वर्गकी देवांगनाएं ऐसी चपल कि लाखों तरहके सुंदर रूप धारण करके लुभाती रहें और वह न कभी बीमार हों न गर्भधारण करें न बच्चा जनें और न बूढी हों और वह भी एक न दो बल्कि हजारोंकी गिनतीमें प्राप्त हों और यहां मनुष्यपर्यायमें तो अपनेको भी सौ धन्धे और कमाने खानेकी हजार चिंता शोक रोग और बुढापा रहा अलग, इसकारण खूब सस्ता सौदा है। मानों एक पैसा देनेसे एक लाख रुपये मिलते हैं और जिन मनुष्योंका विवाह नहीं हुआ जो स्त्रीकी प्राप्तिके वास्ते भटकते ही रहगये है उनको तो कुछ भी त्याग नहीं करना पड़ता है अर्थात् उनका तो एक पैसा भी खर्च नहीं होता है उनके लिये तो यह सौदा मुफ्तके बराबर है इसकारण स्वर्गके भोगोंकी प्राप्तिके वास्ते मनुष्यजन्मके नाममात्रके भोग अवश्य छोड़ देने चाहिये। " इसमें बाबूसाहबने खूब ही लोगोंको धोखेमें डाला है क्योंकि जैन शास्त्रोंमें यह कहीं नहीं लिखा है कि मनुष्यजन्मके नाममात्रके भोग छोड़ देनेसे अथवा जो स्त्रीकी प्राप्तिके वास्ते भटकते ही रहगये है उनको यों ही स्वर्गकी प्राप्ति हो जायगी। जैनशास्त्रोंमें संयम, संयमासंयम, सम्यग्दर्शन, अकाम निर्जरा और बालतप ये देवायुके कारण बतलाये है परंतु बाबूसाहबने स्त्रीके लिये भटकते रहना भी स्वर्गका कारण लिख दिया है इससे पाठकगण सहजमें समझ सकते है कि बाबूसाहबने यह समीक्षा कितनी मिथ्या और कितनी झूंठ

लिखी है और किसतरह लोगोको धोखेमें डाला है । आपके दिमाग शरीफमे मनुष्यपर्यायकी स्त्रियां बदतमीज भद्दी और बदसूरत दिखती है शायद आपको किसी ऐसी हीसे काम पड़ा होगा । परंतु चक्रवर्ती आदि पुण्यवानोकी स्त्रियां कैसीं थी यह आप ग्रंथोंसे पता लगा सकते है और आदि-पुराण बांचनेसे आपको माल्हम भी हुआ ही होगा । यदि इतने लंबें समयकी वात जानेदे तो भी कौन नहीं जानता कि रानी पद्मिनी वड़ी ही खूब सूरत वड़ी ही गुणवती और बुद्धिमती थी । क्या आप गर्भधारण करना और बच्चा जननेको बुरा काम समझते हैं जिससे तीर्थंकर ऐसे सं-सारका उद्धार करनेवाले वाहुवली ऐसे तपस्वी और रामचन्द्र ऐसे सज्जन प्रतापी मनुष्य उत्पन्न होते है इससे तो यह सिद्ध होता है कि आपको भोगोकी बड़ी ही हवस है । इसीलिये शायद कमाने खानेकी चिंता और आयेहुए बुढापेकी चितासे आप दुःखी हो रहे है परंतु कर्मोका फल सबको भोगना ही पड़ता है । किया क्या जाय इसमे किसीका वश ही नही चलता और न इस तरह लालायित होने, मुंहमे पानी सदा भरे रहने और तरसनेसे कुछ हो सकता है ।

आगे चलकर फिर आप फरमाते है "अंगरेजोके राज्यसे पहिले बहुतसे अन्यमती गंगामें डूबकर काशीकरोनसे कटकर, हिमालयमे वर्फमे गलकर शायद इस ही लालचसे मरते थे कि इस फीकी मनुष्यपर्यायके वदले स्वर्गके सुंदर भोग मिलेंगे अफसोस है कि अंग्रेजोंने हिंदुओंकी इन क्रियाओको बंद करके उनको स्वर्गमे जाने और वहांकी मौज उड़ानेसे रोक दिया परंतु जैनि-योंके स्वर्गका दरवाजा इन अंग्रेजोसे भी बंद नहीं हो सका है क्योकि थोड़े दिनोके लिये बाह्य आभ्यन्तर परिग्रहोंको त्याग कर तपश्चरण करने और यह भी न हो सके तो समाधिमरण कर-नेसे ही कथाग्रंथोके अनुसार स्वर्गके सब भोग मिल सकते है ।" इसमे आपने हिंदुओको स्वर्गमे जानेसे रोकनेका कलंक अंग्रेजोके सिर रक्खा है और वकील होकर भी ऐसी बेकानूनकी वात लिखी है । अंग्रेजोने आत्महत्या करना बंद किया है परंतु स्वर्गमे जानेसे किसीको नहीं रोका है यदि अंग्रेज हिंदुओको स्वर्गमे जानेसे रोकना चाहते तो उनके सब धर्मकर्म बंद कर देते परंतु अंग्रेजोने आजतक ऐसा नहीं किया है बल्कि वे तो सबके धर्ममें सहायक रहे है अफसोस है कि आपने झूंठ मूंठ ही अंगरेजोको भी कलंकित कर डाला है । फिर आप लिखते है ' परंतु जैनि-योके स्वर्गका दरवाजा इन अंग्रेजोसे भी बंद नहीं हो सका है? सो भी ठीक नहीं है क्योकि एक तो स्वर्गका दरवाजा किसीसे रुक नही सकता दूसरे अंग्रेज कभी इसमे बाधक हो नहीं सकते । इससे तो यह साबित होता है कि जो काम अंग्रेजोसे नहीं हो सका है उसको अब आप करना चाहते है । इसीलिये आप धर्माचरणसे भय खाते हैं धर्मको ढकोसला बतलाते हैं और जातिपांतिको उठाकर भ्रष्टताका प्रचार करना चाहते है तथा मिथ्या बाते लिखकर लोगोको ठगना चाहते है । आगे फिर आपने लिखा है समाधिमरण करनेसे ही कथाग्रंथोंके अनुसार स्वर्गके सब भोग मिल जाते है सो भी ठीक नही है क्योकि स्वर्गके कारण हम पहिले लिख चुके है बाबू-साहबको यह भी याद रखना चाहिये कि स्वर्गके भोग कथाग्रंथोके ही अनुसार नहीं मिलते किंतु 'वत्थु सहावो धम्मोके' अनुसार ही मिलते है । क्योकि शुभोपयोगरूप तत्त्वका ऐसा ही स्वभाव है और वह अनिवार्य है । आपका उसमे कुछ वश चल नहीं सकता ।

आगे आपने लिखा है "इस कथनको सुनकर बहुतसे मुनि, ऐलक, छुल्लक, त्यागी ब्रह्मचारी मन ही मन खुश होते होगे और उनके हृदयमे गुलगुलेसे पकते रहते होगे कि, कब यह मनुष्य पर्याय छूटे और स्वर्गके आनंद प्राप्त हो" सो भी मिथ्या ही है क्योकि यदि आपके लिखे अनुसार मनुष्यपर्याय छूटनेसे ही उन्हे स्वर्ग मिलता हो तो कमसे कम उनमेसे जो स्वर्ग चाहते है वे तो किसी भी तरह शरीर छोड़कर स्वर्ग जा सकते थे परंतु आजतक ऐसा किसीने नही किया है। इससे साबित है इन लोगोको भी स्वर्गकी इच्छा तो नही है केवल अपने आत्मकल्याणकी इच्छा है यह बात दूसरी है कि शुभोपयोगके कारण उन्हे बीचमे स्वर्ग भी मिल जाय। इससे आपका धैर्य क्यो छूटगया क्या आप स्वर्गके पात्र नहीं है इसलिये या और कोई कारण है, साफ क्यो नहीं लिखते ।

इसके आगे भी आपने ऐसा ही गीत गाया है। आप लिखते है "कोई कोई मुनि डरते भी होगे कि कही ऐसा न हो जो स्वर्ग मिल जाय जहा हमारा सारा ही वैराग्य मटियामेट होकर सागरो तकके वास्ते रंगमें ही मदोन्मत्त होकर पड़ा रहना पडे" सो भी ठीक नहीं है क्योकि देव लोग कुछ मदोन्मत्त नहीं होते वे न्यायपूर्वक मंदकषायोसे भोगोका सेवन करते है जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है। दूसरे मुनि लोग शुद्धोपयोग की कोशिश करते है यदि बीचमें शुभोपयोग हो जाय और देवायुका बंध हो जाय तो फिर उन्हे वहां जाना ही पड़ता है। कर्मोदयके सामने वश किसका चल सकता है और डरकर वे करही क्या सकते है। वैराग्य मटियामेट हो जाय लिखना भी ठीक नहीं है क्योंकि सम्यक्त्वी देवोकी अंतरंग वैराग्य रूप भावना कभी नष्ट नहीं होती है। वह सदा बनी रहती है। क्योंकि सम्यक्त्वके साथ प्रशम संवेग निर्वेग निंदन गर्हण आदि गुण होते ही है। सम्यक्त्वके रहते हुए वे कभी नष्ट नही हो सकते इसलिये देवपर्यायमे वैराग्य मटियामेट हो जाता है ऐसा लिखना महा मिथ्या है।

आगे चलकर तो आपने एक नयी सत्यकी खोज की है आप फरमाते है "चौथे कालमे बहुत लोग दीक्षा लेते थे और तप करके धड़ाधड़ स्वर्गमे जाते थे और स्वर्गोंके भोग प्राप्त करते थे परंतु आज कल कोई विरला ही दीक्षा ग्रहण करके तप करनेका कष्ट उठाता है। इस वास्ते अब स्वर्गमें भी शायद ही कोई जाता होगा। लेकिन क्या इसका यह कारण है कि चौथे कालके लोगोको भोगोकी अभिलाषा बहुत ज्यादा थी यहां तककि उस समयके चक्रवर्ती राजा तो छ्यानवे हजार रानियां तक व्याहते थे और फिर भी अनेक वेश्याएं साथ रखते थे और उस समयके अन्य भी सब ही राजे महाराजे सेठ साहूकार और बहादुर लोग स्त्रियोंके ही संग्रह करने और अनेक स्थानोसे सुंदर स्त्रियोके ही डोले लानेमे अपनी सारी उमर बिताते थे और उस समयके योद्धाओकी बहादुरी बहुत करके स्त्रीके ही ऊपर कटमरनेमे खर्च होती थी अर्थात् उस समय बहुत करके स्त्रियोंके ही ऊपर महायुद्ध हुआ करते थे। इस प्रकार चौथे कालमे भोगोकी अति प्रबल इच्छा होनेसे उस समयके लोग स्वर्गके महान् भोगोकी भी अधिक लालसा रखते थे और उसकी प्राप्तीके वास्ते सर्व प्रकारकी परीषहोंको सहन करनेके वास्ते तैयार होकर दीक्षा लेलेतेथे और कठिन तपस्या करते थे

और इस पंचम कालमें भोगोंकी अभिलाषा इतनी घट गई है कि इंगलैंड जर्मनी फ्रांस अमरीका आदि देशोंके महाराजे भी एक एक ही स्त्री रखते है फिर साधारण पुरुषोंका तो कहना ही क्या है। और अब राजाओंकी लडाइयां भी स्त्रीकी प्राप्तिके वास्ते नहीं होती हैं किंतु राज्यकी रक्षा वा वृद्धिके ही वास्ते होती है। इसप्रकार भोगोंकी इच्छा बहुत कम हो जानेसे आजकल लोगोंको स्वर्गके भोगोंकी भी अभिलाषा नहीं होती है और इस ही कारण इस निकृष्ट पंचमकालके नामर्द लोग दीक्षा लेनेसे भी कतराने लगे है" ऐसी ऐसी मिथ्या और झूठ बातें ही बाबूसाहबके दिमागशरीफमें नई खोज जान पडती है। क्योंकि आपने जो ऊपर प्रलापजन्य गीत गाया है वह सब मिथ्या है। चौथे कालमें जो दीक्षा लेते थे वह स्वर्गके ही लिये लेते थे यह बाबूसाहबने किस दिव्यज्ञानसे जान लिया है। क्या आप जैनशास्त्रोंमें कोई भी विधिवाक्य ऐसा बता सकते है कि स्वर्गके लिये दीक्षा लेनी चाहिये। यह हम पहिले भी उदाहरण सहित लिख चुके है कि मुनि दीक्षा लेकर मोक्षका साधन करते है यदि कारणवश उसमें अपूर्णता रह जाय और शुभोपयोगसे देवायुका बंध हो जाय तो फिर ऐसे लोगोंको भले ही स्वर्ग मिल जाय। परंतु दीक्षा लेते थे और स्वर्ग जाते थे यह लिखना बाबूसाहबका मनगढंत टकसाली है। इसीतरह बाबूसाहबने यह भी न जाने किस दिव्यज्ञानसे जानकर लिख दिया है कि अब स्वर्गमें भी शायद ही कोई जाता होगा क्यों? क्या आपने रास्ता बन्द करदिया है? क्या आयु बन्धके कारण जीवोंके परिणाम भी आपके हाथमें है जो आप रोकलेंगे आपने पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी टीका लिखी है इससे आपको यह तो मालूम ही है कि 'जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये। स्वयमेव परिणमन्तेत्र पुद्गलाः कर्मभावेन' अर्थात् 'जीवोके परिणामोंको निमित्त पाकर पुद्गलके परमाणु अपने आप कर्मरूप परिणत हो जाते है' फिर क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता। स्वर्गमें शायद ही कोई जाता होगा आपका यह लिखना बिल्कुल जान बूझकर धोखा देना है क्या विदेह आदि क्षेत्रोसे भी स्वर्गमें जानेके लिये आपने रास्ता रोक रक्खा है जहां तीर्थंकर स्वयं उपदेश दे रहें है और एक नहीं बीस। भरतक्षेत्रसे भी इस पंचमकालमें आठवें स्वर्ग तक जानेका भगवान सर्वज्ञदेवका वचन है फिर आपने 'शायद ही कोई जाता होगा' ये शब्द कैसे लिख दिये क्या ऐसी मिथ्या और झूठ बातें लिखना ही सत्यकी खोज है? और यही एक वकीलसाहबकी समीक्षा है?

इसीतरह आपका आगेका रागभी महा मिथ्या है क्योंकि चौथे कालमें लोगोंको भोगोंकी अभिलाषा बहुत ज्यादा नहीं थी बल्कि बहुत ही कम थी। और इसके प्रतिकूल आजकल पंचमकालमें भोगोंकी अभिलाषाएं बहुत ज्यादा है इसका प्रमाण यही है कि पहिलेके लोग जरासा कारण मिलनेपर ही विरक्त हो जाते थे मानों वह वैराग्य उनके अंतरंग में सदा भरा रहता था। छयानवे हजार रानियों के साथ रहता हुआ भी भरत चक्रवर्ती उन सब अभिलाषाओंसे अलग रहता था और उसके परिणाम सदा वैराग्य रूप रहते थे यही कारण था कि दीक्षा लेनेके अंतर्मुहूर्त बादही उसे केवल ज्ञान होगया था। ऐसे एक नहीं हजारों लाखों उदाहरण हैं परंतु इस पंचम

कालमे भोगोकी इतनी ज्यादा अभिलाषा है कि आपके लिखे अनुसार वदतमीज मद्दी वदसूरत एक स्त्री भी नही छोड़ी जाती है बल्कि उसी बढी हुई अभिलाषाके कारण विधवाविवाह ऐसे नीच कृत्य करनेको भी उतारू हो रहे हैं। क्या यह भोगो की बढी चढी अभिलाषा नही है? रही छयानवेहजार रानियो की बात सो उनका इतना प्रवल पुण्य था प्रबल शक्ति थी वह पुण्य और शक्ति हममे आपमे नही है इसमे रोने और शोक करनेकी क्या बात है। सबको अपने अपने पुण्यके उदयके अनुसार सपादएं मिला करती है यदि आपका मन चलताहो तो पुण्य कीजिये?

इसके साथ ही आपने चक्रवर्तियो को जो वेश्याओ के रखने का महा कलंक लगाया है सो मिथ्या ही है क्योंकि शास्त्रोमे यह कही नही लिखा है कि वे विपय सेवनके लिये वेश्याएं रखते थे। हां नाचने गानेका काम वा चमर ढोलने आदिका काम वे अवश्य करतीं थीं शोक है कि आपने इसीतरह शास्त्रोका सब अभिप्राय बदल दिया है और मनगढंत महा मिथ्या बाते लिखकर लोगोको उन बुरे कामो की ओर झुकनेके लिये बहकाया है। क्या कानून जानने वाले एक नामी वकीलका यही कर्तव्य होना चाहिये? क्या यह पाप और निंद्य कर्म नहीं है?

आगे आपने स्त्रियोके लिये ही कटमरेनकी बात लिखी है सो भी ठीक नही है क्योंकि पहिलेके लोग न्यायके लिये लड़ते थे। आज कल ब्रिटिशसरकार भी न्यायके लिये लड़रही है आपके लिखे अनुसार राज्यकी रक्षा और वृद्धिके लिये नहीं।

ऊपर लिखे कथनसे यह सहजही सिद्ध हो जाता है कि वर्त्तमानमे अभिलाषा तो बहुत ज्यादा है परंतु पुण्योदय कम होनेसे संपदाएं बहुत कम है पहिलेके लोगोको लालसाएं मोक्षके लिये थीं स्वर्गके भोगोके लिये नहीं। वर्तमानमे लोगोंकी लालसाएं बहुत है और वे हद्द दरजेकी वढती जा रही है परंतु पुण्योदय कम होनेसे कुछ मिलता नहीं है और इसीलिये पाप और निंद्य आचरण करते हुए लोग वावूसाहवके लिखे अनुसार नामर्द होगये है॥

आगे फिर आपने लिखा है कि "हमारी समझमे ऐसा नही है वल्कि आज कल लोगोके हृदयसे त्याग और वैराग्यका भाव निकलजानेका कारण हमारी समझमे तो ये कथा ग्रंथ है जिनमे वार वार बडे जोरके साथ यह एक विलकुल उलटा और बहुत ही अनोखा सिद्धांत किया गया है और शुरूसे आखीर तक केवल एक यही गीत गाया गया है कि त्याग वैराग्य धारण करने वालेको ऐसे सुंदर भोग मिलते है और स्वर्गोंके ऐसे ऐसे बहुत मजे प्राप्त होते है जो यहा स्वप्नमे भी नही आसकते। इस समय जो कथा ग्रंथ दिगम्बर जैनियोमें मिलते है वह हजार बारहसौ वर्षसे ज्यादा पुराने नहीं है और दिगम्बर जैनियोमे दीक्षा लेने और मुनि होनेकी प्रवृत्ति भी हजार वारसौ वर्षसे ही कम होने लगी है इससे पहिले तो मुनियोंके संघके संघ सब जगह घूमा करते थे परंतु कमी होते होते अब तो मुनि होनेका मार्ग विल्कुल बंदसा ही होगया है कारण इसका यही समझमे आता है कि जब लोगोको कथा ग्रंथोके द्वारा यह मालूम होने लगा कि त्याग वैराग्य करनेसे और भी ज्यादा भोगोमे फसना पड़ता है तो वह त्याग वैराग्य ग्रहण करनेसे घवड़ाने लगे और बात कुछ की कुछ होगई अर्थात् कथा ग्रंथोमे आचार्य महाराजोने तो त्याग वैराग्यका फल स्वर्गोंके

महाभोग मिलना इस कारण वर्णन किया था कि इस लालचसे बहुत लोग त्याग बैराग्यमें लगेंगे परंतु भोगोके लालचसे त्याग बैराग्यमे लगना एक वेजोड़ और बिल्कुलही असंभव बात थी इस वास्ते चल न सकी और फल इसका उलटा ही निकला" इसमें बाबू साहबने कितनी मिथ्या मनगढंत बनावटी और जैन सिद्धांतके अनुसार बिल्कुल झूठ बाते लिखी है उन्ही को हम दिखला देना उचित समझते है । बाबू साहबने जो आज कलके लोगोके हृदयसे त्याग वैराग्य भाव निकलजानेका कारण (बाबूसाहबकी सुविशाल समझके अनुसार) कथा ग्रंथोंको बतलाया है परंतु यह बिल्कुल मिथ्या और मनगढंत है बल्कि यो कहना चाहिये कि लोगोको धोखा देनेके लिये ही लिखा गया है। क्योंकि कथा ग्रंथ चरणानुयोगमें कहे हुए चारित्र और आचरणोके उदाहरण हैं चरणानुयोगमे जो चारित्र और आचरणोका स्वरूप कहा है वह सब मोक्ष प्राप्त करनेके लिये है यही सब कथा ग्रंथोमें उनके पालन करनेवालेके उदाहरण देकर समझाया गया है जो चारित्रकी पूर्णताको पहुंच गया उसे मोक्ष प्राप्त होगई और चारित्रकी पूर्णताको न पहुंचसका और कर्मोंके तीव्र उदयके कारण शुद्धोपयोगके बदले शुभोपयोगको ही धारण कर सका उसे स्वर्गादिकी संपदा प्राप्त होकर फिर शुद्धोपयोग होने पर मोक्ष मिल सकी यही विषय कथा ग्रंथोमे लिखा है तथा चारित्रका स्वरूप "संसारकारण निवृत्ति प्रत्यापूर्णस्य ज्ञानवंतः कार्यादानक्रियोपरमः सम्यक् चरित्रम्" अर्थात् संसारके कारणोको निवृत्त करनेके लिये उद्योग करनेवाले ज्ञानीके कर्मोंको ग्रहण करनेवाली क्रियाओका त्याग कर देना सम्यक चारित्र है ' ऐसा बतलाया है । इससे सिद्ध है कि शास्त्रोमे या कथा ग्रथोमें कहो भी भोगोके लिये त्याग और वैराग्यको नही बतलाया है किंतु ऊपर लिखे अनुसार संसारके कारण रूप पुण्यपाप कर्मोंके नाश करनेके लिये बतलाया है । परंतु बाबूसाहबने ठीक इससे उल्टा लिखकर लोगोको धोखेमें डाल दिया है । इसके सिवाय ' ऐसे अद्भुत मजे ' आदि अश्लील और गंदे शब्द लिखकर लोगोको खूब ही उसकाना चाहा है जोकि कानूनसे भी एक नामी वकीलकी शानके लिये बिलकुल विरुद्ध है ।

आगे आपने कथाग्रंथोकी प्रवृत्ति हजार बारहसौ वर्ष पहिलेसे बतलाई सो भी ठीक नही है । क्योकि जैसे संसार अनादि है वैसे ही महापुरुषोके जीवनचरित्र लिखा जाना भी अनादि है । इसीलिये प्रथमानुयोग चरणानुयोग करणानुयोग द्रव्यानुयोग ये द्वादशांग जिनवाणीके चारो भेद अनादिसे चले आ रहे हैं । रही मुनियोंके बंद होनेकी बात सो भी मिथ्या ही है क्योंकि अभी एक मुनिराजका स्वर्गवास हुए तो (अभी पूरे) दो महीने भी नही हुए है फिर भी बाबूसाहबने तो (लोगोको धोखा देनेके लिये) लिख ही दिया कि मुनि होनेका मार्ग बिल्कुल बंदसा होगया है । आगे आपने त्याग वैराग्य ग्रहण न करनेका कारण इन कथाग्रंथोको बतलाया है सो भी ठीक नहीं है । क्योकि कथाग्रंथोमे तो त्यागहीकी महिमा वर्णन करके उसका फल मोक्ष बतलाया है अफसोस तो यह है कि आपने भी पुरुषार्थसिद्धयुपायकी टीकामे ' रत्नत्रयमिह हेतु र्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य आस्रवति यत्तु पुण्यं शुभोपयोगोयमपराधः ' इसका अर्थ लिखते

समय यही बात लिखी है। जोकि कथाग्रंथोंमें अच्छी तरह दिखलाई है। और फिर आप ही उसपर कुठाराघात कर रहे हैं आपको अपनी बुद्धि किसी एक जगह तो ठिकाने रखनी चाहिये। फिर आपने लिखा है आचार्योंने लालच देनेको लिखीं थी परंतु फल उलटा हुआ सो भी ठीक नही है। क्योंकि आचार्योंने तो सब कथायें यथार्थ लिखी हैं आचार्य वीतराग निस्पृही मुनि थे उन्हें झूठ बोलकर कुछ धन नही कमाना था। या फीस लेकर किसीकी वकालत नहीं करनी थी वे क्यों किसीको लालच देते। आप सरीखा उन्हें स्वराज्यका स्वार्थ भी नहीं था जो लालच देते। जनाब लालच तो आप स्वराज्यका दे रहे है और उसीके लिये जिनसेन ऐसे महर्षिको लालच देनेवाला और झूंठा कहकर गालियां दे रहे है स्वयं महा झूंठ लिखकर समाजका हृदय दुखा रहे है जोंकि विल्कुल कानुनके बाहर है।

वास्तवमें देखा जाय तो त्यागवैराग्यके कम होनेका कारण लालसा और जरूरतोंका बढ़ जाना अथवा कर्मवीर महात्मा गांधीजीके मतानुसार आसुरी सभ्यताका फैल जाना है। जैसी जैसी लालसा जरूरतें और आसुरी सभ्यता बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे त्याग और वैराग्यकी मात्रा कम होती जाती है। भारतवर्षमें पहिले ऐसी सभ्यता और लालसाओंकी अधिकता कभी नहीं रही थी इसीलिये उससमय भारतवर्षके लोग (धड़ाधड़) त्यागी वैरागी होकर आत्मकल्याण करते थे वे आत्मकल्याणके सामने सांसारिक संपत्तिको कुछ नहीं समझते थे और इसीलिये उन्होने जितने ग्रंथ लिखे हैं उन सबका मुख्य उद्देश आत्मकल्याण ही है।

वज्रनाभकी कथाकी समीक्षाकी परीक्षा।

१—आपने लिखा है-"इस कथासे यह ही वात निकलती है कि सोलहवे स्वर्गके इंद्रने कई सागर तक तो देवांगनाओंके साथ खूब भोग भोगे परंतु मरनेसे छह महीने पहिले जिनेंद्रकी पूजा करते रहने और पंचपरमेष्ठीका गुणगान करते रहनेसे अगले जन्ममे वह चक्रवर्ती राजा होगया उपदेश इस कथासे यह मिलता है कि सारी उमर खूब भोग भोगो अंतसमयमें थोडासा धर्म करनेसे सब कुछ मिल जावेगा। अर्थात् धर्म कोई आत्माका स्वभाव नहीं है जिसकी रक्षा और संभाल हरवक्त रखनेकी जरूरत हो बल्कि धर्म एक बहुत सहज क्रिया है जो अंत समयमे बडी आसानीसे हो सकती है। इस लिये धर्मके वास्ते सारी उमर दिक्कत उठानेकी कोई जरूरत नहीं है उसके लिये तो मरनेसे पहिलेके ही थोड़ेसे दिन काफी है।" इसमे आपने वही पुराना रोना रोया है। इसका सविस्तर उत्तर पहिले लिखा जा चुका है। बाबूसाहब किसी एक विषयको दो चार छहबार लिखदेनेको ही अपनी विद्वत्ता और समीक्षा समझते है और तुर्रा यह कि वे विषय चाहे जैसे सच झूठ क्यो न हो। जिसप्रकार बादलोंकी वरसा ईखमें जाकर मीठी नीममें जाकर कड़वी सीपमे जाकर मोती और विषमे जाकर विषरूप हो जाती है उसीप्रकार आपको भी इस उपदेशसे ठीक उल्टी ही शिक्षा मिली है सो ठीक ही है क्योंकि कड़वी तूंबीमे दूध कडवा हो ही जाता है। बाबूसाहबको याद रखना चाहिये कि सम्यक्त्वी देव न्यायपूर्वक मंदकषायसे ही समयानुसार भोगोका सेवन करते है तथा यथासमय धर्मसाधन भी करते हैं

आपके लिखे अनुसार वे सारी उमर खूब भोग नहीं भोगते वे अंतसमयमें जो धर्म सेवन करते है वह भी उनका पहिलेका अच्छा अभ्यास रहता है तभी वे अंतमें ऐसा धर्मसेवन कर सकते है कि जिससे चक्रवर्ती ऐसे महाराज हो सकते है इससे साबित है कि आपने जो कुछ लिखा है कि सारी उमर दिक्कत उठानेकी कोई जरूरत नही ' 'थोड़ेसे दिन काफी है ' धर्म आत्माका स्वभाव नहीं है, आदि वह सब मिथ्या है। क्योकि धर्म आत्माका स्वभाव है जैसा कि आपने पुरुषार्थसिद्ध्युपायके ' दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः। स्थितिरात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बंधः ' इस श्लोककी टीकामे लिखा है। और सम्यक्त्वी देव सदा जन्मसे मरण तक इसकी संभाल रखकर काम करते हैं तभी वे अंतसमयमें अच्छा सन्यास वा धर्मसेवन कर सकते हैं। (शोक है इन सब बातोको जानकर भी बाबूसाहबने केवल लोगोंको बहकानेके लिये कुछका कुछ लिखमारा है।)

२—आगे चलकर तो आपने खूब ही दुलत्तियां झाड़ी हैं देखिये आप लिखते है " जिस-पर्यायमें एक व्यक्ति जावे उसके सब साथी भी वह ही पर्याय पावें यह एक बड़े आश्चर्यकी बात है। और जैनधर्मके कर्मसिद्धांतसे बिल्कुल ही विलक्षण मालूम होती है। क्या सबने एकसे ही निर्मल भाव किये थे, सबने उतने ही कर्मोंकी निर्जरा की थी। और सबने एकसे ही कर्म बांधे थे जिससे सबको ही सर्वार्थसिद्धि प्राप्त हुई। यदि कभी अकस्मात् ऐसा संयोग हो जावे तो आश्चर्य भी न हो परंतु कथाग्रंथोमें तो बहुधा कर ऐसा ही मिलाप दिखाया जाता है। जिससे कथाका बनावटी होना साक्षात् सिद्ध होता है। इस ही कथामें देखो कि वज्रजंघ और श्रीमतीका जीव कितने भवसे साथ साथ ही चले आ रहे हैं और सिंह सूअर बंदर और न्योलेके जीव कबसे साथ लग लिये है क्या यह लोग आपसमें सलाह करके कर्म बांधते है जिससे इकठे हो रहे और बिछुडने न पावे वा क्या जहां एक जाता है उसके साथी भी उसके पीछे पीधे हो लेते हैं और कर्मसिद्धान्तको लात मारकर वहीं जा पहुंचते हैं। कुछ हो कथाओकी यह शैली हमे तो बहुत ही अद्भुत मालूम होती है। इसमें आपने जो शब्द लिखे है उससे पाठकगण समझते होंगे कि बाबूसाहब कर्मसिद्धांतके अच्छे ज्ञाता होंगे परंतु वास्तवमें ऐसा नहीं है आपके लिखनेसे ही पता चलता है कि आप कर्मसिद्धांतको बिल्कुल नहीं जानते अथवा यदि जानते है तो उसपर आपने लात मार दी है। जब बज्रनाभिके साथ सोलह हजार राजाओने दीक्षा ली थी तब यह बहुत कुछ संभव है कि उनमेसे बहुतसे मोक्ष गये होंगे बहुतसे अन्य स्वर्गोंमे गये होंगे और बहुतसे सर्वार्थसिद्धि गये होंगे परंतु कथानक सब, संबंधसे ही कहा जाता है इसलिये सर्वार्थसिद्धि जानेवालोमेसे जिनका संबंध था उनके नाम कह दिये बाकीके लिये कुछ नहीं कहा। सोलह हजार तपस्वियोंमे आठ दशके पहिला शुक्लध्यान हो जाना बहुत ही सहज बात है इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। कर्मसिद्धांतका यह मत है कि शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे हुए जीव नियमसे सर्वार्थसिद्धि जाते है और तपस्वी सब कर्मोंके नाश करनेका प्रयत्न करते ही है ऐसी हालतमें जो शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट अंशोंसे आगे नहीं बढनेपाते अर्थात् लेश्याओको नष्ट नहीं

कर सकते वे सब सर्वार्थसिद्धि जाते हैं बाकी यथास्थान। जब उसके भाई आदि सब उत्कृष्ट तपस्वी थे तो सबके शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट अंश होजाना एक साधारण बात है। इसमे न तो कुछ सलाहकी बात है और न सलाह करनेके लिये आप सारीखे वकीलके पास आनेकी आवश्यकता है। इसमें क्या अद्भुत बात है सो आपने भी कुछ दिखलाई नही है। अथवा यो समझ लीजिये कि कर्मोकी बड़ी ही अद्भुत लीला है इसीलिये आपका यह मिथ्यात्व कर्म जन्मभरके धर्मसेवन पर लात मारकर यह इतना भारी अनर्थ और अधर्म करा रहा है और उसीके प्रबल उदयसे आप अनेक मिथ्या बाते लिखकर लोगोको धोखा दे रहे है क्या आपका और बाबू जुगुलकिशोरजीका जोडा मिलना अद्भुत माल्रम नहीं होता क्या इसमे भी कर्मसिद्धांतको लात मारी गई है? और यदि नहीं तो यह दोनोका जोड़ा एक साथ एक जगह क्यो पैदा हुआ। क्या दोनो सलाह करके पैदा हुए थे? (शोकके साथ लिखना पड़ता है कि) ऐसी ऐसी अपने घरकी आकस्मिक घटनाएं तो आपको अद्भुत माल्रम नहीं होतीं परंतु (केवल प्रत्यक्ष न होनेके कारण) कथाग्रथोकी घटनाएं अद्भुत माल्रम होती हैं। यहां इंदोरमें एक महेसरी मुनीम है वह बहरा है उसकी स्त्री भी बहरी है लड़की भी बहरी है। उसका लड़का भी बहरा है जंवाई भी उसे बहरा ही मिला है। तो क्या यह कहा जा सकता है कि वे सब सलाह करके पैदा हुए थे। जनाब कर्मोंके प्रवृत्तियोके संस्कार और उदयकी समानतासे (बड़ा ही विचित्र है और उसीके कारण यह यह सब) ऐसा संयोग आमिलता है।

अहमिंद्रकी कथाकी समीक्षाकी परीक्षा.

१—आगे आप फरमाते है "वज्रनाभिने महान् तप किया यहा तक कि शुक्लध्यान भी प्राप्त किया यहांतक तरकी कर जानेपर समझमे नहीं आता कि उसको सर्वार्थसिद्धिमे क्यो जाना पड़ा जहां जाकर उसको ३३ सागर तक मुनिधर्म पालन करने और सम्यक चारित्रके द्वारा और भी अधिक आत्मीक उन्नति करनेसे रुका रहना पड़ा यह बात चलती गाडीमे रोड़ा अटकानेके समान नहीं तो और क्या है। अगर सर्वार्थसिद्धिमे जानेके स्थानमे उसको मनुष्य जन्म मिल जाता तो उसके अति उत्तम कार्य अर्थात् मोक्ष प्राप्तिमे ३३ सागरकी रुकावट न पडती" सो यह भी बाबूसाहबने विना किसी समझके ही लिखा है क्योंकि आपका यह लिखना 'कि सर्वार्थ सिद्धिमे जाना चलती गाडीमे रोड़ा अटकाना है क्योकि मनुष्य पर्याप मिलनेपर ३३ सागर तक मोक्षकी रुकावट न पड़ती।' बिल्कुलही असंगत है क्योंकि यदि इसको ठीक मान लिया जाय तो हमारे बाबूसाहब जो स्वराज्यके लिये धर्मकी जड़ उखाड़ रहे है उनके लिये भारतवर्षमे एक साधारण वैश्यके घर उत्पन्न होना भी चलती गाडीमें रोड़ा अटकाना है। आपको चाहिये था कि आप इंगलेंडमे पैदा होते। वहा आपको स्वराज्यसाधनकी पूरी स्वतंत्रता मिल जाती। परंतु ऐसा हो कब सकता है कर्मोंका उदय किसीके हाथकी बात नहीं है उनका जैसा उदय होता है वैसा सबको भोगनाही पड़ता है। इसी तरह वज्रनाभिने तपश्चरण कर शुक्लध्यान प्राप्त किया परंतु वह शुक्लध्यानका पहिलाही भेद प्राप्त करसका समस्त कर्म नष्ट करनेके लिये वह आगेके शुक्लध्यानोंको

धारण नहीं कर सका और उस समय शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट अंश होनेके कारण सर्वार्थ सिद्धिका बंध हुआ इसलिये उसे वहां जाना पड़ा। बाबूसाहब इस सब विषयको नही समझते होगें तभी उन्होने ऐसी अटकलपच्चू बेतुकी बात लिख मारी है। अन्यथा कर्म सिद्धांतका जानकर तो कभी ऐसी ऊटपटाग छलांग नही मार सकता है।

२—फिर आपने लिखा है " क्या सर्वार्थसिद्धीके देव गृहस्थी श्रावकके समान भी अणुव्रत पालन नही कर सकते है यदि नही कर सकते है तो उनमें इसके लिये किस बातकी रुकावट है। क्या वह सत्य नहीं बोल सकते है। क्या वह चोरीका त्याग नहीं कर सकते है उनको क्यं हिसा करनी पड़ती है जिससे वह अहिसाव्रत ग्रहण नहीं कर सकते मैथुन वहां है ही नहीं फिर स्त्रीका त्याग उनका क्यो नही बन सकता और संपत्ति उनके पास चाहे कितनी ही हो परंतु परिग्रहका परिमाण करना तो असंभव नहीं माल्रूम होता है। फिर समझमे नहीं आता कि वह क्यों चारित्र नही पाल सकते हैं और क्यो अपने परिणामोको अधिक अधिक विशुद्ध नहीं कर सकते है और परिग्रको सर्व था ही क्यों नहीं त्याग सकते है और क्यो आत्मध्यान और शुक्लध्यान नहीं कर सकते है और यह भी समझमे नही आता कि किस कार्य की सिद्धिके वास्ते धर्मात्मा जीवोको ३३ सागर तक वहां रहना पडता है" ये सब ऊपर लिखी बाते बाबूसाहबकी समझ शरीफमे नहीं आई हैं इसका कारण यह है कि आप कानून पढे है कानूनका ही आपने जन्मभर अभ्यास किया है किंतु धर्मशास्त्रकी पुस्तक लेकर आप किसी जैन विद्वानके पास पढने नहीं गये ऐसी हालतमे यदि जैन शास्त्रोकी बातें आपकी विशाल समझ होने पर भी उसमे न आवें तो इसमे आश्चर्य ही क्या है। यह हम कईवार लिख चुके है कि आदिपुराण ऐसे महा ग्रंथकी समीक्षा लिखकर बने तो है आप महा समीक्षक परंतु उसमे आपने लिखी वा पूछी है वही बाते जो आपकी समझमे नहीं आई है इन सब बातोंके पूछनेका सीधासा उपाय यह था कि आप महीने पंद्रह दिनके लिये किसी विद्वान्‌के पास चले जाते और सब शंकाएं वा जो जो बाते समझमे नही आई है वे सब पूछ आते परंतु जान पडता है। कि एक वयोवृद्ध वकील होनेसे शायद आपने ऐसा करना अपमानका काम समझा होगा इसीलिये महा समीक्षककी उपाधि धारणकर वे सब बाते पूछी है (हमे शोकके साथ लिखना पड़ता है) आप न तो अभी व्रतका लक्षण जानते है और न अणुव्रतकाही लक्षण जानते है यदि आप इन दोनोका लक्षण जानते होते और सर्वार्थ सिद्धिके देवोंके कर्मोंकी उदय उदीर्णा सत्ता आदिको जानते होते तो कभी ऐसे बेसिर पैरके प्रश्न न करते देखिये शास्त्रोंमे व्रतका तो यह लक्षण है। संकल्पपूर्वकः सेव्यो नियमोऽशुभकर्मण॰। निवृत्तिर्वा व्रतं स्याद्वा प्रवृत्तिः शुभकर्मणः॥ ८० सा. ध. अर्थात् सेवन करने योग्य इंद्रियोंके विषयोंमे संकल्पपूर्वक नियम करना व्रत है अथवा संकल्पपूर्वक हिंसादि अशुभकर्मोंकी निवृत्ति करना वा संकल्पपूर्वक मात्र दान आदि शुभकर्मोंकी प्रवृत्ति करना व्रत है। यद्यपि सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्र हिंसा झूठ चोरी आदि पाप नही करते है तथापि अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदय होनेसे वे संकल्पपूर्वक उनका त्याग नहीं कर सकते। इसीलिये उनके व्रत नही हो सकते।

यही बात अहिंसाणुव्रत लिखते समय लिखी है और वह इस प्रकार है 'शांताद्यष्टकषायस्य संकल्पैर्नवभिस्त्रसान्। अहिंसतो दयार्द्रस्य स्यादहिंसेत्यणुव्रतम्, भावार्थ—जिसके अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ और अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ ये आठ कषाय शांत होगये है उस दयालुके संकल्पपूर्वक मन वचन काय कृतकारित अनुमोदनासे त्रस जीवोकी हिंसा न करनेसे अहिंसा अणुव्रत होता है। इससे सिद्ध है कि जब तक अप्रत्याख्याना वरणका क्षयोपशम नही होता तब तक किसीके व्रत हो नही सकता तथा बिना व्रतके और बिना कषायोके क्षयोपशम होनेसे उनके न चारित्र पल सकते है न परिग्रहोका सर्वथा त्याग कर सकते है न आत्मध्यान हो सकता है और न शुक्लध्यानही हो सकता है। रही ३३ सागर तक रुके रहनेकी बात सो जब तक आयुकर्मका उदय है तबतक वे उस पर्यायको छोड़ही नही सकते है जैसे अपवर्त्य आयु होनेपर भी जबतक आपका आयुकर्मका उदय है तबतक आप इस पर्यायको छोडकर स्वराज्य साधनके लिये इंगलेडमे पैदा नहीं हो सकते क्योकि जीवोको कर्मोंका उदय भोगनाही पड़ता है। फिर भला देवोकी तो अनपवर्त्य आयु है उन्हे तो आयु पूरी करनीही पड़ती है। बाबूसाहबके इस पैरा ग्राफसे यह भी पता लगता है कि आप हिंसा झूठ चोरी आदि पापोंके न करनेकोही व्रत मानते है परंतु वास्तवमे ऐसा नही है। पापोका न करना बात दूसरी है और शल्यरहित संकल्पपूर्वक उनके त्याग करनेके परिणाम होना बात दूसरी है। ऐसे परिणामोका होनाही व्रत है और ऐसे परिणाम अहमिंद्रोके नही होते क्योकि उनका घातक अप्रत्याख्यानावरण कषायका उनके उदय है।

आगे चलकर भी आपने वही अपनी पुरानी रागिनी आलापी है आप फरमाते है। "वज्रनाभिके जीवको अगर फूलोकी भरी हुई नीलमणिकी भूमिस्थानमे कंकर पत्थरकी कल्लर धरती मिलती और चमकदार महलकी जगह टूटाफूटा झोंपड़ा भी मुयस्सर न होता और रत्नजड़ित जेवरोकी जगह उसको तन ढकनेको कपड़ा भी न मिलता परंतु इस देवपर्यायकी जगह उसको मनुष्य जन्म मिल जाता तो उसका अहोभाग्य था लेकिन नहीं मालूम ऐसा क्यो नही हुआ। इसके कार्यकी सिद्धिमे यह ३३ सागरकी अंतराय उसके किसी पापकर्मने डाली या पुण्यकर्मनें और वह क्या कर्म है इस बातका जानना बहुत ही जरूरी है। और अगर मोक्षमे जानेके पहिले सबहीको यह अंतराय होता है अर्थात् सबहीको ३३ सागर तक सर्वार्थसिद्धिमे अटकना पड़ता है तो वह कौनसी प्रबलशक्ति है जो सब ही मोक्ष जानेवालोसे यह अंतरायकर्म करा लेती है" इसमे बाबूसाहबने यह पूछा है और यह जानना बहुत जरूरी समझा है कि वह अहमिंद्र मनुष्य क्यों नही हुआ। परंतु हम बाबूसाहबसे पूछते है आपको जो छहो ऋतुओकी अलग अलग शोभासे सुशोभित भारतवर्ष क्षेत्र मिला है। उच्च कुल उच्च जाति मिली है सर्वोत्कृष्ट जैन धर्म धारण करनेको मिला है तथा विद्या धन प्रतिष्ठा आदि सब कुछ मिला है इसके बदले आपको इंगलेण्ड देश मिलता कुल जाति धर्म विद्या धन आदि चाहे कुछ न मिलता तो भी काले आदमी होनेकी जगह श्वेतवर्ण होता तो आपके लिये अहोभाग्य था लेकिन न मालूम ऐसा क्यो नहीं हुआ,

इस बातका जानना बहुत जरूरी है। इस स्वराज्यके साधनमें आपको क्यों अटकना पड़ा और वह ऐसी कौनसी प्रबलशक्ति है जिसने ऐसा अंतराय कर्म करालिया। क्या बाबूसाहब सिवाय कर्मोदयके इसका और कुछ कारण कह सकते है। जब कर्मोदय ही इसका कारण है तब वज्रनाभिके जीवको भी अहमिंद्र होनेमें वही कर्मोदय कारण है जो कि उसने शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट अंशोंके होनेके समय किया था। (शोक है) एक नामी वकील होनेपर भी बाबूसाहबने सब ऐसी ही बातें लिखी है जिसमे ऊपरसे नीचे तक कहीं भी सिर पैर नहीं है, और जो बिल्कुल अटकलपच्चू तथा मनगढंत हैं)।

भगवानके साथियोंके पूर्वभवकी समीक्षाकी परीक्षा।

आप लिखते हैं "क्या राजा अतिगृद्धके माता पिताको उसके जन्मतेही यह मालूम हो गया था कि यह बहुत परिग्रही होगा जिससे उसका नाम अतिगृद्ध रक्खा" सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जन्मते ही मातापिताओंको उनके आगामी परिणाम मालूम नहीं हो जाते हैं किंतु सब जगह व्यवहारके लिये नाम रक्खा जाता है. सिद्धांत भी यही कहता है यथा " अतद्गुणेषु भावेषु व्यवहारप्रसिद्धये। यत्संज्ञाकर्म तन्नाम नरेच्छावशवर्तनात् " अर्थात् मनुष्योंकी इच्छानुसार केवल व्यवहारकी प्रसिद्धिके लिये गुण न रहते हुए भी जो संज्ञा रक्खी जाती है उसे नाम निक्षेप कहते हैं इसी नियमके अनुसार अतिगृद्धके माता पिताने उसका नाम रक्खा था तथा इसी नियमके अनुसार आपके माता पिताने भी आपका नाम सूरजभानु रक्खा है क्या इससे यह कहा जा सकता है कि उन्हें यह बात मालूम थी आप डबल सूर्यकी चांडिमा धारण कर संसारको इस तरह (आर्षप्रणीत शास्त्रोंकी ओर घृणा प्रगट कर तथा उन्ही महर्षियोंको झूंठा कर वा लालच देनेवाले आदि बुरे वचनकर) संतप्त करेंगे!

२—फिर आपने लिखा है "लोलुप हलवाईके माता पिताको कैसे मालूम हो गया था कि यह बहुत लोभी होगा जिससे उसका नाम लोलुप रक्खा" इसका भी उत्तर वही है जो ऊपर लिखा जा चुका है। इसमें विशेष बात यह है कि बाबूसाहबने तो यह पूछा है कि लोलुप हलवाईके माता पिताको कैसे मालूम हो गया कि वह बहुत लोभी होगा परंतु हम बाबूसाहबसे यह पूछते है कि आपको यह किस दिव्यज्ञानसे मालूम हो गया कि लोलुप हलवाईके माता पिताको यह मालुम हो ही गया था कि वह लोभी होगा यदि लोलुप नाम रखनेसे ही मालूम होना आप बतलाते है तो क्या आपके माता पिताने जो आपका नाम रक्खा है उससे यह मालूम हो जाता है कि आप डबल सूर्यकी चंडिमा धारणकर संसारको इस तरह संतप्त करेंगे " यह बात आपके माता पिताको मालूम थी? क्या ये सब बे सिरपैरकी बातें नहीं हैं। क्या आजकलके सभ्य संसारमें इन बातोंका कुछ मूल्य गिना जा सकता है!

३—फिर आपने लिखा है " मुनिकी पूजा और पंचाश्चर्य होते देखकर सिंहको क्यों जाति स्मरण हो गया क्योंकि यह कार्य तो उसके पहिले भवसे कोई भी संबंध नहीं रखते थे अगर पंचाश्चर्यादि देखनेसे पशुओंको जाति स्मरण हो ही जाया करता है तो जैसे शेर सूअर बंदर और न्यालेको

होगया तो जंगलके सब ही पशुओंको होना चाहिये था" सो भी मिथ्या ही है क्योंकि उसका जीव पहिले विदेह क्षेत्रमे, वत्सकावती देशकी प्रभाकरी नगरीका राजा था विदेह क्षेत्रमें सदा चौथा काल रहता है सदा मोक्षमार्ग जारी रहता है और मुनिलोग तथा समयानुसार तीर्थंकर भी सदा विहार किया करते है वह राजा एक विशाल देशका राजा था तो क्या उसने कभी भी किसी मुनिराजको दान देते और पंचाश्चर्य होते देखा भी नही होगा क्या यह बात संभव हो सकती है? क्या जातिस्मरण होते ही उसे विदेहक्षेत्रकी सब बाते याद नहीं आगई होगी परंतु शोक है कि आपने तो लिख ही मारा कि वह कार्य तो उसके पहिले भवसे कोई संबंध नहीं रखते थे। क्या आप बता सकते है कि आपको यह किस दिव्यज्ञानसे माळूम होगया है कि वह कार्य पहिले भवसे कोई संबंध नहीं रखता था? क्या आपको भी अवधिज्ञान होगया है? फिर आगे आपने जो यह लिखा है कि "पंचाश्चर्य देखनेसे ही पशुओको जातिस्मरण हो जाया करता है तो जंगलके सब ही पशुओको होना चाहिये था' सो भी ठीक नही है क्योंकि पंचाश्चर्यका देखना जातिस्मरणके लिये अनेक निमित्त कारणोमेसे एक निमित्त कारण है उपादान कारण नही यदि वह उपादान कारण होता तो अवश्य ही सब पशुओको हो जाता परंतु उसका उपादानकारण मतिज्ञानावरण और वीर्यांतर कर्मका विशेष क्षयोपशम है जिसके ऐसा क्षयोपशम होगा उसके निमित्त मिलने पर हो जायगा नही तो नहीं शोक है कि आप जिस विषयको नही समझते है, नही जानते है उसके लिये भी कुछ न कुछ ऊटपटांग और वेसिरपैरकी मिथ्या बाते लिखकर धर्मका आघात करते है और लोगोका जी दुखाते है। क्या जैसा आपने पूछा है कि पंचाश्चर्य देखनेसे ही जातिस्मरण हो जाया करता है जैसे शेर बंदर सूअर और न्योलेको होगया तो जंगलके सब ही पशुओको होना चाहिये था वैसेही क्या हम नही पूछ सकते कि यदि वकीली करलेनेसे ही धर्म ग्रंथोपर आघात किया जाता है और विना समझ बूझके मिथ्या बाते लिखी जाती हैं जैसी कि आपने लिखी है तो सबही वकीलोंको होना चाहिये था परंतु ऐसा नही है जिस जीवके जैसा कर्मोंका क्षयोपशम वा उदय होता है उसको उसीके अनुसार ज्ञान वा सुखदुःखादिक मिला करता है। मिथ्यात्व कर्मके क्षयोपशमसे सुबुद्धि होती है और उसीके उदयसे कुबुद्धि होती है यह स्वाभाविक नियम है। इसी नियमके अनुसार जिन जीवोके विशेष क्षयोपशय था उनके जातिस्मरण होगया बाकीके नहीं इसमें हम और आप क्या कर सकते है।

४—फिर आपने लिखा है "जातिस्मरण होतेही वह सिंह तुरंतही अपने आत्मकल्याणमे कैसे लगगया क्योंकि न तो उसके पहिले भवका कोई ऐसा संस्कार था और न अब इस भवमें ही उसने कोई धर्म उपदेश सुना था" इसमें भी आपने मिथ्याही लिखा है, क्योंकि पहिले भवका कोई ऐसा संस्कार नहीं था यह आपको किस दिव्य ज्ञानसे माळूम हो गया? हम पहिले लिख ही चुके है कि पहिले वह एक ऐसे देशका राजा था जहां अनेक मुनि लोग सदा विहार किया करते हैं और धर्मोपदेश दिया करते हैं, फिर ऐसी हालतमे पहिले भवका संस्कार न कहना बिल्कुल भूल है।

५—"राजा अतिगृद्ध नरकसे आकर उस जगह क्यों पैदा हुआ जहां उसका धन गड़ा हुआ था अगर उसको धनसे अतिमोह था तो क्या जैनधर्मका कोई यह भी सिद्धांत है कि जिस वस्तुका किसीको अतिमोह होता है वह उसको अवश्य प्राप्त हो जाती है।" इसमें आपने यह किस दिव्यज्ञानसे जान लिया कि अतिमोह होनेके ही कारण ही वह उस जगह पैदा हुआ जहां उसका धन गड़ा हुआ था। क्या बतलानेकी कृपा करेंगे? जब यह बात ग्रंथमें कहीं नहीं है तब क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि आपने ऐसी ही मिथ्या और बनावटी मनगढंत बातें लिखकर केवल लोगोंको बहकाना चाहा है और जैनियोंका जी दुखाना चाहा है? क्या इसके जवाबमें यह नहीं पूछा जा सकता कि आप देवबंदमें ही क्यों पैदा हुए? क्या यह भी किसी मतका सिद्धांत है कि जैनियोंके समीक्षक देवबंदमें ही पैदा हों? जनाब! यह सब कर्मोदयके आधीन बात है। उस सिंहको ऐसा ही किसी कर्मका उदय आगया जिससे वह वहीं पैदा हुआ। इससे आपने क्या उसके धनसे मोह था और जिसके मोह होता है वह उसको अवश्य प्राप्त हो जाता है आदि जो मनगढंत सिद्धांत निकाला है वह सिवाय वकीली विचित्र बुद्धिमत्ताके और कुछ नहीं है; क्योंकि जैनियोंके किसी ग्रंथमें कहीं भी ऐसी बेतुकी बातें नहीं लिखी हैं।

६—फिर आपने लिखा है कि "जीवन पर्यंतके वास्ते आहार छोड़ना और समाधिमरण करना तब ही ठीक हो सकता है जबकि मृत्यु निकट आनेका पूरा निश्चय हो जाय नहीं तो अपघात और महा पाप है, परंतु इस सिंहको तो अपनी मृत्युका खयाल भी नहीं आया था बल्कि इसने तो पंचाश्चर्य देखकर जातिस्मरण होते ही आहार त्याग कर समाधि लगा ली थी। इस व.. यह समाधिमरण हुआ या अपघात" सो भी ठीक नहीं है; क्योंकि अपघात और समाधि ... दोनोंका लक्षण हम पहिले लिख चुके है कि किसी कषायके आधीन होकर प्राण छोड़ना अपघात है, परंतु सिंहके उस समय कोई कषाय नहीं थी बल्कि वह तो सब तरहका ममत्व छोड़कर श... होगया था, जैसा कि लिखा है "उपशांतश्च निर्मूर्च्छः" यदि बिना कषायके आहार छोड़ना ही अपघात कहलाता हो तो बाबू अर्जुनलालजीने जेलमें जो आहार छोड़ा था वह भी अप... और महा पाप गिना जाना चाहिये। परंतु ऐसा न तो है और न सरकारने स्वीकार किया है। बाबू अर्जुनलालजीने जिनप्रतिमाके दर्शन न मिलनेसे अर्थात् धर्मसाधनकी पूरी सामग्री न मिलनेसे आहार छोड़ा था इसलिये वह अपघात और महा पाप नहीं गिना गया। इसी तरह सिंहने भी धर्म साधनकी पूरी सामग्री न देखकर तथा वास्तवमें विरक्त और निर्ममत्व होकर आहार छोड़ा था। इसको बाबूसाहबने अपघात कैसे कह डाला? शोक है कि बाबूसाहबने जो बातें लिखी है वे सब बिना समझे बूझे अटकलपच्चू लिखी हैं।

७—आगे चलकर आपने फिर फरमाया है "यदि यह कहा जावे कि सिंहका आहार मांसके सिवाय और कुछ नहीं है इस कारण जिस सिंहको जातिस्मरण होकर धर्मभाव उत्पन्न हो जावे वह मांस कैसे खावे, अर्थात् ऐसी अवस्थामें सर्वथा आहारका त्याग करनेके सिवाय वह और कर ही क्या सकता है; लेकिन ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि आदिपुराणके कथनानुसार

सिंह भी घासफूस खाकर अपना जीवन विता सकता है। चुनांचे जिस जंगलमें श्रीआदिनाथ भगवान् दीक्षा लेकर ध्यान लगाकर बैठे थे वहांके हिंसक पशुओंने हिंसा करनी बिल्कुल ही छोड़ दी थी, परंतु उन्होंने समाधिमरण नहीं किया था इस वास्ते वह अवश्य घासफूस ही खाने लगे होंगे" परंतु यह भी बाबू साहबने विना समझे ही लिखा है। यह माना जा सकता है कि सिंहादिक हिंसक जीव विना मांसके भी पेट भर सकते हैं चुनांचे जिस जंगलमें आदिनाथ भगवान् दीक्षा लेकर ध्यान लगाकर बैठे थे वहांके हिंसक पशुओंने हिंसा करनी छोड़ दी थी। परंतु बाबू साहबने यह किस दिव्यज्ञानसे जान लिया कि जैसे परिणाम भगवानूके दीक्षावन वाले पशुओंके थे जिनसे कि वे समाधिमरण धारण नहीं कर सके थे वैसे ही परिणाम उस सिंहके थे? क्या यह आपकी बनावटी और मनगढंत कल्पना नहीं है? और लोगोंको धोखेमें डालनेका पक्का सबूत नहीं है? क्या सब पशुओंके एकसे परिणाम होते हैं? शोक है कि बाबूसाहब जैन सिद्धांत की ऐसी ऐसी बातें भी हजम कर गये हैं, नहीं तो सीधी सी बात है कि उस सिंहके उस समय कर्मोंका विशेष क्षयोपशम होगया था जिससे उसके परिणाम शुद्ध होगये थे और उसने समाधि धारण कर ली थी। भगवानूके दीक्षावनवाले पशुओंके ऐसे विशेष कर्मोंका क्षयोपशम नहीं हुआ था इससे वे समाधि धारण न कर सके। अफसोस है कि कर्म सिद्धांतकी इस बातको उलट देनेके लिये आपको इतना मिथ्या तूल करना पड़ा है।

८—फिर आपने लिखा है "पहिले भवमें सिंहका जीव क्रोधी था, सुअरका जीव मानी था, बंदरका जीव मायावी था और न्योलेका जीव लोभी था, इस प्रकार चारो कषायके पृथक् पृथक् उदाहरण बनकर कषायकी चौकड़ी स्वरूप चार मनुष्योंका तिर्यंच आयु बांधकर एक ही स्थानमें पैदा होना, चारों ही को जातिस्मरण होना और चारों ही को इकट्ठे होकर धर्म सुननेके लिये आना और आगेको भी प्रत्येक भवमें बराबर साथ ही रहना यह सब बातें इस कथाके बनावटी होनेका पक्का सबूत है। इन चारोंके पूर्व भवकी कथामें एक और विलक्षण बात है कि मरे भी ये चारों ही अकाल मृत्युसे ही। चार कषायकी ऐसी चौकड़ीका इस तरह एक जगह इकट्ठा हो जाना और तो शायद कहीं भी किसीने न सुना होगा" यह भी बाबूसाहबकी एक नई सत्यकी खोज है जो शायद कहीं भी किसीने नहीं सुनी है। अब बाबूसाहबको इस कथाके बनावटी होनेका पक्का सबूत मिल गया है इसलिये शायद अब वे महर्षि जिनसेनपर बड़े जोरशोरसे इस तरहका इलजाम लगाकर मुकद्दमेकी पैरवी करेंगे कि क्यों उन्होने ऐसी बनावटी कथाएं लिखीं और क्यों लोगोंको स्वर्गका लालच दिया जिससे कि अहमिंद्र आदि कितने ही जीवोंको बहुत दिन तक भोगोंमें फंसना पड़ा और वे चारित्र धारण न कर सके। शायद बाबूसाहब भी इसी कारण चारित्र धारण कर अबतक मोक्ष नहीं पहुंच सके हैं। इसलिये आश्चर्य नहीं कि शायद वे अपना हरजाना भी मांगें। आपने एक विलक्षण बात और लिखी है। आप लिखते हैं कि मरे भी यह चारों ही अकाल मृत्युसे। शायद बाबूसाहबने अपने किसी दिव्यज्ञानसे उनके आयुके निषेक देख लिये होंगे अन्यथा क्या आयु पूर्ण होनेपर ऐसा निमित्त नहीं मिल सकता है? और बंदरका

जीव नागदत्त तो किसी चोटफेटसे नहीं मरा, परंतु बाबूसाहबके दिव्यज्ञानमें उसकी भी अकाल मृत्यु देख पड़ी है। बाबूसाहबका ज्ञान दिव्यज्ञान तो ठहरा और उसीके भरोसे तो ऐसी ऐसी मिथ्या बातें भी पक्के सबूतके रूपमें गिनी जाती हैं जिस प्रकार चारों तिर्यंच चारों कषायोंके उदाहरण बन गये और जातिस्मरण होने, धर्म सुनने आदिके लिये साथ साथ रहे तथा इसीपरसे आपने कथाको बनावटी होनेका पक्का सबूत मान लिया। उसी तरह समीक्षकोंकी जुगलजोड़ी जो सदा देववंदमें साथ साथ रहती है, दोनोंने साथ साथ कचहरीमें मुकद्दमोंकी पैरवीका काम किया है, दोनोंने साथ साथ धंधा छोड़ा है, साथ साथ समीक्षा लिख रहे हैं और दोनोंमें एक तो प्रथमानुयोगकी समीक्षा करनेके उदाहरण बने हैं और दूसरे चरणानुयोगकी समीक्षाके उदाहरण बने हैं। क्या इससे आप दोनोंके बनावटी होनेका पक्का सबूत कहा जा सकता है? क्या कोई बुद्धिमान् इसको मान सकता है? क्या इस तरह दोनोंका एक जगह इकट्ठा हो जाना कोई नहीं जानता? किसीने नहीं सुना, शोक है कि जैसी बातोंका आपको प्रतिदिन काम पड़ता है वैसी ही बातें जो महर्षि जिनसेनने लिखी हैं उनको बनावटीका पक्का सबूत लिख मारा है। इससे आपने महर्षि जिनसेनके साथ भगवान् महावीर तीर्थंकरपर भी मिथ्योपदेशका गुरुतर कलंक लगाया है, क्योंकि "ततोत्र मूलतंत्रस्य कर्ता पश्चिमतीर्थकृत्। गौतमश्चानुतंत्रस्य प्रत्यासत्तिक्रमाश्रयात् ॥ २०१—पर्व १ ॥ इस श्लोकके अनुसार इस पुराणके मूलकर्त्ता श्रीमहावीर स्वामी और उत्तरकर्त्ता श्रीगौतमस्वामी हैं। क्या इस तरह हम लोगोंके पूज्य महर्षि और पूज्य तीर्थंकरोंकी निंदा कर आपने समाजका जी नहीं दुखाया है और अंतःकरणको दुःख नहीं पहुंचाया है?

९—आगे आपने लिखा है "इन चारों पशुओंको आहारदान आदि देकर जातिस्मरण हो गया परंतु पहिले भवसे तो कोई सम्बन्ध इन बातोंका था नहीं फिर क्यों ऐसा हुआ। इन कथाओंके पढ़नेसे तो जातिस्मरणका होना एक खेलसा मालूम होता है जोकि अटकलपच्चू जब चाहे जिस किसीको हो जाता है" सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि जातिस्मरणके लिये पहिले भवके सम्बन्धकी कोई आवश्यकता नहीं है। उसके लिये तो मतिज्ञानावरण कर्म और वीर्यांतराय कर्मका क्षयोपशम चाहिये। तथा यदि मिल जाय तो कोई निमित्त कारण चाहिये अन्यथा निमित्त कारण कुछ मुख्य कारण नहीं है। आपने जातिस्मरणको खेल और अटकलपच्चू जब चाहे जिस किसीको हो जाना लिखा है उसपरसे तो यह मालूम होता है कि आपने अभी जातिस्मरणको समझा ही नहीं है। और विना समझे अटकलपच्चू यो ही लिख मारा है। जनाव! ज्ञान आत्माका स्वभाव है और जातिस्मरण मतिज्ञानका एक भेद है, क्यों कि स्मृतिका प्रभेद माना जाता है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दोनों ही अंशरूपसे संसारी सर्व साधारण जीवोंके होते हैं इसलिये विशेष क्षयोपशम होनेपर हर किसी सैनी पंचेंद्रियके जातिस्मरण होना स्वाभाविक है। यदि आप पहिले ही से इस विषयको समझ लेते तो शायद ऐसी अटकलपच्चू खेल सरीखी बातें कभी नही लिखते।

१०—आगे आपने लिखा है "इन चारों पशुओंके पूर्वभवका धर्मसे भी कोई सम्बन्ध नहीं था तब जातिस्मरण होने पर भी इनको धर्मकी लगन कैसे लग गई" यह भी बाबू साहबने ठीक

नही लिखा है, क्योकि धर्मकी लगन लगनेके लिये पूर्वभवके धर्म सम्बन्धकी कोई आवश्यकता नही है। इसके लिये भी कर्मके विशेष क्षयोपशमकी आवश्यकता है। उन पशुओका ऐसा विशेप क्षयोपशम होगया था इसलिये उनको धर्मकी लगन लग गई। जैसे मिथ्यात्व कर्मके उदयसे कोई धर्मका जानकार मनुष्य भी उस सद्धर्मका खडन करने लग जाता है तथा उसे छोड़ देता है, उसी प्रकार अशुभ कर्मोंके विशेष क्षयोपशम होनेपर पशु सरीखे धर्मके अजानकार जीवोको भी धर्मकी लगन लग जाती है और फिर वे धर्मोपदेश सुननेका व यथाशक्ति धारण करनेका प्रयत्न करते हैं।

श्रीमती और उसके पिता वज्रदंतके पूर्वभवकी समीक्षाकी परीक्षा।

१—आपने लिखा है श्रीमतीको अपनी धायसे अपने अगले तीन भव कहनेकी कोई जरूरत नही थी सिर्फ एक भव वर्णन करना काफी था जिसमे ललितागदेवकी स्वयंप्रभा थी इसे भी बाबूसाहबकी सत्यकी खोज कहना चाहिये, अर्थात् श्रीमतीको जो तीन भवका स्मरण हो आया था उनमेसे वह दो भव छिपा लेती और बाबूसाहबकी इच्छानुसार एक ही भव कह सुनाती तो शायद बाबूसाहबका वस्तुस्वभावरूप धर्म सध जाता, परंतु क्या बाबूसाहब फिर यह नही पूछते कि तीन भव याद रहते हुए भी उसने एक ही भव क्यो सुनाया? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि बाबूसाहबको केवल लिखने और पूछनेकी धुन सवार हुई है जिसको पूरा करनेके लिये आप चाहे जो, चाहे जिस तरह लिख देते है और पूछ बैठते है।

२—फिर आपने लिखा है श्रीमती उस समय ललितागकी धुनिमे उन्मत्त हो रही थी इस वास्ते उस समय उससे व्यर्थ ही अपने तीन भव बताये भी नही जा सकते थे। कथा अप्राकृतिक है और इससे इसका बनावटी होना सिद्ध है।" सो भी ठीक नही है, क्योकि प्रथम तो आपने जो यह लिखा है कि वह ललितांगकी धुनिमे उन्मत्त हो रही थी सो भी मिथ्या है। ग्रथमे श्रीमतीके लिये उन्मत्त शब्द कही नहीं लिखा है, आपने अपनी कथामे भी नहीं लिखा है। हां 'बेहोश शब्द अवश्य लिखा है, परंतु बेहोशीमे उसने कुछ कहा नही है सचेत होनेपर धायके द्वारा बहुत समझानेपर कहा है। ऐसी हालतमे एक भव और तीन भवका हाल कहना समान है। उसे तीन भव याद आए थे इससे तीनो कह सुनाए इसलिये इसपरसे कथा तो अप्राकृतिक, और बनावटी सिद्ध नहीं होती है बल्कि बराबर ज्योंकी त्यो सिद्ध होती है। परंतु आपकी यह समीक्षा अवश्य मिथ्या और बनावटी ऊटपटांग सिद्ध होती है।

३—फिर आपने लिखा है "मुनिराजकी अवज्ञा करके क्षमा मांगना यह कोई पुण्य प्राप्तिका कारण नहीं हो सकता है जिससे मनुष्य पर्याय मिले। हां अवज्ञा करनेसे जो महा पाप हुआ वह क्षमा मांगनेसे कुछ कम अवश्य हो सकता है। तब पटैलकी लड़कीको मनुष्य जन्म और उत्तम वैश्य कुल किस पुण्यकर्मसे मिला, मालूम होता है कि मुनिसे क्षमा मांगनेकी महिमा दिखानेके वास्ते ही यह कथा कही गई है, परंतु महिमाको अधिक खैंच दिया है" यह भी जैन सिद्धांतसे बिल्कुल विरुद्ध है। जीवोंके जो कर्मोंका आस्रव होता है वह 'तीव्रमंदज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवी-

र्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ' इस सूत्रके अनुसार ज्ञातभाव और अज्ञातभावके आस्रवमें बहुत अंतर रहता है। धनश्रीने जो मुनिराजकी अवज्ञा की थी वह अज्ञातभावसे की थी, जैसा कि आगे उसीने अपने मुंहसे कहा है। ऐसी हालतमें उसके तीव्र पापका बंध नहीं हो सकता, परंतु क्षमा ज्ञातभावोंसे मांगी गई है इसलिये उससे जो पुण्य होगा वह उस पापसे तीव्र ही होगा। आपने यह जो लिखा है कि अवज्ञा करनेसे जो महा पाप हुआ वह क्षमा मांगनेसे कुछ कम अवश्य हो सकता है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि धनश्रीके अज्ञातभावोंसे पाप हुआ था महापाप नहीं, दूसरे जो पापका बंध हो चुका था वह क्षमा मांगनेसे क्षय नहीं हो सकता; क्योंकि क्षमा संवरका कारण है निर्जराका नहीं। इससे सिद्ध होता है कि वह क्षमा मांगनेरूप पुण्यसे ही मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुई थी। ग्रंथमें भी लिखा है-तेनोपशमभावे न जातात्पंपुण्यभाश्रिता। मनुष्य जन्मनीहाद्य" शोक है कि इस प्रकार ग्रंथमें लिखे रहने पर भी आपने अपनी मनगढंत अटकलपच्चू बात कुछ और की और ही गढ़ ली है जोकि जैन सिद्धांतके बिल्कुल विरुद्ध है और फिर उसी गढ़ी हुई वेसिरपैरकी बातसे आपने प्रश्न भी पूछ मारा है कि ऐसा जन्म उसे किस पुण्यकर्मसे मिला। हालां कि यह ग्रंथमें साफ लिखा हुआ है और फिर उसीपरसे आपने अपनी राय भी दे डाली कि यह कथा केवल क्षमाकी महिमा दिखानेके लिये ही कही गई है। क्या एक नामी वकीलकी राय ऐसी ही वेसिरपैरकी और अटकलपच्चू बातोंके आधारपर होनी चाहिये?

४—आगे आपने लिखा है निर्नामा जैसी एक साधारण लड़कीको जो अपनी दीनता और दरिद्रतासे व्याकुल हो रही थी बड़े कठिन उपवास वता देना जिनमें एकमें १८ और दूसरेमें त्रेसठ उपवास करने पड़ते है किसी तरह उचित नहीं हो सकता है। जब स्वयं मुनिमहाराज इन उपवासोंको मोक्षके देनेवाले बताते हैं तब एक साधारण लड़की एकदम इतनी ऊंची मंजिलपर कैसे चढ़ सकती है, इस कारण मुनिराजका उसको यह व्रत बताना, उसका विधिपूर्वक इन व्रतोंका पालना और अंतमें दूसरे स्वर्गमें जाकर ललितांगकी प्रिय स्त्री होना और खूब भोग भोगना इस कथाको अप्राकृतिक सिद्ध करता है" इसमे आपने एकसौ अट्ठावनकी जगह अठारह उपवास लिखे है। अभी वर्तमानमे ऐसी बहुतसी वृद्ध स्त्रियां है जिन्होंने बारहसौ चौतीस उपवास कर लिये हैं फिर एक सौ अट्ठावन और त्रेसठ कुल दोसौ इक्कईस उपवास एक वैश्यकी पुत्रीके लिये, सो भी चौथे कालमें जबकि शक्तियां बहुत अधिक रहती हैं, कोई कठिन काम नहीं है। ये उपवास कुछ लगातार तो करने ही नहीं पड़ते विधिपूर्वक अंतराल देकर करने पड़ते हैं। जब आज पंचमकालमें अल्प शक्तिवाले उनसे पंचगुने छहगुने उपवास करते हैं तो उस समय इतने थोड़े उपवास करना बहुत ही सहज है। फिर भी बाबूसाहबने न जाने किस दिव्य समझके अनुसार उसे अनुचित लिख मारा है। और फिर उसी दिव्य समझकी रायके अनुसार आपने जजबनकर फैसला भी दे डाला है कि ऐसा सब होना कथाको अप्राकृतिक सिद्ध करता है। यदि संसारमें ऐसी ही अटकलपच्चू और सरासर मिथ्या समझवाले और उसी अटकलपच्चू तथा मिथ्या समझके अनुसार राय देनेवाले वकील लोग जज बना दिये जायं तो बहुत कुछ संभव है कि संसारका बहुत जल्दी सर्व नाश हो जाय।

५—आगे फिर आप फरमाते है "इस बेचारी निर्नामाने इस जन्ममे तो किसी मुनिकी अवज्ञा नही की थी और पिछिले जन्ममे भी जो अवज्ञा की थी उसकी क्षमा मांग ली थी तब इस जन्ममे उसको डराना कि मुनि शाप भी दे सकते है और अनुग्रह भी कर सकते है किसी तरह उचित नहीं हो सकता है। और न यह बात शास्त्रसम्मत है, क्योकि जैन मुनि न किसीको शाप देते है और न किसीसे राग करते है। यह बाते तो अन्यमतके ही साधुओमे हो सकती है और उन्हीके शास्त्रोमे लिखी भी गई हैं।" इसमे भी आपने उसी उल्टी समझसे काम लिया है, क्योंकि मुनिराजने निर्नामाको डराया था यह बात शास्त्रोमे कहीं नही लिखी है। यह तो केवल आपकी मनगढंत कपोलकल्पना है। कथामे तो निर्नामाके पूछनेपर मुनिके द्वारा उपदेश देना लिखा है। क्या उपदेश देते समय किसी पापकार्यके न करनेका भी उपदेश नहीं देना चाहिये और उसके गुणदोप भी नही बतलाने चाहिये? बाबूसाहबकी विशाल समझमे पापकार्योंके त्याग करनेका उपदेश देना भी अनुचित है। शायद इसी विशाल समझके अनुसार आप विधवाविवाह, जातिपाति उठा देना आदि पापकार्योंको उचित समझते होगे। क्या आदिपुराणमे इस प्रकरणमे यह लिखा है कि जैन मुनि शाप दिया करते हैं और राग किया करते है? शास्त्रमे तो उनकी सामर्थ्य बतलाई कि शाप अनुग्रह करनेकी सामर्थ्य है जैसा कि लिखा है 'मुनयः पश्य कल्याणि शापानुग्रहयोः क्षमाः" शोक है कि ग्रंथमे जो लिखा है उसको आपने अच्छी तरह समझा तो है नही और विना समझे ही केवल लोगोको धोखेमे डालनेके लिये कुछका कुछ ऊटपटाग लिख मारा है। क्या द्वीपायन मुनि जैनमुनि नही थे और उनका हाल जैन शास्त्रोमे नहीं है? परंतु बाबूसाहबको जैनशास्त्रोकी बात माळूम हो तब न। आप तो विना ही जाने बूझे सर्वज्ञका पद धारण करना चाहते है।

६—आगे फिर आपकी श्रीकलम लिखती है "मुनिराजने विना किसी कारणके व्यर्थही उस लड़कीको यहांतक डराया कि जो वचनसे अवज्ञा करते है वह गूंगे हो जाते है, जो मनसे करते है वह मनहीन हो जाते है और जो शरीरसे अवज्ञा करते है उनके दुखका तो कोई पार ही नहीं है। परंतु कर्मबधके यह अद्भुत नियम क्या जैनधर्मके कर्मसिद्धांत और तारतम्य कथनके अनुसार है या सिर्फ डरानेके वास्तेही कहे गये है इसकी जांच कर लेनी बहुत जरूरी है नही तो ऐसा न हो कि उलटी बातकी श्रद्धा कर लेनेसे सम्यक्त्वमे फर्क आजावे। मुनिमहाराजके बताये हुए यह कर्मबंधके नियम हमे तो जैन सिद्धांतके अनुकूल नहीं जचते है" वाह! मानो आप जैन सिद्धांतके अनुसार कर्मबंधके नियमोकी जानकारीमे अद्वितीय पारंगत हैं तभी तो आपने विना किसी रोकटोकके फैसला दे दिया है कि मुनिराजके बताये हुए यह कर्मबंधके नियम जैनसिद्धांतके अनुसार नहीं जचते, शायद ये नियम मुनिराजके बताये हुए है इसलिये आपको जैन सिद्धांतके अनुसार नही जचते। यदि ये ही नियम कोई युरोपवासी जैनदर्शनदिवाकर बतलाता तो शायद आप चुपचाप नीचा सिरकर मान लेते, क्योकि आपने यह भी तो लिखा है कि इसकी जांच कर लेनी बहुत जरूरी है। इससे सिद्ध होता है आपको भी अभी कुछ निश्चय नहीं है। एक जगह

तो आप अनिश्चयात्म वाक्य लिखते है और दूसरी जगह सर्वज्ञ बनकर फैसला लिख मारते हैं। क्या पाठक गण इसे दुरुत्तीके सिवाय और कुछ कह सकते हैं। यह तो हम ऊपर लिख चुके है कि बाबूसाहबने उपदेशको डराना लिख दिया है। मानो आप पाठकोको बहकाते है कि मुनियोंका यह उपदेश कोरा डरानेके लिये है वास्तवमे नही, इसलिये तुम लोग ऐसे उपदेशोसे और ऐसे पापोंसे डरो मत और हमारे (बाबूसाहबके) समान उच्छृंखल होकर जो मनमे आवे वही कहो, करो और लिखो। जनाब, मुनियोकी अवज्ञा मोहनीयकर्मके उदयसे की जाती है। मोहनीय एक ऐसा विलक्षण कर्म है कि जो उदय होनेपर आत्माके सब गुणोको विपरीत स्वादु बना देता है। उस समय विपरीत स्वादु गुण विशिष्ट आत्माके परिणाम भी शुभ नहीं हो सकते किंतु प्रायः अशुभ ही होते हैं तथा अशुभ परिणामोसे अशुभ कर्मोंका ही आस्रव होता है। तथा अनुभाग बंध कषायसे ही होता है। जिस समय मुनिकी अवज्ञारूप कषाय होती है उस समय आनेवाले अशुभ कर्मोंमे अनुभागबंध भी वैसाही पड़ता है जैसी कि कषाय होती है, क्योकि उस अनुभाग बंधका पड़ना उस कषायके आधीन है। इसलिये मुनिकी अवज्ञा करते समय आनेवाले अशुभ कर्मोंका अनुभाग बंध भी प्रायः वैसाही होगा जिससे कि वह गूंगा वगैरह हो सके।

७—आपने फिर लिखा है—"जो मुनिकी दबी हुई अग्निको सुलगाते है' मुनिराजके मुखसे ऐसे वचन निकलना हमारी समझमे तो मुनिपदकी अवज्ञा करना और उनको पाखंडी साधु बनाना है मुनिमहाराजके इस वाक्यपर हमको तो बड़ा ही आश्चर्य होता है।" इसमे बाबूसाहबने "जो मुनिकी दबी हुई अग्निको सुलगाते है" यह वाक्य लिखा है वह अपनी ओरसे बनाकर लिखा है। यदि पाठकगण ग्रंथमे लिखा हुआ वाक्य पढेगे तो फिर बाबूसाहबके लिखे वाक्यके अर्थमे और ग्रंथमे लिखे वाक्यके अर्थमे कितना आकाशपाताल सरीखा अंतर है यह बात सहज रीतिसे समझमे आ जायगी। ग्रंथमे लिखा है "क्षमाधनानां क्रोधाग्निं जनाः संधुक्षयंति ये क्षमाभस्मप्रतिच्छन्नं दुर्वचो विस्फुलिंगकं। संमोहकाष्ठजनितं प्रातीप्य पवनेरितं। किं तैर्नेनाशितं मुग्धे हितं लोकद्वयाश्रितं॥ अर्थात् "हे मुग्धे जो जीव क्षमारूप धनको धारण करनेवाले मुनियोंके मोहरूपी काष्ठसे उत्पन्न हुई विरोधरूपी वायुसे झकोरी हुई दुर्वचनरूप फुलिंगोसे भरी हुई और क्षमारूपी भस्मसे ढकी हुई क्रोधरूपी अग्निको उद्दीपन करते हैं वे अपने दोनों लोकोंमें होनेवाले कौनसा हितका नाश नही करते है" इससे स्पष्ट सिद्ध है कि नौ दश गुणस्थान तक रहनेवाली कषाये छठवे गुणस्थानमे रहनेवाले मुनियोके क्षमा आदि गुणोंसे ढकी रहती है यदि मोहनीयका प्रबल उदय और निमित्त मिल जाय तो उदीरणा होकर वे कषायें जागृत हो सकती हैं। इसलिये इन श्लोकोमे निमित्त न मिलनेका उपदेश दिया गया है जिससे मोहनीयका उदय होनेपर भी निमित्तके न मिलनेसे वे कषाये जागृत न होने पावे। परंतु बाबूसाह-

---

१ इस क्रियाका प्रयोग जहापर अग्निका अभाव है वहा किया जाता है।

२ इस वाक्यका प्रयोग ऐसी जगह किया जाता है कि जहा अग्नि तो मौजूद है परंतु उसमें बराबर तेज नहीं है इसलिये उसके बराबर चैतन्यके निमित्त ऐसा वाक्य आता है।

बने अपनी ओरसे एक ऐसा वाक्य बनाकर लिखा है कि जिससे उसका अभिप्राय ही उलट जाता है और कुछका कुछ समझ पड़ता है। और फिर तारीफ यह है कि उस अपने बनाये हुए वाक्यकी ही समीक्षा लिखी है। और फिर उसको ही ग्रंथका वाक्य बतलाकर अपनी राय दे डाली है। क्या यह आंखमें धूल झौंकना नहीं है। क्या दंभ नहीं है? और एक वकीलकी कलमसे लिखा जाना आश्चर्य प्रगट नहीं करता!

८—आगे आपने लिखा है "व्याकुल चित्त श्रीमतीके सामने वज्रदंतको अपने और दूसरोंके अनेक भव वर्णन करनेकी कोई जरूरत नहीं थी और न इस तरह भव वर्णन करनेका वह अवसर था। उस समय तो केवल इतना कहना काफी था कि पहिले भवमें मैं भी सोलहवें स्वर्गका देव था जहां तू अपने ललितांगदेवके साथ आई थी उस अवसरपर व्यर्थ इतने लम्बे चौड़े भव वर्णन करना बिल्कुल ही अप्राकृतिक है और कथाका बनावटी होना सिद्ध करता है" यह भी आपने बिल्कुल विना समझे और आर्यक्षेत्रकी स्वर्गीय सभ्यताके विरुद्ध लिखा है। क्योंकि प्रथम तो उस समय श्रीमतीका चित्त व्याकुल था यह बात ग्रंथमें नहीं लिखी है आपकी बनावटी है। ग्रंथमें मानसिक पीड़ा लिखी है। मानसिक पीड़ा बात दूसरी है और चित्तका व्याकुल होना बात दूसरी है। व्याकुल चित्त किसी एक जगह स्थिर नहीं रहता परंतु मानसिक पीड़ावालेका चित्त किसी चिंतामें निमग्न रहता है। दूसरी बात यह है कि उस समय चक्रवर्तीको किसी भी कार्यसे श्रीमतीकी मानसिक पीड़ा दूर करनी थी। आर्यक्षेत्रमें किसी भी मानसिक पीड़ाको दूर करनेके लिये कथा कहानी कहकर विनोदरूपसे समय निकाल देना एक अच्छा उपाय गिना जाता है। फिर ऐसी हालतमें उस चक्रवर्तिके द्वारा अवधिज्ञानसे जाने हुए अपने और उसके पहिले भवोंकी सच्ची कथाएं कह सुनाना अप्राकृत है या प्राकृत? शोक है कि जिन बातोंका प्रत्येक मनुष्यको रात दिन काम पड़ता है और यदि आपके बालबच्चे हों तो आपको भी पड़ता होगा उन्हीं बातोंको आपने न जाने किस विलक्षण समझके अनुसार अप्राकृतिक लिख मारा है और फिर उसी अपनी बनाई हुई अप्राकृतिक रागिनीके अनुसार आपने कथाको भी बनावटी लिख मारा है। आपकी इस विलक्षण समझ और ऐसे दुःसाहसके लिये कोटि कोटि बलिहारी है।

९—आगे आपने एक मखौलकी बात लिखी है। आप लिखते है "चंद्रकीर्ति और जयकीर्ति दोनों मित्र थे तो क्या उनकी मित्रतामें यह शक्ति थी कि अगर चंद्रकीर्तिने चौथे स्वर्गमें ऋद्धिधारी देव होनेके कर्म बांधे तो उसके मित्रके भी वह ही कर्म बंध जावें, अर्थात् वह भी वहीं पहुंचे और उस ही ऋद्धिका देव हो और आगेको भी दोनोंके एकसे ही कर्म बंधते रहें अर्थात् स्वर्गसे डिगनेपर दोनों एकही राजाके पुत्र हों एक पर्यायसे दूसरी पर्यायमें जाना इन कथाओंसे तो बिल्कुल ऐसा ही अपने इख्तियारी माळूम होता है जैसा कि अगर एक मित्र कलकत्तेकी सैरको जाय तो दूसरा भी उसके साथ हो ले। इस प्रकार इन कथा ग्रंथोंने जैनधर्मके कर्म सिद्धांतको बिल्कुल ही भुलाकर एक मखौलसा बना दिया है"। बाबूसाहबकी यह वही पुरानी रागिनीका आलाप है, जिसका उत्तर हम विस्तृत रीतिसे उदाहरणसहित दे चुके हैं जान पड़ता है, बाबूसा-

हवको भी मखौलका बहुत शोक है, तभी तो आप एक ही रागिनीको बार बार आलापे आ रहे हैं और बिल्कुल मिथ्या लिख रहे है; क्योंकि यदि दूसरी पर्यायमें जाना इख्तियारी होता जैसा कि आपने झूंठ मूंठ ही कथाग्रंथोंका नाम लेकर बताया है, तो जिस हालतमें चंद्रकीर्त्ति और जयकीर्तिके जीव एक ही स्वर्गमे पहुंचे, वहांसे एक ही राजाके पुत्र हुए फिर वहांसे चलकर एक ही जगह क्यो नहीं हुए। जब जयकीर्त्तिका जीव विभीषण नारायण था तब वह अवश्य ही नरक गया होगा, क्योंकि नारायण नियमसे नरक जाते है; फिर उसीके साथ चन्द्रकीर्तिके जीव श्रीवर्माका नरकमें जाना क्यों नहीं बतलाया। परंतु असल बात यह है कि जिसमे बाबूसाहबका मखौल बन जाता है उसे तो लोगोंको दिखला देते हैं और बाकी की छिपाकर फिर उसी मखौलकी पैरवी किया करते है। परंतु अफसोस इतना ही है कि बाबूसाहबकी दलीलें इतनी पोच और धोखेकी आड़में छिपी रहनेपर भी इतनी कमजोर हैं कि वे क्षणभर भी ठहर नही सकतीं। यदि बाबूसाहबने कर्मसिद्धांत पढ़ा होता तो वे कभी ऐसी बेसिर पैरकी बातें नहीं लिखते। हम दावेके साथ लिखते है कि जो कर्मसिद्धांतमें है वही उदाहरणरूपसे कथाग्रंथोंमें हैं उसमें तिलतुषमात्रका भी फर्क नहीं है। यह तो बाबूसाहबकी अजानकारी और बुद्धिका भ्रम है जो मिथ्या और सरासर झूंठे लांच्छन लगाकर महर्षि प्रणीत शास्त्रोंका मखौल कर रहे हैं और इस तरह एक धर्मके पूज्य महर्षियोंकी निंदा कर सारी समाजका जी दुखा रहे है।

१०—फिर आपने लिखा है रानी मनोहरा अपने बेटेके मोहमें यहां तक फंसी रही कि अगले जन्ममें भी उसका मोह नहीं गया। तौ भी उसकी स्त्री पर्याय टूटकर वह दूसरे स्वर्गमें ललितांगदेव होगई जहां उसको अति सुंदर चार हजार देवांगनाएं भोगके वास्ते मिलीं। मालूम होता है कि उपवास करने और मरते समय समाधि लगानेका यह उत्तम फल दिखलाया गया है" सो भी बाबूसाहबने ठीक नहीं लिखा है। क्योंकि मनोहराके समाधिमरण धारण करनेसे ही यह साबित होता है कि उसका मोह छूट गया था, क्योंकि विना मोहके छूटे समाधिमरण हो ही नहीं सकता। परंतु शोक है कि फिर भी बाबूसाहबने तो अपना स्वार्थ पूरा करनेके लिये झूंठमूंठ ही उसके मोहका अस्तित्व लिख ही मारा और फिर सबसे बड़ी तारीफकी बात आपने यह लिखी है कि 'मालूम होता है कि उपवास करने और मरते समय समाधि लगानेका यह उत्तम फल दिखलाया गया है।' अर्थात् बाबूसाहबको यह किसी दिव्यज्ञानसे मालूम होगया है कि वास्तवमें मनोहराका जीव ललितांगदेव नहीं हुई थी यह तो केवल उपवास और समाधिका फल दिखलानेके लिये महर्षि जिनसेनने झूंठी कथा बनाकर लिख दिया है। शायद ऐसे दिव्यज्ञानवाले या उस समय साक्षात् उपस्थित रहकर यह सब देखनेवाले चार छह गवाह भी बाबूसाहबके पास जरूर होंगे, क्योंकि विना गवाहोंके इसकी पैरवी भी तो ठीक तरहसे नहीं हो सकेगी।

११—रानी मनोहराके पुत्र श्रीवर्माको भी अपनी मासे अति स्नेह था, लेकिन इस तीव्र स्नेहके रहते हुए भी उसने दीक्षा ली, अवधिज्ञान प्राप्त किया और सोलहवें स्वर्ग गया। वहा जाकर भी उसका स्नेह बना रहा। इस कथनमें भी अवधिज्ञान और सोलह स्वर्गकी प्राप्तिका होना

उपवासकी ही अद्भुत महिमा मालूम होती है" सो यह भी महा मिथ्या है। क्योंकि ग्रंथमें साफ लिखा है कि श्रीवर्माने पांच हजार राजाओंके साथ जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। क्या तीव्र स्नेहके रहते हुए भी कोई दीक्षा धारण कर सकता है? क्या बाबूसाहबको अवधिज्ञान होगया है जो उससे उन्होंने जान लिया है कि तीव्र स्नेहके रहते ही दीक्षा धारण की थी? क्या यह झूंठ और छल नहीं है। जनाब बाबूसाहब यह कई वार लिखा जा चुका है कि स्वर्गकी प्राप्ति शुभोपयोगका फल है। जैसा कि कुछ वर्ष पहिले आपने ही पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी टीकामें लिखा है। तथा अवधिज्ञान तपश्चरणजन्य ऋद्धि है। शोक है कि जो बात आप अपनी ही लिखी पुस्तकमें लिख गये हैं वह भी इस समय धुनिकी सवारमें याद नहीं रही है।

१२—फिर आपने लिखा है "इस कथनमें उपवासोंके वर्णनका ऐसा तार बांधा गया है और इस बातकी ऐसी धुनि लगी है कि जिन पुरुषोंने उस ही भवसे मोक्ष प्राप्त की है उनके भी एक दो उपवास उस ही प्रकार वर्णन किये है जिस प्रकार अन्य साधारण पुरुषोंके; परंतु यह नहीं समझा कि मोक्षकी प्राप्तिके वास्ते एक दो उपवासोंसे क्या होता है। अर्थात् उन्होंने तो ऐसे ऐसे विचित्र तप किये होंगे और इस प्रकार ध्यानारूढ हुए होंगे कि जिसका वर्णन करनेके वास्ते शब्द भी नही मिल सकते हैं" यहां भी आपने खूब ही गहरा गोता खाया है। जिस प्रकार आपको लिखनेकी धुनि सवार हुई है वैसे ही आप यह भी समझते है कि ग्रंथ लिखनेवालोंको भी सवार हुई होगी। दुनियाँ सबको अपनासा समझती है। इसीलिये शायद बाबूसाहबने महर्षि जिनसेनके लिये भी ऐसे ही शब्दोंका प्रयोग किया है। परंतु अन्य शास्त्रोंकी तो बात जाने दीजिये। बाबूसाहब जिस आदिपुराणकी समीक्षा करने चले हैं वह भी शायद बाबूसाहबने अच्छी तरह पढ़ा भी नहीं है, फिर भला समझने और जाननेकी दूसरी बात है। इसी आदिपुराणमें भरतको दीक्षा लेनेके अंतर्मुहूर्त बाद ही केवलज्ञान होना लिखा है। परंतु बाबूसाहब फिर भी अपना ढाई ईंटका महल अलग ही चुना रहे है और लिख रहे हैं कि मोक्षकी प्राप्तिके वास्ते एक दो उपवाससे क्या होता है। क्या यह गहरा गोता खाना नहीं है और सरासर मिथ्या नहीं है। बाबूसाहब नहीं जानते हैं कि मोक्षके लिये शुक्लध्यानकी आवश्यकता है, उपवासादि तपश्चरण तो उसके बाह्य साधन मात्र है।

१३—फिर आप लिखते हैं—"इस कथनसे तो यह मालूम होता है मानों कथाकार उपवासकी महिमा दिखानेमें बिलकुल ही विह्वल हो रहा हो, तब ही तो श्रीमतीके पूर्वभवके कथनमें यहां तक कह दिया है कि फल इन उपवासोंका केवलज्ञान अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति है इसवास्ते इन उपवासोंके वास्ते स्वर्गकी प्राप्ति तो कुछ भी बात नहीं है" तो भी विना समझे ही लिखा है, क्योंकि जिस प्रकार संसारमें यह कहा जाता है कि मनुष्योंके लिये अन्न ही प्राण हैं अथवा तत्त्वार्थसूत्रमें हिंसादिको 'दुःखमेववा' इस सूत्रके अनुसार दुःख ही बतला दिया है उसी-प्रकार यहां उपवासोंका फल मोक्ष व केवलज्ञान बतलाया है। ऐसी जगहोंमें कारणमें अथवा कारणके कारणोंमें कार्यका उपचार किया जाता है। अन्न प्राणोंके लिये कारण है। दुःखके

कारण अशुभकर्म और उसके कारण हिंसादिक पाप हैं। इसी तरह केवलज्ञानका कारण शुक्लध्यान और शुक्लध्यानका कारण उपवासादि तपश्चरण है। परंतु बाबूसाहब इन बातोंको समझें तब न! वे तो अपनी धुनिमें इतने विह्वल हो रहे हैं कि वस्तुके यथार्थ स्वरूपको कहनेवाले महर्षि जिन-सेनको भी विह्वल लिख मारा है भला इस उन्मत्तताका भी कुछ ठिकाना है?

१४—फिर आपने फरमाया है "इस कथनमें कथाके तीनपात्रोंके पिताओंका वर्णन आया है, अर्थात् श्रीवर्माका पिता राजा श्रीधर, महीधरका पिता राजा वासव, और अजितंजयका पिता राजा जयवर्मा। तमाशा यह है कि तीनों ही पितोने दीक्षा ली, विशेष विशेष उपवास किये और तीनों ही मोक्ष गये; और इससे भी ज्यादा तमाशा यह है कि इन ही तीनों पात्रोंकी माताओंने अर्थात् श्रीवर्माकी माता मनोहराने, महीधरकी माता प्रभावतीने और अजितंजयकी माता सुप्रभाने विशेष विशेष उपवास किये और इन तीनों ही स्त्रियोंने स्त्रीपर्यायका नाश करके पुरुषपर्याय प्राप्त की गरज इस कथाके सब कथन टकसाली हैं। जहां सब रुपये पैसे सांचेमें ढलकर एक ही शक्लके निकलते हैं" यहां भी आपने वही मशल मशहूर की है कि बुढ़िया अपनी कानी आंखको नहीं देखती परंतु वह दूसरेकी फुलीको जरूर देखा करती है। बाबूसाहबको अपने घरकी बातें तो तमाशेके रूपमें नहीं दिखती परंतु ठीक वैसी ही बातें यदि दूसरी जगह हों तो आप तमाशा जियादा तमाशा आदि शब्दोंसे प्रगट किया करते हैं। वकील तो ठहरे और फिर हुई लिखनेकी धुनि सवार फिर भला कुछ भी तो लिखना चाहिये। तीनोके पिता दीक्षा लेकर विशेष उपवासकर मोक्ष गये तथा तीनोकी माताओने विशेष उपवास कर स्त्रीपर्यायका नाश किया यह तो आपको तमाशा दिखरहा है, परंतु देवबंदकी अपनी समीक्षक जोड़ीका आपको बिल्कुल तमाशा नजर नहीं आता जिसने धंधा, धंधाका छोड़ना, समीक्षा करना आदि सब काम साथ साथ किये हैं। क्या आप दोनों भी एक ही टकसालके ढले हुए हैं? क्या कोई भी बुद्धिमान् कर्मोंके उदय वा समयके सिवाय कोई और कारण इसका बता सकता है। परंतु बाबूसाहब कर्मसिद्धांतको समझें तब न! उन्हें तो ऊटपटांग लिखकर प्रसिद्ध होनेसे काम है।

१५—फिर आप लिखते हैं "अजितंजय चक्रवर्तीका नाम पिहितास्रव पड़ गया था यह बात हमारी समझमें नहीं आई। क्योंकि इस नामके पड़ जानेका कारण यह ही बताया जाता है कि भगवान्‌के दर्शन करनेसे उसके पापोंके आस्रव होनेके कारण दूर होगये थे। परंतु लोगोंको यह कैसे मालूम हो गया कि उसके पापोंके आस्रव होनेके कारण दूर होगये हैं जिससे वह इसको तबसे पिहितास्रव कहने लगे, इसके सिवाय ऊंचे दरजेके उन सब ही महात्माओंका नाम पिहितास्रव क्यों नहीं पड़ता है जिनके पापके आस्रव रुक जाते हैं।" यहां भी आपने अपनी अजानकारीका अच्छा परिचय दे डाला है। आप अभी यह भी नहीं समझते हैं कि किसीका अच्छा नाम प्रसिद्ध होनेमें उसके यशःकीर्ति नामकर्मका उदय कारण होता है। जिनके उस कर्मका प्रबल उदय होता है उनका नाम प्रसिद्ध होजाता है बाकीका नहीं। हम पूछते हैं कि भारतवर्षके लोग तिलकको ही क्यों लोकमान्य कहते हैं, क्या इससे यह सिद्ध होता है कि

लोक अन्य नेताओंका तिरस्कार करते हैं? या मानते नहीं? परंतु वास्तवमें ऐसा नहीं है। अन्य नेताओंका भी भारतवासी वैसा ही आदर-सत्कार करते हैं, उसी दृष्टिसे देखते हैं; परंतु नामकर्मके विशेष उदयके कारण लोकमान्य नाम उन्हींका पड़ गया है। इसी तरह अजितंजयका नाम भी पिहितास्रव पड़ गया। यदि आप कर्मोंकी उदय उदीर्णा आदिको अच्छी तरह जानते तो आपकी समझमें आ जाता, परंतु आप इन विषयोंको जानते ही नहीं फिर आपकी समझमें न आवे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। रही लोगोंको जाननेकी बात। सो प्रथम तो इस बातके जाननेके अवधिज्ञानी आदि बहुतसे साधन थे दूसरे जब वह भक्तिमें डूबकर एकाग्र चित्त हुआ होगा तब क्या लोगोंने नहीं देखा होगा? क्या एकाग्र चित्त होनेसे आस्रव रुक जाता है? वहांके लोग इतना भी नहीं जानते थे? बाबूसाहबको कुछ भी तो समझ बूझकर लिखना चाहिये था।

१६—आगे आपने लिखा है "अजितंजय चक्रवर्तीके कथनमें बताया गया है कि श्रीमतीके पूर्वभवके जीव निर्नामा नामकी बनियेकी लड़कीको जिस पिहितास्रव मुनिने उपदेश दिया था वह अजितंजय ही थे। कहीं इस जोड़ मिलानेके वास्ते तो अजितंजयका नाम पिहितास्रव न रखना पड़ा हो। यह बनियेकी लड़की ही तो कई भव पीछे श्रीमती हुई है जिसको यह कथा सुनाई जारही है" इसमें तो बाबूसाहबने नई खोजके साथ साथ बड़ी ही तीव्र और प्रखर बुद्धिका परिचय दिया है। आप लिखते हैं कि कहीं इस जोड़के मिलानेके लिये ही पिहितास्रव नाम रखना पड़ा हो। क्या यहांपर बाबूसाहबकी प्रखर बुद्धिमें यह भी नहीं आया कि यदि पिहितास्रव नाम न रखते अजितंजय ही नाम बना रहता तो निर्नामा लड़कीको जिन मुनिने उपदेश दिया था उनका नाम भी अजितंजय ही लिखा जाता, क्योंकि थे तो दोनों एक. फिर क्या जोड़ नष्ट होजाता? क्या अंतर पड़ जाता सो कुछ साफ बतलाया नहीं। क्या यह बाबूसाहबका लिखना बिल्कुल अबोध बच्चोंकी-सी बातें नहीं हैं जिनमें कुछ भी सार नहीं है? क्या ऐसी बिना कामकी निःसार और फिजूल बातें लिखकर समाजकी व्यर्थ ही शक्ति खर्च करना एक नामी वकीलके लिये हंसी कराना नहीं है? क्या इसके सिवाय और भी कोई शोककी बात हो सकती है?

१७—फिर आपने लिखा है। "श्रीवर्मा सोलहवें स्वर्गका इंद्र हुआ और उसकी माता दूसरे भवमें ललितांगदेव हुई। पूर्वस्नेहके कारण श्रीवर्माका जीव सोलहवें स्वर्गसे दूसरे स्वर्गमें गये और वहां अपनी माताके जीव ललितांगदेवकी पूजाभक्ति करके उसको सोलहवें स्वर्गमें लेआया। फिर अपनी माताकी इस प्रकारकी भक्तिमें वह यहां तक उन्मत्त हुआ कि अपनी माताके देव-पर्याय छोड़ देनेके पश्चात् इस दूसरे स्वर्गमें जो कोई भी ललितांगदेव हुआ उस ही की उसने पूजा की। सोलहवें स्वर्गके देवोंकी आयु बहुत ज्यादा होती है और दूसरे स्वर्गके देवोंकी बहुत कम। इस वास्ते 'जबतक श्रीवर्माका जीव सोलहवें स्वर्गका इंद्र रहा तबतक दूसरे स्वर्गमें एकके पीछे एक इस प्रकार बाईस ललितांग हुए, और उस इंद्रने इन सबकी पूजा भक्ति करी। परंतु ऐसा अद्भुत स्नेह व उन्मत्तता कभी किसीने भी न सुनी होगी कि उसकी माता जो एक बार ललि-

तांगदेव होगई थी उसके इस पर्यायको छोड़कर दूसरी पर्यायमें चले जानेपर भी जो कोई ललि-तांगदेव बनता रहे उसकी भी पूजाभक्ति उस ही प्रकार करता रहे जिस प्रकार अपने माताके जीवकी करी थी; अर्थात् सब ही ललितांगदेवको अपनी माताका जीव मानता रहे। बात यह है कि अपने पूर्वभवोंकी सारी कथा राजा वज्रदंत अपनी बेटी श्रीमतीको सुना रहा है। और वह अपनी इस कथासे श्रीमतीके पूर्वभवका भी संबंध मिलाना चाहता है। इस कथामें इस ही वज्र-दंतका जीव सोलहवें स्वर्गका इंद्र है और पूर्वभवमें श्रीमती दूसरे स्वर्गमें उस ललितांगदेवकी स्त्री थी जो २१ ललितांगदेवोंके पश्चात् सबसे अंतमें बाईसवां ललितांग हुआ है। इस अंतके ललितांगसे ही जोड़ मिलानेके वास्ते २२ ललितांगोंको पूजनेका कथन किया जाना मालूम होता है, परंतु चाहे कुछ ही मामला हो इतना अवश्य है कि जोड़ ठीक नहीं बैठा है और कथन बिल्कुल ही बेढंगा होगया है।" परंतु यह भी बाबूसाहबने बिना समझे ही लिखा है। खंडेलवाल आदि कई जातियोंमें अब भी यह कायदा है कि व्याहता लड़कीके मर जानेपर जंवाई जिस लड़कीसे वा जितनी लड़कियोंसे शादी करता है अर्थात् उसकी लड़कीकी जगह जितनी लड़कियां आती है उन सब लड़कियोंको पहिली मरी हुई लड़कीका पिता लड़की ही करके मानता है और उसी तरह उसे नेग चार दिया करता है। ऐसी हालतमें यदि सोलहवें स्वर्गके इंद्रने अपनी माताके जीवके स्थानमें होनेवाले ललितांगोंकी माताके जीवका स्थानापन्न समझकर पूजा की तो इसमें आश्चर्य क्या हुआ। हां आपने यह जो लिखा है कि वह सब ही ललितांगदेवको अपनी माताका जीव मानता रहा यह बिल्कुल मिथ्या और झूठ है। उसको वही मान लेना बात दूसरी है और स्थाना-पन्न मान लेना बात दूसरी है। जब संसारमें ऐसा रिवाज आज भी प्रचलित है तब फिर आपका यह लिखना कि ऐसा अद्भुत स्नेह व उन्मत्तता कभी किसीने न सुनी होगी बिल्कुल झूंठके सिवाय क्या हो सकता है। शोक है कि आपने एक वकील होकर अपने साधर्मी भाई खंडेल-वालों आदिमें रातदिन काममें आनीवाली रिवाजों सरीखे एक स्वर्गमें होनेवाले कामको उन्मत्तताके रूपमें लिख मारा है। इससे बढ़कर और अजानकारी क्या हो सकती है। सोलहवें स्वर्गके इंद्रकी आयु २२ सागरकी थी और ललितांगकी एक सागर। इस हिसाबसे उसकी उमरमें २२ ललितांग हुए ही होंगे। परंतु बाबूसाहबने इस जरासी गिनतीके हिसाबको भी 'जोड़ ठीक नहीं बैठा और बेढंगा होगया' आदि लिख मारा है। जोड़में कहां गलती है जिससे कि कथन बेढंगा होगया सो बाबूसाहबने भी दिखलाया नहीं है। क्योंकि जोड़ ठीक होनेपर तो बाबूसाहबने 'जोड़ ठीक नहीं बैठा' लिख ही मारा और यदि जरासी भी गलती होती तब तो बाबूसाहब जरूर ही बांसों उछलते, और फिर न जाने क्या क्या ऊटपटांग बकते।

१८—आगे चलकर आपने फिर बेजोड़ तुकबंदी मिलाई है। आप फरमाते हैं "इससे ज्यादा बेजोड़ तुकबंदी ब्रह्म और लांतव स्वर्गके इंद्रोंका सोलहवें स्वर्गके इंद्रसे श्रीयुगंधर तीर्थंक-रके चरित्रका पूछना है। क्योंकि सब ही देव अवधिज्ञानी होते हैं फिर इंद्रोंका तो कहना ही क्या है। श्रीतीर्थंकर भगवान्‌के कल्याणक इंद्र ही तो करते है और इंद्र ही भगवान्‌के दश

भव पूर्वका नाटक खेलते हैं तब क्या ब्रह्म और लांतव स्वर्गके इंद्रोंको भगवान्का इतना भी चरित्र माळूम नहीं था जितना कि सोलहवें स्वर्गके इंद्रने इस कथामे बताया; और अगर यह दोनों इंद्र कोई अद्भुत ही व्यक्ति थे, जिनको कुछ भी माळूम नहीं था तो उनको भगवान्का चरित्र और पूर्वभव सुननेके वास्ते श्रीभगवान्के समवसरणमें जाना ठीक था या सोलहवें स्वर्गके इंद्रके पास आना ? यह दोनों ही इंद्र कैसे ही भोले और अनजान हों परंतु श्री तीर्थंकर महाराजके समवसरण में तो यह पहिले हो ही आये थे। ऐसी दशामें इनको फिर एकबार समवसरणमें जाने और भगवान्का चरित्र माळूम करनेमें क्या झिझक हो सकती थी। साफ बात तो यह है कि यह कथन बिल्कुल ही अटकलपच्चू और बेजोड़ है।" शोकके साथ लिखना पड़ता है कि बाबूसाहब समझते तो कुछ नहीं हैं—मनमाना अभिप्राय गढ़कर केवल लोगोंको बहकाते है और ग्रंथकार महर्षि जिनसेनको अटकलपच्चू और बेजोड़ लिखनेवाले कहकर गालियां देते है। स्वर्गके देव सब अवधिज्ञानी होते हैं, फिर ब्रह्म और लांतव स्वर्गके इंद्र श्रीयुगंधर तीर्थंकरका चरित्र न जानते होंगे यह बात तो किसी तरह नहीं बन सकती है। वे अवश्य उनका चरित्र जानते थे। परंतु शोक है कि आपने फिर भी उनके लिये भोले और अनजान लिख ही दिया है। असल बात यह है कि बाबूसाहबको केवल इतना पूछ लेना चाहिये था कि तीर्थंकरका चरित्र जानते हुए भी उन्होंने क्यों पूछा। परंतु बाबूसाहबको निर्णयसे तो कुछ काम ही नहीं है। उन्हें तो उल्टी सीधी नाक पकड़कर धर्मात्मा और बड़े लोगोंको गालियां देना है। उनका यह काम जिस तरह होगा उसी तरह वे करेंगे। नहीं तो सीधी सी बात है। और बात भी वही है जो हम कई वार पीछे लिख चुके हैं अर्थात् सम्यक्त्वी देव लोग भोगोंका सेवन तो न्यायपूर्वक समयानुसार किया करते हैं बाकी समयमें वे धर्मचर्चा ही किया करते है तभी तो वे अंत समयमें भी धर्मसे च्युत नहीं होते। इसी नियमके अनुसार युगंधर तीर्थंकरका चरित्र जानते हुए भी केवल धर्मचर्चा और एक तीर्थंकरका चरित्र कह सुनकर समय बितानेके लिये ही उन्होने पूछा था और सोलहवें स्वर्गके इंद्रने कहा था। परंतु शोक है कि बाबूसाहबकी बुद्धि इससे बिल्कुल प्रतिकूल है। आप समझते हैं कि देव सदा भोगोंमें ही लगे रहते हैं आपकी ऐसी उल्टी समझके अनुसार ही तो सीधा और सच्चा प्राकृतिक कथन भी अटकलपच्चू और बेजोड़ जंचता हैं। परंतु इसमे आश्चर्यकी बात नही है पीलिया रोगवालेको सफेद चीजें भी पीली ही दिखतीं हैं।

१९—आगे चलकर आप फिर वही पुराना चरखा ले बैठे हैं आप लिखते हैं "वासुदेवकी निस्बत ऐसा लिखा है कि वह अवश्य नरक जाता है वह ख्वामख्वाहे तो नरक जाता ही नहीं होगा, बल्कि उसको अवश्य ही ऐसे महान् पाप करने पड़ते होंगे जिससे उसको नरक ही जाना पड़े ऐसी पापमयी पर्यायका निदान करना भी महान् पाप होना चाहिये। विकसितने

[१] सम्यक्त्वी देवोंके अवधिज्ञान होता है और मिथ्यादृष्टि देवोंके विभंगावधि। परंतु बाबूसाहबने सबका ही एक रस्सेमें बांधकर अवधिज्ञान लिख मारा है। यह आपके समीक्षकपनेकी जानकारी व महिमाका एक नमूना है।

वासुदेव होनेका निदान करके यह महान् पाप बांधा, और यदि वासुदेव नरक नहीं भी जाता है तो वैसे भी तो निदान करना मुनिके वास्ते महान् पापका कारण और मुनिपदको भ्रष्ट करना है । परंतु तौ भी जब इसका मित्र दसवें स्वर्ग गया तो यह भी पीछे पीछे हो लिया और उस ही स्वर्गमें पहुंचा । वहां जाकर इसके मित्रने इंद्रपद पाया तो इसने भी प्रतींद्रपदको जा दबाया तत्त्वार्थ ग्रंथोमें तो यह लिखा हुआ मिलता है कि अपने अपने भले बुरे परिणामोंसे ही प्रत्येक जीव आगामी पर्याय पाता है । परंतु कथाग्रंथोंमें बहुधा कर यह ही कथन मिलता है कि जहां एक जाय वहीं उसके साथी भी पहुंचे " प्रायः इन सबका उत्तर पीछे दिया जा चुका है । उसी-परसे पाठकगण सहजमें समझ सकते हैं कि बाबूसाहबका यह सब लिखना बिल्कुल ऊटपटांग है। यह हम पहिले लिख चुके हैं कि निदानसे मुनिपद भ्रष्ट नहीं होता, परंतु तौ भी बाबूसाहब तो अपना वही पुराना चरखा चलाये ही जारहे हैं । प्रतींद्रका पद जा दबाना भी तत्त्वार्थग्रंथोंके ही अनुसार है । आपको जो अंतर दिख रहा है वह केवल अजानकारी व बुद्धिका भ्रम है । क्योंकि तत्त्वार्थग्रंथोमें ही यह लिखा है कि जो जैसा तपश्चरण करेगा, जैसी आयुका बंध करेगा उसको वैसा ही फल मिलेगा; इसीलिये विकसितने जैसा तपश्चरण और जैसा आयुबंध किया था उसीके अनुसार उसका फल मिला आपका लिखा हुआ तो तब सत्य होता जब कि विकासितके जीवके नरकमें जानेपर उसका भाई प्रहसितका जीव भी नरक जाता, परंतु ग्रंथमें तो ठीक इसके प्रति-कूल लिखा है । पापोंके कारण विकसितका जीव (अतिबलका जीव) नरक गया और प्रहसित व महाबलका जीव स्वर्ग पहुंचा । इससे स्पष्ट सिद्ध है कि जो तत्त्वार्थग्रंथोंमें है वही कथाग्रंथोंमें है । परंतु तो भी बाबूसाहब पूर्वको ही पश्चिम मान रहे हैं ।

२०—फिर आपने लिखा है " विकसितने तो वासुदेव होनेका निदान किया था वह वासुदेव होनेसे पहिले दसवें स्वर्गमें क्यों गया । क्या इस ही बजहसे कि उसका मित्र जो दसवें स्वर्गमें गया था उसका साथ न छूट जावे । इस कथासे तो उसके दसवें स्वर्ग जानेका कारण मित्रताके निभानेके सिवाय और कुछ भी मालूम नहीं होता है और इस बातकी पुष्टि इससे और भी ज्यादा हो जाती है कि विकसित जब स्वर्गसे वापिस आकर अपने निदानके अनुसार वासुदेव हुआ तो उसके मित्रको उसका साथ निभानेके वास्ते ही उसका भाई होकर बलभद्र बनना पड़ा । बलभद्रके जीवने कोई निदान नहीं किया था, परंतु जब विकसितने स्वर्ग जानेमें उसका साथ दिया तो यहां उसको भी विकसितका साथ देना पड़ा । इस प्रकार इन कथाग्रंथोंनें जैनधर्मके कर्मसिद्धांतको जड़से उखाड़ फैंका है और प्रायः सब ही कथाओंमें एक जन्मके साथि-योंका कई कई जन्म तक साथ रहना कथन करके प्रीतिकी ही प्रबल शक्तिको दिखाया है और प्रेमकी ही महिमाके गीत गाये हैं । " यह सब भी बाबूसाहबने विना समझे बूझे ही लिखा है । क्योंकि विकसितका जीव जो दसवें स्वर्ग गया था वह अपने तपश्चरणसे होनेवाले शुभोपयोग द्वारा देव-आयुका बंध कर गया था जैसा कि कर्मसिद्धांतका सिद्धांत है । आपने जो इसके बदले मित्र-ताका निर्वाह करने और साथ न छूट जाय आदि बातें सिद्धांत विरुद्ध लिख मारी वह केवल लोगोंको

बहकानेके लिये लिखी है और लोगोंको धोखेमें डालनेके लिये ही आपने आगेकी बात लिखी है कि विकसितके वासुदेव होनेपर उसके मित्रको भी भाई बलभद्र बनना पड़ा। यदि जिनसेनाचार्यने इनकी मित्रताका निर्वाह होनेके लिये तथा साथ न छूट जानेके लिये उनका स्वांग दिखाया था जैसा कि आपने अपनी श्रीकलमसे लिखा है तो आगे भी उन्होंने ऐसा ही कथन क्यों नहीं किया। स्वांग तो ठहरा बदल देते। इन दोनोंको बलभद्र नारायण न बनाकर कोई और राजा बना देते और फिर सदाके लिये जुगल जोड़ी मिला देते। परंतु आचार्यने जैसा हुआ था वैसा ही लिखा है। आपके समान कर्मसिद्धांतपर लात नहीं मारी है, और न आपके समान कुछका कुछ लिखकर जैनसिद्धांतकी जड़ उखाड़ फेंकी है।

२१—आप फिर फरमाते है "विकसितके दसवें स्वर्ग जानेका दूसरा कारण यह भी माल्रूम होता है कि यद्यपि उसने निदान करके मुनिधर्मको भ्रष्ट किया था, परंतु उसने दो उपवास किये थे और समाधिमरण किया था, इस वास्ते उसको दसवें स्वर्ग जाना और सोलह वर्ष तक वहांके दिव्य भोग भोगना बहुत जरूरी होगया था।" यहां तो बाबूसाहबने झूंठ बोलनेकी मात्रा एकदम बढ़ा दी है। विकसितने दो व्रतोंके उपवास किये थे, आचाम्लवर्द्धनके सौ आचाम्ल, उनईस पारना, तथा सुदर्शनव्रतके चौवीस उपवास चौवीस पारना; परंतु बाबूसाहब लिखते हैं कि उसने दो उपवास किये थे। भला इस झूंठका कुछ ठिकाना है। इसी तरह सोलह सागरकी जगह आपने सोलह वर्ष ही लिख मारा है। शायद लिखते समय आप किसी सनकमें सवार होंगे, नहीं तो क्या एक नामी वकीलकी कलमसे इतनी बड़ी गलती हो सकती है। चाहे जो कुछ हो इतना अवश्य है कि बाबूसाहबको कुछका कुछ लिख देनेका अच्छा अभ्यास है। इसमें कोई किसी तरहका संदेह नहीं कर सकता। यह तो हम पहिले ही लिख चुके हैं कि निदानसे मुनिपद भ्रष्ट नहीं होता। बाबूसाहबके समान एक ही बातको बार बार लिखकर हम पाठकोंका समय व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहते। परंतु बाबूसाहबसे इतना अवश्य पूछ लेना चाहते है कि आपने जो यह लिख दिया है कि उपवास और समाधिमरण किया था इसलिये उसे दसवें स्वर्ग जाना बहुत जरूरी था, सो आपने किस दिव्यज्ञानसे जान लिया? क्या उपवास और समाधिमरण करनेवाले दसवें स्वर्ग ही जाते हैं? क्या आप बतलानेकी कृपा करेंगे? यदि नहीं तो आपका यह लिखना क्या मिथ्या व धोखा देनेवाला नहीं है?

२२—आप फिर लिखते है "विकसितको उसके निदानका फल क्यों मिला। यदि निदान पूरा ही हुआ करता है तो संसारी जीव तो सदा ही अनेक प्रकारकी इच्छा करते रहते है और निदान बांधते रहते है, परंतु उनके निदान न तो पूरे होते हैं और न पूरे हो ही सकते हैं; हां मुनिमें कोई ऐसी शक्ति हो जाय जिससे निदान करना मुनिधर्मके प्रतिकूल होनेपर भी उनका निदान पूरा होता हो तो दूसरी बात है। इस पुस्तकमें दो ही मनुष्योंके निदान करनेका कथन आया है, एक तो श्रीआदिनाथ भगवान्‌के सबसे पहिले भवके जीव जयवर्माने निदान किया था, और दूसरा यह विकसितने निदान किया है। दोनों ही मुनि थे और निदान भी दोनोंका ही पूरा हुआ है। इससे तो यही माल्रूम होता है कि मुनियोंका ही निदान पूरा होता है, परंतु क्यों पूरा

होता है इसका कुछ पता नहीं चला। हमारी समझमें तो निदानके पूरा होनेकी कथासे कुछ अच्छी शिक्षा नहीं मिलती बल्कि कुछ बुरा ही प्रभाव पड़ता है। और अगर गृहस्थियोंके भी निदान पूरे होते हैं तब तो बहुत ही बुरी शिक्षा मिलती है" सो भी ठीक नहीं लिखा है। क्योंकि इसकी सविस्तर परीक्षा हम पहिले लिख चुके हैं तथा दिखला चुके हैं कि जिनके तपश्चरणकी अचिंत्य शक्ति रहती है वे यदि निदान करें तो उनमेसे कभी किसीका पूरे पड़ जाता है। गृहस्थोंके कुछ शक्ति नहीं रहती इसलिये उनकी इच्छाएं पूरी नहीं होतीं तथा कभी किसी भाग्यवान् गृहस्थकी कोई इच्छा पूरी भी हो जाती है; परंतु यह सब कर्मोदयपर निर्भर है। निदानसे न तो कुछ बुरी शिक्षा मिलती है और न कुछ बुरा प्रभाव ही पड़ता है। इसको भी हम पहिले अच्छी तरह दिखला चुके हैं। जो अनुभवी गृहस्थ हैं वे तो इस बातको कभी स्वीकार नहीं कर सकते कि किसी भाग्यवान् गृहस्थकी इच्छा पूरी हो जानेसे कुछ बुरी शिक्षा मिलती हो, हां उसे देखकर लोगोंका पुण्यकर्म करनेकी ओर अवश्य उत्साह बढ़ता है। क्या बाबूसाहबकी समझ-शरीफमें पुण्यकर्म करनेकी ओर उत्साह बढ़ना ही बुरी शिक्षा है? और क्या यही बुरा प्रभाव है? क्या बाबूसाहब इस बातके सिद्ध करनेकी पैरवी कर सकते हैं?

२३- —आगे चलकर फिर आप लिखते हैं—"इस कथनमें शुरूसे अखीर तक जिस किसीका भी जिकर किया गया है वह स्त्री हो व पुरुष, गृहस्थी हो व मुनि सब ही के साथ एक व दो उपवास जरूर लगाये गये हैं; लेकिन इस कथनके सिवाय और कही भी उपवासोंका कथन इस प्रकार नहीं किया गया है। इस कथनके सिवाय अन्य कथनोंमें भी अनेकोंने दीक्षा लीं, अनेक स्त्रियां आर्यिका हुईं और अनेक गृहस्थियोंके धर्मसेवनका कथन हुआ; परंतु किसी कथनमें भी किसी विशेष उपवासका नाम नहीं लिखा गया, परंतु श्रीमती और वज्रदंतके भव वर्णनके कथनमें कोई व्यक्ति ऐसा नहीं रहा जिसके बाबत किसी विशेष उपवासका नाम न लिया गया हो। इस ही प्रकार राजा वज्रजंघके आहारदान देनेके कथनमें आहारदान और उसकी अनुमोदना करनेकी ही झड़ी लगा दी गई है। यहां तक कि पूर्वभव वर्णनमे भी आहारदान और पंचाश्चर्यका ही वर्णन और आगामीके वास्ते भी आहारदानके कारण पंचाश्चर्यका कथन। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि कथा बनानेवालेको जिस समय आहारदानके वर्णन करनेकी धुनि समाती है तो अगिली पिछली सब कथाएं आहारदानकी ही हो जाती है, और जब उपवास कथनकी धुन आती है तो सब विशेष प्रकारके ही उपवास करने लग जाते हैं" परंतु बाबूसाहबका लिखना एक प्रलापकी धुनके सिवाय और कुछ नहीं है। बंगालमें अभी एक आठ दश वर्षका लड़का मौजूद है जो विना सीखे ही पांच वर्षकी उमरसे अच्छा गाने लगा है। इससे यह तो अवश्य मानना पड़ता है कि संस्कारोंका असर जन्मजन्मांतर तक रहता है। इसी तरह जिसे दान देनेका अभ्यास है उसका संस्कार उसके आगेके जन्मोंमें भी रहता है और जिसे अनेक उपवासोंका व अन्य किसी तपश्चरणका अथवा झूठ जालसाजी आदि पापोंका अभ्यास रहता है उसका संस्कार भी आगेके जन्ममें पाया जाता है। यदि यह बात न होती दो सगे भाइयोंमें एकसी सुहबत आदिके रहते हुए भी जुदे जुदे स्वभाव नहीं होते। परंतु संसारमें ऐसे हजारों उदाहरण देखे जाते हैं।

यह प्राकृतिक नियम है, और वही आचार्योंने लिखा है। परंतु शोक है कि बाबूसाहबने इन सब बातोंके विना समझे बूझे अथवा केवल लोगोंको बहकानेके लिये अथवा खास जैनियोंका जी दुखानेके लिये लिख मारा है कि, कथा बनानेवालेको जैसी धुन समाती है अगिली पिछली सब कथाएं वैसी ही बन जाती हैं, अर्थात् इन धर्मशास्त्रोंकी सब कथाएं झूठी हैं। क्या यह लोगोंको बहकाना नहीं है अथवा धर्मशास्त्रोंको झूठा कह कर लोगोंका जी दुखाना नहीं है? क्या एक वकील-के लिये यह काम शोभा देता है, और समुचित जान पड़ता है?

२४—आगे चलकर तो आपने बड़ी ही तत्वज्ञानकी बात लिख मारी है। आप लिखते हैं "अगर वज्रजंघ और श्रीमतीको जातिस्मरण न होता तो वह मुनिराजकी बोली ही न समझ सकती और अगर मुनिराज भोगभूमिकी ही बोलीमें उपदेश देते तो उनके लिये सम्यग्दर्शनका उपदेश देना असंभव हो जाता, क्योंकि भोगभूमियां विचारे संसारकी बहुत ही थोड़ी बातोंको जानते हैं यहां तक कि जब उनको सूरज चांद और तारे दीखने लगते हैं तो बड़ा आश्चर्य करते हैं और डरते हैं और जब वह पुत्रके पैदा होनेके पीछे तक भी जिंदा रहने लगते हैं तो पुत्रको देखकर महान् आश्चर्य करते हैं कि यह क्या वस्तु है। ऐसी दशामें वह विचारे आत्मा और उसकी विशुद्धताको क्या समझ सकते हैं, और इस कथनको समझनेके वास्ते उनकी भाषामें शब्द ही कहांसे हो सकते हैं" इसमें आपने तत्वज्ञानकी बड़ी खोजकी बात यह लिखी है कि 'अगर वज्रजंघ और श्रीम-तीको जातिस्मरण न होता तो वह मुनिराजकी बोली ही न समझ सकते' मानो जातिस्मरणके साथ उन्हें उन मुनिकी देशभाषाका ज्ञान होगया। यह कैसी अच्छी खोज है। यदि आज इस खोजका परखैया कोई होता तो कुछ न कुछ इनाम आपको जरूर देता। शायद यह खोज आपने अपने किसी दिव्यज्ञानसे ही की होगी। क्योंकि इस लेखपरसे मालूम होता है कि बाबू साहबको यह भी ज्ञान नहीं है कि जातिस्मरणका काम भिन्न है और भाषाका ज्ञान होना बात दूसरी है। आचार्योंने स्मरणका लक्षण इस प्रकार लिखा है 'संस्कारोद्बोधनिबंधना तदित्याकारा स्मृतिः' अर्थात् संस्कारपूर्वक ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला जो 'वह' इस प्रकारका ज्ञान है उसे स्मृति व स्मरण कहते हैं और भाषाज्ञान इससे बिल्कुल अलग चीज है। भाषाज्ञानसे और जातिस्मरणसे कोई संबंध नहीं है, और न स्मरण होनेसे पहिले जन्मका भाषाका ज्ञान हो ही जाता है।

इसमें बाबूसाहबने जो कुछ लिखा है वह सब प्रायः पुराना गीत है और पहिले सबकी परीक्षा लिखी जाचुकी है। इसमें बाबूसाहबने उसी विषयको जड़से उखाड़ फैंकना चाहा है जिसको कि वे कुछ दिन पहिले पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी टीकामें लिख चुके हैं। यह हम पहिले दिखला चुके हैं कि त्यागी वैरागियोंको स्वर्गमें ढकेलनेवाला या भोगोंमें फंसा देनेवाला कर्ता व कोई ईश्वर किसी भी जैनशास्त्रमें नहीं लिखा है, शायद बाबूसाहब भले ही ऐसा मानते होंगे; जैन शास्त्रोंमें तो कर्मोंका उदय व क्षयोपशम आदि जिस जीवका जैसा होता है उसको उसीके अनुसार फल मिला करता है; जो स्वर्गके कर्म बांधेगा उसे वहां जाना ही पड़ेगा, और जो ठगी झूठ आदि पाप कर नरकके कर्म बांधेगा उसे नरकमें जाना ही पड़ेगा। इसमें आप और हम कर ही क्या सकते हैं। अच्छा तो तब होता जबकि बाबूसाहब इस तरह स्वर्गमें ढकेलनेवाले और देवांगनाएं

पीछे लगा देनेवालेका नाम प्रगट कर देते और यदि उसपर मुकद्दमा चलाकर सजा कराकर यह मार्ग ही बंद कर देते तो और अच्छा था। परंतु प्रश्न यह है कि क्या बाबूसाहब ऐसा कर सकते हैं?

आगे आपने यह जो लिखा है "कि वहां पहुंचनेपर पहिले तो बड़ा कष्ट होता होगा" आदि सो भी मिथ्या ही है। क्योंकि कर्मोदयके कारण जीव जिस पर्यायमें जाता है उसीमें रम जाता है। मोहनीय कर्मके उदयका स्वभाव ही ऐसा ही है। क्या इसको आप बदल सकते हैं? रही मरनेके समय कष्टकी बात, सो समाधिमरण धारण कर शरीरसे ममत्व छोड़ देनेवालोंके सिवाय सब ही संसारी जीवोंके होता है। जीवकी वैभाविक शक्तिका स्वभाव ही ऐसा है। इसमें आपने खोज क्या की? अफसोस है कि आपने अपना समय व्यर्थ ही खोया है।

आगे चलकर आपने स्वर्गमें जानेवाले धर्मात्माओंका जेलमें जबर्दस्ती ठेले गये मुनियोंके साथ मिलान मिलाया है। परंतु इसमें भी आपने खूब ही धोखा खाया है अथवा लोगोंको धोखा दिया है। क्योंकि यह मिलान बिल्कुल विषम है। धर्मात्मा लोग जो स्वर्ग जाते हैं वे अपने परिणामोंके अनुसार कर्मोंको बंधकर जाते हैं। उनके जैसे कर्म बंधते हैं वैसी ही पर्याय उन्हें मिलती है। और फिर उस पर्याय संबंधी कृत्य सब उनके लिये स्वतंत्र होते हैं। जैसे हम लोग मनुष्य पर्याय पाकर खाना पीना ओढ़ना पहरना चलना फिरना बैठना उठना व्यापार करना आदि सब स्वतंत्रतापूर्वक करते हैं। इसी स्वतंत्रता और उच्छृंखलताके आधारपर आपने भी धर्मकी जड़ उखाड़नेवाली तथा सब जैनियोंका जी दुखानेवाली यह समीक्षा लिखी है। परंतु आपकी ओरसे किसी अन्यायी राजाके द्वारा जेलमें ठेले गये मुनि लोग आपके लिखे अनुसार ही स्वतंत्रता धारण नहीं कर सकते। उन बेचारोंको तो जबर्दस्ती कुटपिटकर भोग भोगने पड़ेंगे या जो आपकी सलाह माननेवाला कोई अन्यायी फर्जी राजा करावेगा वह सब काम करना पड़ेगा। ऐसी हालतमें स्वतंत्रतापूर्वक सब काम करनेवाले स्वर्गमें पहुंचे हुए धर्मात्माओंके जीव सब तरहसे परतंत्र रहनेवाले परतंत्र काम करनेवाले जेली मुनियोंके समान कैसे हो सकते हैं? क्या कोई भी बुद्धिमान स्वतंत्र और परतंत्रोंको एकसा कह सकता है? शोक है कि बाबूसाहबने ऐसी ही अटकलपच्चू और बेतुकी बातें लिखकर लोगोंको धोखा दिया है, और उन्हें बहकानेके ही लिये लिख मारा है कि कथा सुननेवालोंपर बहुत बुरा असर पड़ता है। जनाब, कुछका कुछ लिखकर बुरा असर तो आप डाल रहे हैं, परंतु आचार्योंने तो अच्छे काम करने और बुरे कामोंके छुड़ानेका ही सदा उपदेश दिया है। परंतु जिस प्रकार कड़वी तूंबीमें रक्खा हुआ स्वाभाविक मीठा दूध भी पात्रके संसर्गसे कड़वा हो जाता है उसी प्रकार उन आचार्योंका सदुपदेश आपकी अजानकारीसे या आपके बुद्धिभ्रमसे आपको भी प्रतिकूल ही प्रतिभासित होता है। परंतु यह भी किसी मिथ्यात्व कर्मके प्रबल उदयका कार्य है इसलिये उसके प्रबल उदय रहने तक अनिवार्य है। हम भगवान् शांतिनाथसे प्रार्थना करते हैं कि यह उनका मिथ्यात्वका प्रबल उदय शांत हो। वे शीघ्र ही आत्मकल्याणमें लगें और आत्मकल्याण करते हुए समाजका भी कुछ उपकार करें। इति भद्रम्।

आदिपुराणका अवलोकन।

मद्यपान निराकरण।

जैन समाज बाबू सूरजभानजीसे अपरिचित न होगी। आपने आदिपुराणका अवलोकन करके उसमेंसे कई उत्तम उत्तम साररत्नोंकी अन्वेषणा की है जिनमें एक मद्यपान रत्न भी है। जिसपर विचार करनेका मुझे भी आज अवसर प्राप्त हुआ है। क्या जिस मद्यसे बाबूसाहबका तात्पर्य है उसी मद्यका वास्तवमें आचार्य महाराजने अपने आर्ष ग्रन्थमें कथन किया है? इस प्रश्नका उत्तर बाबूसाहब व उनके अनुयायी यही देंगे कि हां। परन्तु यदि अपनी विपरीत बुद्धिको एक कोनेमें रखकर शांत स्थिर भावोंसे विचार करेंगे तो यह उत्तर खुदको असत् मालूम पड़ेगा। बाबूसाहब यदि जैन ग्रंथोंमें भक्ति रखते हुए उनका स्वाध्याय करते तो उन्हें ऊटपटांग लिखनेका मौका न आता। इन लेखोंसे यह भी जान पड़ता है कि बाबू साहबने इस ग्रन्थका अच्छी तरह अवलोकन नहीं किया है। इसीका यह फल है कि बाबूसाहबको ऐसे विषयोंमे नियोग देना पड़ा; या यों कहना चाहिए कि बाबूसाहब आजकल किसी अद्भुत रंगमें रंगे हुए हैं जिन्हें सर्व भारत भर पीला दिखलाई दे रहा है। अस्तु अब हम अपने प्रकृत विषयकी ओर झुकते हैं—

देखिए आचार्य महाराज मद्याङ्ग जातिके वृक्षोंके विषयमें क्या लिख रहे है—

> मद्याङ्गा मधुमैरेयसीध्वरिष्टासवादिकान्।
> रसभेदांस्तथामोदान् वितरन्त्यमृतोपमान्॥ ३७॥ पर्व ॥ ९॥

अर्थात् मद्याङ्ग जातिके वृक्ष अमृतके समान मीठे और जिनकी सुगन्धि चारों ओर फैल रही है ऐसे मधु, मैरेय, सीधु, अरिष्ट और आसव आदि अनेक प्रकारके रसके भेदोंको देते हैं।

इस श्लोकमें मधु और आसव ये दो शब्द आये हैं जो एक प्रकारके उत्तम रसके भेद बतलाये गये हैं। सारांश कि मधु आदि एक उत्तम रस हैं जिनमें मद्यका उपचार किया गया। अतः ये उपचारसे मद्य हैं, वास्तवमें मद्य नहीं हैं; अन्यथा भोगभूमिके जीव इनका सेवन कैसे कर सकते थे। इस प्रसङ्गका एक श्लोक देखिए—

> कामोद्दीपनसाधर्म्यान्मद्यमित्युपचर्यते।
> तारवो रसभेदोऽयं यः सेव्यो भोगभूमिजैः॥ ३८॥

अर्थात् जैसे मद्यमें कामोद्दीपन धर्म रहता है वैसे ही इन रसोंमें भी कामोद्दीपन धर्म रहता है, इसलिए इनमें मद्यका केवल एक धर्म रहनेसे उपचारसे इन रसोंको मद्य कहते हैं; वास्तवमें तो ये वृक्षोंके एक प्रकारके रस हैं जिन्हें भोगभूमिमें उत्पन्न हुए आर्य लोग सेवन करते हैं।

इन दोनों श्लोकोंसे इस बातका पता लगता है कि मधु आसव आदि एक प्रकारके उत्तम रस होते हैं। केवल कामोद्दीपनके कारण इनमें मद्यका उपचार है। उपचार मात्रसे वस्तु जिसका उपचार किया जाय वह नहीं हो जाती है, अन्यथा लकड़ीके सम्बन्धसे पुरुषको भी उपचारसे लड़की कह देते हैं तो वह भी वास्तवमें लकड़ी हो जावेगा या माणवकमें क्रूरता शूरता धर्मोंको देखकर सिंहका उपचार करते हैं तो वह वास्तविकमें सिंह कहलाने लगेगा। इस उपचार धर्मको न्यायशास्त्रके वेत्ता पुरुष अच्छी तरह समझ सकते हैं। उपचार भी किसी निमित्त व

प्रयोजनको लेकर किया जाता है । वह भी उसके किसी एक धर्मका न कि सभी धर्मोंका, नहीं तो वह उपचार नहीं कहा जा सकता ।

जो वास्तविक मद्य है उसका त्याग इसी प्रकरणमे स्वयं आचार्य महाराजने कराया है । इससे भी पता चलता है कि ये रस है मद्य नहीं ।

वह श्लोक यह है—

मदस्य करणं मद्यं पानशौण्डैर्यदादृतम् ।
तद्वर्जनीयमार्याणामन्तःकरणमोहदम् ॥ ३९ ॥

अर्थात्—उन्मत्त पुरुष मद उत्पन्न करनेवाले और अन्तःकरणको मोहित करनेवाले जिस मद्यका पान करते है वह मद्य आर्य पुरुषोंके लिए सर्वथा त्याग करने योग्य है ।

पाठकगण जान गये होंगे कि आचार्य महाराजका आशय मधु आसव आदि शब्दोंसे शराबका नहीं है ।

कोपकारोने भी इन शब्दोके अनेक अर्थ किये है । किसी २ ने इनको मद्य सामान्यसे कहा है, जैसे—"मैरेयमासवः सीधुः" इत्यादि अमरकोष अर्थात्—मैरेय, आसव और सीधु ये मद्य सामान्यके नाम हैं । सामान्य वस्तु अनेकमे रहती है, एकमे नहीं । अतः ये सर्वथा मद्य नहीं है । किसी २ ने इनको जुदा जुदा भी लिखा है । जैसे—

सीधुरिक्षुरसैः पक्वैरपक्वैरासवो भवेत् ।
मैरेयं धातकीपुष्पगुडधानाम्लसम्भवम् ॥

अर्थात्—गन्नेके पके हुए रससे सीधु, कच्चेसे आसव और धातकी आदिकसे मैरेय बनता है ।

विश्वलोचन कोषके प्रणेता श्री श्रीधरसेनाचार्यने मधु शब्दके अनेक अर्थ किये है । जैसे कि—

मधु-पुष्परसे क्षौद्रे मद्यक्षीराप्सु न द्वयोः ।
मधुर्मधूके सुरभौ चैत्रे दैत्यान्तरे पुमान् ॥
जीवाशाके स्त्रियामेव मधुशब्दः प्रयुज्यते ।

अर्थात्—पुष्परस, क्षौद्र, मद्य, दूध जल, महुवावृक्ष, वसन्तऋतु, चैत्रमास, दैत्य, और जीवाशाक (जीवन्ती आदि) मे मधु शब्दका प्रयोग किया जाता है ।

शब्दस्तोमके प्रणेताने भी किसी प्रसिद्ध ग्रन्थका उदाहरण देकर मद्य शब्दके बारह अर्थ किये है । इस प्रसंगका भी डेढ श्लोक देखिए—

माध्वीकं पानसं द्राक्षं खार्जूरं तालमैक्षवम् ।
मैरेयं माक्षिकं टाङ्कं मधूकं नालिकेरजम् ॥
मुख्यमन्नविकारोत्थं मद्यानि द्वादशैव तु ।

अर्थात्— मधु पुष्पका रस, पनस (कटहल)का रस, किसमिसका रस, खजूरका रस, तालवृक्षका रस, गन्नेका रस, नारियलका रस, (पानी), मैरेय, शहद, टाङ्क, महुवा-वृक्ष और अन्नके विकारसे उत्पन्न हुआ रस, ये बारह सामान्यसे मद्य शब्दसे कहे जाते है ।

१ दर्प (अहंकार)

कवि शिरोमणि धनञ्जयने मधुको मद्यादिकसे जुदा ही कहा है–

पराग मधु किञ्जल्कं मकरन्दं च कौसुमम्॥ १५२॥

अर्थात्—पराग, मधु, किञ्जल्क, मकरन्द और कौसुभ ये पराग–मधुके नाम हैं।

इन उपर्युक्त प्रमाणोंसे जान पड़ता है कि मधु, मद्य, मदिरा और आसव शब्दोंके अनेक अर्थ होते हैं। इन शब्दोंका अर्थ महुवा आदिको सड़ाकर जो शराब बनाई जाती है वही हो यह निश्चय उक्त प्रमाणोंसे नहीं होता। हां इससे भिन्न अनेक अर्थोंका निश्चय तो अवश्य होता है। संसारमें कई शब्द ऐसे देखे जाते हैं जिनके वाच्य पदार्थ अनेक होते है, जैसे एक गो शब्द दिशा, पृथिवी, वाणी, गाय इत्यादि ग्यारह अर्थोंमें पाया जाता है वैसे ही ये मधु आदिक शब्द भी अनेक अर्थोंमे पाये जाते है। यदि यह नियम किया जाय कि मधु शब्दसे शराब ही कहा जाता है, क्योंकि मधु शब्द है, तो यह भी कहना पड़ेगा कि मनुष्योंकी वाणी सींगवाली होती है, क्योंकि इसका नाम गो है। यदि यहां विलक्षणता स्वीकार करोगे तो मधु शब्दमें भी विलक्षणता माननी पड़ेगी। इसी तरह कितने ही वाक्योंके भी अनेक अर्थ देखनेमें आते हैं, जैसे सैन्धवं। आनय, श्वेतो धावति, इत्यादि, इन दोनों वाक्योंमें सैंधव और श्वेत ऐसे दो पद हैं। सैन्धवका अर्थ नमक और घोड़ा है और श्वेतका सफेद है। श्वा इतः ऐसा पदच्छेद करनेसे श्वा नाम कुत्तेका और इतः नाम यहांसेका होता है। पहले वाक्यका अर्थ नमक लाओ या घोड़ा लाओ होता है, और दूसरेका सफेद कपड़ेवाला दौड़ता है या कुत्ता यहांसे दौड़ता है। यदि कोई पुरुष भोजन करते समय कहे कि 'सैन्धवं–आनय' तो इस समय इसका अर्थ नमक लाना करना पड़ेगा, यह नहीं कि उस समय नमकके बदले घोड़ा लाकर खड़ा कर दिया जावे या जिस समय कोई कहीं जानेके लिए तैयार है उस समय उसीका अर्थ घोड़ा लाना किया जावेगा, न कि नमक लाना। यदि यहां ऐसा कहा जावे कि शब्दोंके अनेक अर्थ होते हुए भी प्रकरणके अनुसार जैसा चाहिए वैसा किया जायगा, यह कहना तो हमारे ही कहनेकी स्तुति करना है। हमारा भी यही तात्पर्य है कि प्रकरण व द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार भी शब्दोंके अर्थ होते हैं। जब कि जिस समय तृतीय कालका अंत था और चतुर्थ कालकी आदि थी उस समयके उत्तम कुलीन सत्युगी मनुष्य ऐसी अपवित्र शराबका पान करें यह संभव नहीं हो सकता, तो षट्खंडके अधिपति पूर्ण जिनोपासक महाराज भरत चक्रवर्तीकी पट्टरानी इसका पान करे यह कैसे सम्भव हो सकता है? इससे स्पष्ट हुआ कि उस समयके वर्णनमें आये हुए मधु आसव आदि शब्दोंका अर्थ शराब नहीं है। जब मामूली मनुष्योंके हृदयमें भी यह बात अखरती है तो सकल चारित्रवान संसारी जीवोंके कल्याणमें निरत कवि शिरोमणि जिनसेनाचार्यके हृदयमें क्यों न अखरेगी। अतः निश्चित होता है कि इन शब्दोंका अर्थ आचार्य महाराजके अभिप्रायसे शराब नहीं है, एक प्रकारके रस ही हैं जो प्रायः उत्तम कुलीन गृहस्थोंके सेवन करनेमें आते हैं। जैसे दाखका रस, गन्नेका रस, नारियलका रस (पानी), तालवृक्षका रस दूध और शक्करसे बना हुआ पौष्टिक रस, विशेष इन्हींको मधु मदिरा और आसव आदि शब्दोंसे कहते हैं। ये रस पौष्टिक और पवित्र होते हैं। अतः इनका पान किया जाता था और किया जाता है। आप इस बातको

स्वीकार करेंगे कि पौष्टिक चीजें कामोद्दीपन करनेवाली होती हैं और कामके आवेगसे नेत्र लाल हो जाते है, चाल डगमगाने लगती है। जिन्हे इस विषयमें भ्रम हो उन्हें कवियोंके उत्तम साहित्य व नाटक ग्रंथोको देखना चाहिये तथा जिन महाशयोंको इनकी पवित्रतामें संदेह हो वे भी वैद्यक ग्रंथोंका अवलोकन करनेका परिश्रम करें।

खेद तो इस बातका है कि जब लेखक स्वयं प्रश्न कर रहा है कि उनको यह शराब उस समय कहांसे मिलती थी, किसने बनाना सिखाया था फिर भी उस समयके वर्णनमें शराब ही अर्थ कर रहा है। इस प्रकार पूर्वापर विरुद्धका लेखकने कुछ भी खयाल न रक्खा। क्या इसका लेखक उत्तर देंगे कि यह जैन शास्त्रोंकी समीक्षा करना और अपनी बेतुकी हांकना आपको किसने सिखलाया ?

अब हम उन श्लोकोंके अर्थोंपर कुछ परामर्श करना उचित समझते है जिनका शब्द मात्रके अभेदसे अपने अनुकूल विपरीत अर्थकी कल्पना की है।

> नेत्रैर्मधुमदाताम्रैरिन्दीवरदलायतैः।
> मदनस्येव जैत्रास्त्रैः सालसापाङ्गवीक्षितैः।

अर्थात् उन विद्याधरियोने पौष्टिकरसोंका पान किया था जिससे उन्हे कामोद्दीपन हो आया था और उस कामोद्दीपनसे जनित भ्रम प्रेम-रागसे उनके नेत्र कुछ लाल हो रहे थे, कमलपत्रोंके समान विशाल थे, आलसके साथ कटाक्ष फेंकते थे और ऐसे जान पड़ते थे मानों कामदेवके विजयी शस्त्र हों।

इस श्लोकमें जो "मधुमदाताम्र" शब्द आया है। उसका समास "मधुना पौष्टिकरसविशेषेण यो मदः मदरागः 'कार्यकारणभावयोरभेदेन निर्देशः' तेन आताम्राणि तैः" होता है। इस समासमें कविने कार्यकारण भावमें अभेद मानकर मदरागके स्थानमें मदका प्रयोग किया है, अर्थात् मद—कारणमें राग—कार्यका अभेद रक्खा है। इसलिये इन शब्दोंका उपयुक्त अर्थ करना अनुचित नही है, परन्तु ग्रन्थकारके आशयको समझे विना शराबके नशेसे लाल हुए नेत्र यह अर्थ करना अवश्य ही अनुचित है।

बाबू साहब लिखते है "मालूम नहीं कर्मभूमिकी आदिमें उन विद्याधरियोंको यह शराब कहांसे मिलती थी, कौन इसे बनाता था, उन्होंने किससे बनाना सीखा था और क्यो वे इसका पीना अनुचित नहीं समझती थीं" इसका उत्तर इस समय इतना ही उचित होगा कि जब कर्मभूमिकी आदि थी तब उन्हें यह शराब मिलती ही नहीं थी; उत्तम २ रस उन्हें मिलते थे, जिनका मिलना उस समय दुर्लभ नहीं था; हां आजकल इनका मिलना अवश्य ही दुर्लभ है। इस समय जो लोग शराब बनाते है उसका बनाना इन्होंने किससे सीखा था इसकी आदि कृपा करके बतावें तथा जिस किसीको इसका आदि बनानेवाला मानेंगे तो उसको भी किसने बतलाया था ? यदि जैनागमका आश्रय स्वीकार करेंगे तो उन बातोंका भी पता अवश्य लग जायगा। अतः बाबूसाहबकी ये उपर्युक्त शंकायें बिलकुल बे-शिरपैरकी हैं।

पर्व १९ वे के ९५ वां श्लोकमें आये हुए "मुखासवसेचनकैः" का अर्थ भी मुखमें भरी हुई शरावके कुरले नहीं है, किन्तु मुखमे भरे हुए नारियल आदिके रसके कुरले है। इन्हीं रसोंके स्थानमे आसव शब्द आया है। एक पदार्थके वाचक अनेक शब्द होवे है। कवि अपनी इच्छानुसार चाहे जिस शब्दका प्रयोग कर सकता है।

आगे चलकर बाबूसाहबने भरत चक्रवर्तीकी सेनाके विषयमे भी बड़ीभारी तर्क की है। वे श्लोक ये हैं—

निपपे नालिकेराणां तरुणानां स्रुतो रसः।
सरस्तीरतरुच्छायाविश्रांतैरस्य सैनिकैः।

अर्थात्—सरोवरके किनारे वृक्षोंकी छायामे आराम करनेवाले सैनिकोने नारियलके तरुण वृक्षोंसे बहते हुए रसको पिया।

नारियलका रस एक प्रकारकी शराब ही है। इस बातकी पुष्टि इसी पर्वके नीचे श्लोकसे होती है।

नालिकेरासवैर्मत्ता किंचिदाघूर्णितेक्षणाः।
यशोस्य जगुरामन्द्रकुहरं सिंहलांगनाः॥

अर्थात्—सिंहलद्वीपकी तरुण स्त्रियां जो नारियलकी शराब पीकर उन्मत्त हो रही थी इस कारण जिनके नेत्र कुछ २ घूम रहे थे, भरतका यशोगान कर रही थी।

उपर्युक्त दोनों श्लोक शराबकी पुष्टिमे बाबूसाहबने दिये है। परन्तु खेद इस बातका है कि दूसरे श्लोकके आसव शब्दको देखकर प्रथम श्लोकके रस शब्दका अर्थ अपनी इच्छानुकूल शराब तो करते हैं, किंतु आसव शब्दका अर्थ पहले श्लोकके रस शब्दके अनुसार रस नही करते। करे क्यां आपकी दृष्टिमे तो केवल शराब ही झलक रही है!

देखिए नारियलका आसव एक प्रकारका रस होता है, जिसकी पुष्टि इसी पर्वके नीचे लिखे श्लोकोंसे होती है—

पनसानि मृदून्यंतः कंटकीनि बहिस्त्वचि।
सुरसान्यमृतानीव जनाः प्रादन् यथेप्सितम्॥ १८॥
नालिकेररसः पानं पनसान्यशनं परम्।
मरीचान्युपदंशश्च वन्या वृत्तिरहो सुखम्॥ १९॥

अर्थात्—जो भीतर अत्यन्त कोमल है और जिनके बाहरके छिलकोपर कांटे लगे हुए है—अमृतके समान अत्यन्त ही मीठे कटहलके फलोको भरत महाराजकी सेनाके मनुष्योंने अपनी इच्छानुसार खाया। अहा! जहा पीनेको नारियलका रस, खानेको कटहलके फल और चटनी आदिके लिए मिरचे मिलती है ऐसे वनमे रहना भी अत्यन्त सुख देनेवाला है।

१९ वे श्लोकमे "नालिकेर रस" आया है, जो आसव शब्दका अर्थ रस कह रहा है।

कविकी कवितामें नालिकेरासव और नालिकेररस ये दोनों शब्द आये हैं जिनमें रस शब्दका अर्थ तो आसव–शराब किया जाय और आसव शब्दका अर्थ रस–पानी न किया जाय इसमें पक्षपात–हठके सिवाय अन्य कारण नहीं माऌम देता।

आगे चलकर बाबूसाहब लिखते हैं कि "भरतकी सेनाके लोग क्षत्रिय वर्णके थे जो उस समयका उत्तम वर्ण गिना जाता था, माऌम नही उन्होंने इस उन्मादक रसका पीना क्यों स्वीकार किया, इत्यादि" आपका यह लिखना कितना भ्रमपूर्ण है। क्या पवित्र रसको उत्तम वर्णवाला नहीं पी सकता? यदि पी सकता है तो उनके पीनेमें क्या हानि हुई? उन्होंने इस रसको राहकी थकनको दूर करनेके लिए पीया था। यह केवल उन्मादक ही नहीं था पौष्टिक और पवित्र भी था जिसका पीना ये अनुचित नहीं समझते थे।

देखिए इस रसके विषयमें आचार्य वीरनन्दी क्या लिखते हैं—

ते पीत्वा प्रहरणधारिणामरीणामायुर्भिः सह शुचिनालिकेरनीरम्।
वेलांतवर्णविवरेषु तस्य योधाः कंकोलानिलविहतश्रमा ववल्गुः॥ ३१॥ १६॥

अर्थात्—राजा महासेनके सैनिक शस्त्रधारी शत्रुओंकी आयुके साथ २ पवित्र नारियलका पानी पीकर समुद्र तटके अन्तर्गत वनोंमें कंकोलवृक्षोंकी हवासे राहकी थकनको दूर करते हुए टहलने लगे।

इस श्लोकमें 'शुचिनालिकेरनीरं' शब्द आया है, जिसका अर्थ पवित्र नारियलका पानी होता है और रसके बदले कविने पानी शब्द दिया है। यह रस पवित्र होता है जिसके लिए शुचि विशेषण भी दिया है।

इसी प्रकार नीचे लिखे श्लोकोंका भी दूसरा अर्थ होता है—

नास्वादि मदिरा स्वैरं नाजघ्रे न करेऽर्पिता।
केवलं मदनावेशात्तरुण्यो भेजुरुत्कताम्।
उत्संगसंगिनो भर्तुः काचिन्मदविघूर्णिता।
कामिनी मोहनास्त्रेण वतानङ्गेन तर्जिता॥

अर्थात—वहांकी स्त्रियां कामोद्दीपक पौष्टिक रसोको इच्छापूर्वक पीये विना, सूंघे विना, हाथमें लिए विना केवल कामके आवेशसे उन्मत्त होगई थीं, और कोई कोई कामवती स्त्रियां अपने पतिकी गोदमें बैठी हुई कामके उद्रेकसे घूमती हुई कामदेवके मोहन-अस्त्रसे घायल हो रही थीं।

पहले श्लोकमें मदिरा शब्द आया है जिसका अर्थ कामोद्दीपक पौष्टिक रस होता है। इन श्लोकोंसे इस बातका भी पता लगता है कि स्त्रियां कामके आवेशसे उन्मत्त हो जाती हैं और घूमने लगती हैं।

इस विषयमें बाबूसाहब अपनी सम्मति देते हैं कि "यदि शराब पीना भारतवर्षकी आज-कलकी भले घरोंकी स्त्रियोंके लिए कहा जाय तो मेरी (सूरजभानकी) समझमें बहुत ही अनुचित और असभ्यताका सूचक समझा जाय।" पाठकगण! देखा बाबूसाहबका लिखना। आपने अपनी बुद्धिके दोषसे आचार्य महाराजके अभिप्रायको तो समझा नहीं और उन्हें असभ्य कह दिया। इससे

जैनसमाज जान सकेगी कि बाबूसाहबने उन पूज्य आचार्योंको गालियां देना भी प्रारम्भ कर दिया है—यह एक प्रबल मोहनीयमलका माहात्म्य है।

अब जरा इस श्लोकपर ध्यान दीजिये।

मधौ मधुमदारक्तलोचनामास्खलद्गतिम्।
बहु मेने प्रियः कांतां मूर्तामिव मदश्रियम्।

अर्थात्—भरतमहाराज वसन्त ऋतुमें अपनी उस पट्टरानीको—जिसके नेत्र अशोक, चम्पक आदि वृक्षोंके परागसे या पौष्टिक रसोंके पानसे उत्पन्न हुए कामोद्दीपनसे जनित भ्रमप्रेम—रागसे कुछ कुछ डगमगा रही थी—मूर्तमान मदकी शोभाके समान बहुत मानते थे।

इस श्लोकमें भी मधु मद शब्द आया है जिसका अर्थ शराबका नशा नहीं है, किंतु जो ऊपर दिया गया है वह है। (मधु शब्दका अर्थ मकरन्द, किंजल्क, पराग होता है। देखिए कविवर धनंजयका कहा हुआ आधा श्लोक 'परागं मधु किंजल्कं, मकरन्दं च कौसुमम्)

यह वसंतऋतुका वर्णन है इसलिए मधु शब्दका अर्थ पराग करना अनुचित नहीं है। वसंतऋतुमें कामोद्रेक स्वभावसे ही अधिक होता है। फिर यदि इस अवसरमें उत्तम २ रसोंका सेवन व अच्छे २ पुष्पोंका संयोग और भी मिल जाय तो कहना ही क्या है। 'मधुमदारक्त' इसमें आरक्त पद आया है जो आङ् उपसर्ग पूर्वक रंजी रागे धातुसे क्त प्रत्यय करनेसे बनता है जिसका अर्थ कुछ कुछ लाल होता है। आङ्के इषत्, मर्यादा, अभिविधि आदि कई अर्थ होते हैं, पर इषद् अर्थका वाचक आङ्का प्रयोग है। इससे मालूम होता है कि जैसे नेत्र शराबके नशेसे लाल होते हैं वैसे लाल उसके नेत्र नहीं थे। तथा 'अस्खलद्गति' इसमें भीआ का अर्थ इषत्—कुछ कुछ है, इसलिए जिस प्रकार मद्यपायी पुरुषोंकी चाल डगमगाती है उस प्रकार उसकी नहीं डगमगाती थी। अतः बाबूसाहबका यह लिखना कि आंखोंका लाल होना और चालका डगमगाना ये दो बातें इस शराबके पीनेको और भी स्पष्ट कर देती हैं, सर्वथा निर्मूल है। क्योंकि ये बातें कामके आवेगसे भी होती हैं।

वसन्तऋतुमें कामोद्रेक अधिक उत्पन्न होता है। इस विषयका कुछ थोड़ासा वर्णन देखिए—

उन्मत्तकोकिले काले तस्मिन्नुन्मत्तषट्पदे।
नानुन्मत्तो जनः कोऽपिमुक्त्वानङ्गग्रहो मुनीन् ॥

अर्थात्—जिसमें कोयल उन्मत्त हो गई थीं, भ्रमर भी उन्मत्त हो गये थे उस वसन्तऋतुमें कामदेवको नष्ट करनेवाले महामुनियोंके सिवा ऐसा कोई मनुष्य नहीं था जो कामदेवके आवेशसे उन्मत्त न हुआ हो।

इस प्रकार ४३ वें और ४४ वें पर्वके श्लोकोंमें आये हुए मधु आसव इन शब्दोंका अर्थ भी कामोद्दीपक पौष्टिक रस है, जिसका पीना उन लोगोंके लिए अनुचित नहीं था।

सारांश, ग्रन्थकर्ता आचार्य महाराजके आशयसे इन शब्दोंका अर्थ शराब नहीं है जिसकी पुष्टिके लिए दो श्लोकोंका प्रमाण दिया जाचुका है। वे स्पष्ट लिख रहे हैं कि मधु, मैरय, सीधु

अरिष्ट, आसव, मदिरा आदि एक प्रकारके पौष्टिक रसके भेद है। ये रस उत्तम २ सुगन्धिवाले होते है और अमृतके समान मीठे होते है। अन्य कोषकारोंके मतसे भी इन शब्दोंका अर्थ शराब ही नहीं है, सो भी अच्छी तरहसे दिखलाया जाचुका है। बाबूसाहबने जो प्रश्न किये है वे शराब अर्थको ही लेकर किये है। अतः उन सबका उत्तर रस अर्थ होनेसे स्वयं हो जाता है। ऋषभदेव स्वामीने स्वयं बाहुबली वगैरह अपने पुत्रोको अलंकारशास्त्र पढाये हैं। अतः जिनसेनाचार्यने जो अलंकारोका वर्णन किया है वह अयुक्त नही है। राज्यकीय नियमोका पालन करनेवाला दोषी नहीं है, वरन दोषी वह है जो उन नियमोके प्रतिकूल चलता है। जिनसेनाचार्यने कवियोके नियमोका पालन किया इससे सदोष समझे जावे यह नितान्त असंभव है। अन्यथा अपने २ वर्ण, जाति, राजकीय नियमोंका पालन करनेवाला भी आपके मतके अनुसार सदोष समझा जावेगा। क्या वे अपने कवित्वके नियमोका पालन न करके जैसी तैसी रचना कर देते या ३२ अक्षरोके अनुष्टुप श्लोककी जगह २९ अक्षरोका बना देते तो अच्छा मालूम देता? अतः उनके लिए यह लिखना कि "शायद उनने कवियोके नियमोके वशवर्ती होकर लिखा होगा" कितना हास्यास्पद है। बाबूसाहब, जरा विचारदृष्टिसे भी काम लीजिए। आपने तो ये सब प्रश्न व लेख ऐसे लिख डाले जिनसे कोई नहीं कह सकता कि आप जैन है या जैन शास्त्रोंके जानकार है। आप इस प्रकारके लेख लिखकर जैन शास्त्रोको क्यो सदोष सिद्ध करनेकी चेष्टा करते है। यदि आपका मन इन विषयोके लिए इधर उधर परिभ्रमण कर रहा है तो खुल्लमखुल्ला क्यो न जनताके सामने स्पष्ट कर देते। जैन शास्त्र तो आपकी दृष्टिमे सब असत्य है तो सत्य कौनसी वस्तु है उसे तो जरा प्रकट कीजिए जिसपर सभीको विचार करनेका अवसर मिले। हमे तो यही मालूम पड़ता है कि आपका जी इन कार्योंके करनेके लिए ललचा रहा है, अतः जैन शास्त्रोंको अपनी मिथ्याकल्पनाओसे असत्य सिद्ध करना चाहते है यह अत्यन्त ही खेदका विषय है। अय जैन समाज! बाबूसाहबके विचार, लोकको भी उल्लंघन कर गये है, जितने भर कुकृत्य है उन सबको बाबूसाहब अपनी दृष्टिमे उत्तम समझने लग गये है। अतः सचेत हो और शहदसे लिपटी हुई तलवारके रसास्वादन बाबूसाहबकी लेखनीसे पराङमुख हो बाबूसाहबने जो मिथ्या ऊहापोह की है उसीका यह दिग्दर्शन तेरे सामने उपस्थित है।

विनीत—
पन्नालाल सोनी, प्रधानाध्यापक
रायबहादुर सेठ हुकमचंद दि० जैन महाविद्यालय, इन्दौर।

बाबू सूरजभानजीके लेखनपर विचार।

आजकल आदिपुराणकी काटछाट करनेके लिए बाबू सूरजभानजी वकीलकी लेखनी बड़ी ही तेजीसे चल रही है। आपको इस पुराणमे दोष ही दोष नजर आरहे है और आचार्य महाराजके अभिप्रायोको बड़ी ही चालाकीसे और ही रूपमे परिणत कर रहे है, उनकी सत्य लेखनीको छिपाकर उनके प्रति श्रद्धान हटानेके लिए अपना भरसक बल दिखला रहे है, उनके शब्दोके अर्थोंका अनर्थ करनेके लिए अत्यन्त ही कटिबद्ध हो रहे है। इन्ही बातोको मै '**गंगामाइकी जय**' नामके लेखके विचारमे दिखलाऊगा। बाबूसाहबने इस लेखकी एक लम्बी चौडी भूमिका लिखी है। उसका साराश है कि "वस्तु स्वभावका महत्त्व भारतसे ही नहीं उठ गया बल्कि जैन नामधारी इनेगिने लोगोंमे भी नही रहा, जितनी मिथ्यात्व क्रियाएं फैली है और उत्तम कृत्योका अभाव हुआ है उन सबका कारण हमारी (सूरजभानजीकी) समझमे कथाग्रंथोका गढा जाना है, उनमे मिथ्यात्वकी पुष्टिके अनेक कथाओका होना और वस्तु स्वभावके विचारको छोड़कर अनेक असंभव बातोका लिखा जाना है, इत्यादि।"

इस विषयमे हम आपसे पूछते है कि क्या विधवाविवाह करना, वर्णव्यवस्था तोड़ देना, एक पत्तलमे बैठकर परस्परमें झूठन खाना वस्तुस्वभाव है? क्या इनसे मिथ्यात्व-क्रियाए न होकर सम्यक् क्रियाएं होगी? क्या इन्हीसे उत्तम कृत्योका सद्भाव होगा? यदि ऐसा ही है तो ये कार्य अवश्य ही मधुलिप्त असिधाराके समान जीवोके कल्याणकारी होवेगे। परीक्षकोके वाक्य पूर्वापरविरोधरहित होने चाहिए। जो वाक्य पूर्वापरविरोधसे मुक्त होते है वे कभी भी ग्राह्य नहीं हुआ करते। एक स्थानपर तो "वत्थु सुभावो धम्मो"का उपदेश दे रहे है और दूसरी जगह कुगतिमे पहुंचानेवाली क्रियाओंका उपदेश देते है। क्या ये वाक्य पूर्वापरविरोधी नही कहे जा सकते? क्या इसीका नाम परीक्षकता है? वादी दूसरोको कितना ही दोष देता रहे, परतु जब तक वह अपने पक्षकी सिद्धि न कर ले तब तक उसका जय कदापि नहीं हो सकता।

यदि आप इस धर्म-युद्धमे विजय प्राप्त करना चाहते है तो पहले आप अपने तत्वोंका निश्चय तो कर लीजिए। मिथ्या क्रियाओका सद्भाव उत्तम क्रियाओंका अभाव प्रथमानुयोग कथाग्रंथोसे हुआ है यह आपकी निरी भूल है। ये ग्रंथ पुण्य पापके उपदेश करनेवाले है। जिन नीच क्रियाओके करनेसे पापबंध होता है और उसका फल नरक आदि कुगतियोमे सड़ते रहना बताया है, और जिन उत्तम क्रियाओके करनेसे पुण्यकर्मका बंध होता है उसका फल देवादि उत्तम गतिमे आनंद भोगना और परपरासे मोक्ष बताया है। इस पुण्य और पापका दृश्य पुराणकारोने इस प्रकार बतलाया है कि जो मनुष्यके हृदयपर अपना एक विलक्षण ही असर डालता है जिससे भव्य प्राणी अपना आत्मकल्याण करनेके लिए ऋजु हो जाते है। इन पुराणोंमें शृंगार रसोंके साथ २ वह उत्तम धर्म कूट-कूटकर भरा गया है जिसे भव्य जीव शीघ्र ही अपना लेते है और पापक्रियाओसे पराङमुख हो जाते है। यद्यपि इन पुराणोकी सृष्टि इसी अभिप्रायको लेकर हुई है तथापि वह आप लोगोको अरुचिकर है। इसका खास कारण मुझे

यही प्रतीत होता है कि जिन विधवाविवाह आदि निकृष्ट क्रियाओंको आप उत्तम मानते हैं उन्हींको ये पुराण अत्यंत हीं निकृष्ट बतला रहे हैं, इन मिथ्या क्रियाओंसे हटनेका उपदेश दे रहे हैं, और इनका फल बहुत ही बुरा प्रतिपादन करते हैं; इसीलिए आप लोगोंको ये पुराण अमृत-विषतुल्य मालूम दे रहे हैं। अतएव इन्हें आप अपनी वर्त्तमान उन्नतिका कंटक समझकर असत्य सिद्ध करनेका प्रयास कर रहे हैं। वास्तवमें तो इन पुराणोंमें कोई भी दोष नहीं है, परंतु प्राणियोंको विषयवासना वलीयसी है। इस विषयमें हम आपसे क्या कह सकते हैं सब अपनी २ सम्पत्तिको स्वयं ग्रहण कर लेते हैं। यद्यपि आप परीक्षक होनेका दावा करते हैं, परंतु उन अतींद्रिय पदार्थोंकी परीक्षा करनेमें किसी तरह सिद्धहस्त नहीं हो सकते। जवाहरातकी परीक्षा करनेमें जौंहरी ही उपयुक्त है, गली कूचोंमें फिरनेवाला सामान्य मनुष्य नहीं। किसी किसीने यह भी लिखा है कि "हम ज्ञानादिकमें पूर्वजोंके सदृश नहीं हो सकते, यह कहना भी मनुष्यत्वका अपमान करना है, इत्यादि।" हम नहीं कह सकते कि ऐसे भय–प्रदर्शक वाक्योंके लिखनेसे क्या तात्पर्य निकालते है। क्या कोई मनुष्यत्वका और सम्यग्ज्ञानादिकका अविनाभाव है जो ऐसा कहनेसे मनुष्यत्वका अपमान हो गया? यदि ऐसा ही है तो जैमिनी ऋषिने स्पष्ट कह दिया है कि कोई भी पुरुष अतींद्रिय ज्ञानवान् नहीं हो सक्ता। सो क्या इन महाराजने मनुष्यत्वका कितना अपमान कर डाला? क्या इनके पीछे भी लट्ठ लेकर दौड़ेंगे? जिन आविष्कारोंको पाश्चात्य विद्वान् वड़ी ही चतुरतासे कर रहे हैं, जरा आप भी अपनी जिंदगीमें दो कदम आगे वढ़कर कीजिए, देखूं मनुष्यत्वका अपमान होता है या नहीं। अतः मनुष्यत्वकी दुहाई देकर यदि कोई भी परीक्षक वनना चाहे तो वह निरा नामधारी परीक्षक है, द्रव्य व भावरूप नहीं। देखिए नेमिचंद्र सिद्धांत-चक्रवर्तीने अपना परीक्षक किसको वनाया है;—

दव्व संगहमिणं मुणिणाहा, दोससंचय चुदा सुदपुण्णा।
सोधयन्तु तणुसुत्तधरेण णेमिचंद मुणिणा भणियं जं॥

अर्थात्—अल्पज्ञ मुझ नेमिचंद मुनिने जो यह द्रव्यसंग्रह नामक ग्रन्थ वनाया है उसको दोष-समूहसे रहित आगमके पूर्ण वेत्ता आचार्य शुद्ध करें। इस गाथामें आचार्यने 'दोषसंचयचुदा' और 'सुदपुण्णा' ये दो विशेषण परीक्षकके दिये हैं। परंतु वर्त्तमानके परीक्षकोंमें इन दोनों गुणोंका बिल्कुल अभाव है, परीक्षकमें रागद्वेषरहितपना अवश्य होना चाहिए। अन्यथा उसके कथनमें विपरीतताके अभावका निश्चय नहीं हो सकता, संभव है कि वह अपने विषयवासनाओंसे प्रेरित होकर विपरीत–उल्टा भी उपदेश दे देवे। अतः परीक्षक या वक्तामें इस गुणका होना अत्यन्त आवश्यक है। ज्ञानी भी उसे सर्व विषयोंमें होना चाहिए, अन्यथा वह अर्थका अनर्थ कर बैठेगा। इन दोनों गुणोंके न होनेसे ही वर्त्तमानके परीक्षकोंने विपरीत उपदेश और अर्थका अनर्थ किया है। अस्तु—

अब मैं यह दिखलाऊंगा कि आदिपुराणमें ही गंगादेवीका वर्णन नहीं किया गया है, किंतु करणानुयोगके उत्तम ग्रंथोंमें भी इसका खूब लम्बा चौड़ा वर्णन पाया जाता है। बाबूसाहब

लिखते हैं कि " आदिपुराण कथाग्रंथ पढ़नेसे पहले हमारे भाई गंगानदीको जलके प्रवाहके सिवाय और कुछ भी न मानते होंगे, परंतु श्री आदिपुराण महाग्रन्थ गंगादेवीका विस्तृत कथन करके आपके इस श्रद्धानको मिथ्या सिद्ध कर रहा है " बाबूसाहबका यह लिखना कितना अयुक्त है। क्या कोई तत्व किसीको न मालूम होने मात्रसे मिथ्या हो सकते हैं ? बहुतसी बातें अभी तक ऐसी छिपी हुई हैं जिनका लोगोंको पता भी नहीं है। तो क्या वे कभी पता चलने पर उन लोगोंके न जानने मात्रसे असत्य हो जावेंगी ? इस आपके लेखसे यह भी मालूम हुआ कि आपने सिवा पुराणग्रंथोंके अन्य ग्रंथ ही नहीं देखे हैं। ओह! देखें कैसे अभी वे हिन्दी भाषामें थोड़े ही लिखे गए हैं! भट्टाकलङ्कदेवके उन ग्रंथोके तत्त्वोंको जाने दीजिए परंतु उनके नामसे अपरिचित न होंगे। वे अपने प्रसिद्ध तत्त्वार्थराजवार्तिकमें लिखते हैं कि—

"क्षुद्र हिमवान् पर सिद्धायतन कूटके समान लम्बे चौड़े और ऊंचे हिमवान्, भरत, इला, गंगा, श्री, रोहितास्या सिन्धु, सुर, हैमवत और वैश्रवण नामके क्रमसे दश कूट हैं जिनके ऊपर दश ही प्रासाद हैं जो साढ़े बासठ योजन ऊंचे, सवा इकतीस योजन चौड़े और उतने ही प्रवेश लम्बे हैं। उनमें जो नाम कूटोंके हैं उन्हीं नामवाले देव और देवियां रहती हैं। हिमवान्, भरत, हैमवत और वैश्रवण नामके कूटपर देव रहते हैं और इला, गंगा, श्री रोहितास्या, सिन्धु और सुर नामक कूटोंपर देवियां निवास करती हैं।"

हिमवद्भरतेलागंगाश्रीरोहितास्यासिंधुसुरहैमवतवैश्रवण-
कूटाभिधानानि यथाक्रमं वेदितव्यानि, सिद्धायतनकूट-
तुल्यानि। तेषामुपरि प्रासादाः दशैव सक्रोशद्विषष्ठि
योजनोत्सेधाः सक्रोशैकत्रिंशद्योजनकविष्कम्भास्तावत्प्र-
वेशाः। तेषु स्वकूटनामानो देवा देव्यश्च वसन्ति हिमवद्भ
रतहैमवतवैश्रवणकूटेषु देवा इतरेषु देव्यः।

राजवार्तिक अध्याय ॥ ३ ॥ सूत्र ॥ ११ ॥

इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि गंगाकूट-प्रासादमें गंगादेवी रहती है और सिंधुकूट प्रासादमें सिंधुदेवी रहती है। इसी प्रकार महाहिमवान् निषध आदि पर्वतोंपर भी कूट बने हुए हैं और उनमें उन कूटोंके नामवाले देव और देवियां रहती है। और भी जरा देखिए—

गंगाकूटप्रासादे गंगादेवी वसति।
सिंधुकूटप्रासादे सिंधु देवी वसति॥ सूत्र ॥ २२ ॥

अर्थात्—गंगाकूट नामक प्रासादमें गंगादेवी रहती है। सिंधुकूट नामक प्रासादमें सिंधु देवी रहती है। इन कूटोंका जो नाम है वही प्रासादोंका और देवियोंका है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भट्टाकलङ्कदेव जिनसेनाचार्यसे पूर्व हुए हैं। इस विषयका पता पर्व १ के ५३ नंबरके श्लोकसे लगता है—कि भट्टाकलङ्क, श्रीपाल और पात्रकेसरी विद्यानन्दीके अत्यंत निर्मल गुण विद्वानोंके हृदयमें आरूढ़ हुए रत्नहारके समान सुशोभित होते हैं।

भट्टाकलंकश्रीपालपात्रकेसरिणा गुणाः।
विदुषां हृदयारूढा हारायन्तेऽतिनिर्मलाः॥ ५३ ॥

अब जरा भट्टाकलङ्कसे भी बहुत प्राचीन एक महर्षिका वचन देखिए। उनके वचनका सारांश है कि हिमवान् पर्वतपर ठीक बीचोंबीच उत्तम २ रत्न व कंचनमयी गंगाकूट इस नामका प्रासाद है जो चार तोरण द्वारोसे विभक्त है और एक उत्तम पद्मवर वेदिकासे परिक्षित है उसमें स्वयं गंगादेवी निवास करती है।

तप्पव्वदस्स उवरिं बहुमज्झे होदि दिव्वपासादो ।
वररयणकंचणमओ गंगाकूडंति णामेण ॥ २२ ॥
वरवेदीपरिखित्ते चउगोउर मंदिरंमि पासादो ।
रमुज्जाणं तस्सिं गंगादेवी सयं वसइ ॥ २७॥

त्रिलोकप्रज्ञप्ति ।

इसी प्रकार सिंधुदेवीके विषयमे भी लिखते है कि गंगाके वर्णनसे सिंधुके वर्णनमें इतना विशेष है कि सिंधुकूट प्रासादमें सिंधु देवी रहती है जो अपने परिवार करके संयुक्त है और नाना प्रकारके सुखोंका अनुभवन करती है।

णयरिविसेसो वसो सिंधु कूडम्मि सिंधुदेवीति ।
बहुपरिवारेहिं जुदाओ च? भुंजदि विविहसोक्खाणं ॥

त्रिलोकप्रज्ञप्ति ।

इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि गंगासिंधु आदि नदियोंसे गंगासिंधु आदि देवियां जुदी है। यह ग्रंथ यति वृषभाचार्यका बनाया हुआ है। इस बातको हम जैनहितैषीके सम्पादकके कथनसे लिखते है। इस विषयमें उनका लिखना बहुत कुछ संभव है। परंतु इसमें कुछ संदेह नहीं कि वह राजवार्तिकसे भी बहुत प्राचीन है। और इन आचार्य महाराजको **श्री अभयचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्तीने कषायप्राभृत नामक द्वितीय** सिद्धांतके व्याख्याता कहा है, कही कहीं इस सिद्धांतके कर्त्ता भी कह दिया है। अस्तु इन प्रमाणोसे यह स्पष्ट होगया कि कथाग्रंथोमे ही गंगासिंधु आदि देवियोंका कथन नही है बल्कि इनसे प्राचीन द्रव्यानुयोग व करणानुयोगके ग्रंथोंमे भी पाया जाता है। यदि यति वृषभाचार्य और भट्टाकलङ्क आदि आचार्योंके वचन भी जिनसेनाचार्यके समान असत्य ठहरा दिये जावेगे तो भूतबली, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समंतभद्र आदि सब ही आचार्योंके वचन भी असत्य सिद्ध हो जावेगे। तो यह नही कहा जा सकता कि फिर जैन धर्मका क्या स्वरूप रहेगा। हमारी समझमे बाबूसाहबकी बुद्धि-कसौटीसे परीक्षित विधवाविवाहादि ही जैनधर्मका स्वरूप होना चाहिए। अतः जैनसमाजको चाहिए कि बाबूसाहबकी लेखनीसे मोहित होकर धवल महाधवल, गन्धहस्ति महाभाष्य, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, गोमट्टसार, त्रिलोकसार आदि सिद्धांतग्रंथोको उठाकर एक कोनेमें रख दें या जलप्रवाह कर दें, अन्यथा इनको पढ़कर लोग मिथ्यादृष्टि बन जावेगे। जिनेंद्र भगवानकी पूजा प्रक्षाल आदिको जलांजलि दे दें, जिन प्रतिमाको गहरे कूपमे पधरा दें और 'केवल वत्थु सुहावो धम्मो'की रात दिन जाप दिया करें, देखो फिर कितनी जल्दी मुक्ति होती है। बाबूसाहबने अपना कार्यक्षेत्र बहुत ही लम्बा चौड़ा बनाया है। आपने केवल पुराण ग्रंथोंको ही मनगढंत कहकर नष्ट करना नहीं चाहा है बल्कि उन सिद्धांत ग्रंथोंको भी नष्ट करनेके लिए कमर बांधी है। अब मै यह बतलाऊंगा कि बाबूसाहब

ने जिनसेनाचार्यके साथ कितनी छलचालाकी की है। जिनसेनस्वामीने चक्राभिषेक क्रियाका वर्णन करते हुए कहा है—

श्री देव्यश्च सरिद्देव्यो देव्यो विश्वेश्वरा अपि।
समुपेत्य नियोगैः स्वैस्तदेनं पर्युपासते॥

अर्थात्—श्री देवियां, नदियोंकी अधिष्ठातृ देवियां, और विश्वेश्वरा देवियां अपने २ नियोगके अनुसार आकर इस चक्रवर्तीकी सेवा करती हैं। इस श्लोकमें सरिद्देव्यः यह शब्द आया है, जिसका अर्थ नदियोंकी अधिष्ठातृ देवियां होता है। उसका अर्थ बाबूसाहब नदिदेवियां करते हैं। इसको एक प्रकारका छल कहते हैं, जैसे "मंचाः गायन्ति, कुंताः प्रविशन्ति" अर्थात् मञ्चपर बैठे हुए मनुष्य गाते हैं, कुंतशस्त्र जिनके कंधेपर धरे हुए हैं वे मनुष्य प्रवेश कर रहे हैं या जारहे हैं। परंतु बाबूसाहब तो इसका अर्थ यही करेंगे कि मांच गाते हैं और कुंत शस्त्र जाते हैं, और कहेंगे मांच तो लकडी आदिका बना हुआ होता है और शस्त्र लोहेके होते हैं उनमें गाना और जाना भी कवियोंने माना है। कहीं लकडियोंकी चीजें भी गाती हुई देखी हैं और कुंत भी जाते हुए देखे हैं? अतः यह कवियोंका कहना झूंठा है। कहें क्यों नहीं। शब्दोंके अर्थोंका सामर्थ्य जानते हों तब न?

इस प्रकार पर्व ३७ के १० श्लोकका अर्थ भी बाबूसाहबने ऐसा ही किया है, परंतु उस श्लोकका अर्थ यह है—

गंगासिंधू सरिद्देव्यौ साक्षतैस्तीर्थवारिभिः।
अभ्यषिञ्चतां तमभेत्य रत्नशृङ्गारसंभृतैः॥

अर्थात्—गंगा सिंधु नदियोंकी अधिष्ठातृ गंगादेवी और सिंधुदेवीने आकर रत्नोंके शृंगारसे भरे हुए अक्षतयुक्त तीर्थजलसे भरत महाराजका अभिषेक किया।

इस श्लोकके विषयमें बाबूसाहब लिखते हैं कि "इस श्लोकसे यह भी सिद्ध हुआ कि गंगा-सिंधू नदियां देवियां हैं, किंतु इससे स्पष्ट तौरपर यह भी सिद्ध होता है कि यह दोनों नदियां तीर्थ हैं और इनका जल तीर्थ-जल है" यह आपका लिखना बिल्कुल अनुचित है। हम कह चुके कि नदियां ही देवियां नहीं हैं किंतु नदियां अलग हैं और देवियां अलग हैं। इनका जल तीर्थजल है यह भाव तो इस श्लोकसे नहीं निकलता। इसमें तो 'सामान्यसे तीर्थ वारिभिः' आया है। मालूम नहीं आपने इसका अर्थ ऐसा कहांसे निकाल लिया। यदि आपका यही हठ है कि इनका जल ही तीर्थ-जल है तो भी कोई हर्जकी बात नहीं है। क्योंकि तीर्थ नाम जिन प्रतिमाका भी है। अतः तीर्थवारिका अर्थ जिन भगवान्का स्नानोदक या अभिषेक जल होता है। यह बात भी जैनागमसे सिद्ध होती है कि जो गंगा, सिंधुकी जलधारा हिमवान्-पर्वतसे गिरती है वह अकृत्रिम अनादि जिन भगवान्की प्रतिमापर पडती है। अतः इन नदियोंका जल तीर्थ-जल कहा जावे तो कोई भी अत्युक्ति नहीं है।

अणादिजिण पडिमाओ तोउज्जदमउडपासेहरिल्लाउ?
पडिमोपरिम्मि गंगा अभिसित्तुमणप्पसापडदि॥ २९॥

त्रिलोकप्रज्ञप्ति।

आगे चलकर आपने आदिपुराण पर्व ३२ के ७९ से ८३ तकके श्लोक सिंधु नदीको सिंधु देवी सिद्ध करनेके लिए दिए हैं। नंबर ७९ के श्लोकमें 'सिंधु देव्या निषेचि सः' यह पद आया है। इससे न माछम आप सिंधु नदीको सिंधु देवी किस युक्तिसे सिद्ध करते हैं। हां सिंधु देवी अवश्य सिद्ध होती है। तथा नंबर ८० के श्लोकमें देवी शब्दको तो बिल्कुल हजम कर गये और उसका अर्थ परिवारसहित सिंधु नदी आई किया है। यद्यपि इसका अर्थ अपने परिवार सहित सिंधु देवी आई करना चाहिए था। परंतु करें क्यों आप तो केवल दोषोंको ढूंढनेके लिए ही उतारू हो रहे हैं न? इसीका नाम है अर्थका अनर्थ करना। अपनी इसी भूल-पिशाचिनीके वशीभूत होकर श्री जिनसेनाचार्यकी भूल निकालनेके लिए ही कमर बांधी होगी। इसी प्रकार १६३ से १६९ तकके श्लोकोंमें भी ऐसा ही किया है। बाबूसाहब लिखते हैं कि इस कथनसे सिद्ध हो गया कि सिंधु देवी हिमवान पर्वतपर उस जगह रहती है जहांसे सिंधु नदी निकलती है। इसे हम स्वीकार करते है परंतु थोड़ासा फर्क है। सिंधु देवी जहांसे सिंधु नदी निकलती है वहां नहीं रहती किंतु सिंधु-द्वारसे पश्चिमकी तरफ ५०० योजन आगे चलकर सिंधुकूट प्रासादमें रहती है। बाबूसाहब स्पष्ट लिख रहे हैं कि सिंधु देवी जहांसे सिंधु नदी निकली है वहां रहती है, फिर भी सिंधु नदीको ही सिंधु देवी कहते हैं बड़ा ही आश्चर्य है। जयकुमारकी कथामें जो आपको अगणित शंकाएं उठती है उनका उत्तर भी उसी समय दिया जावेगा जब वे जनसमूहके सामने रखी जावेंगीं। गंगाकी प्रशंसामें जो आचार्य महाराजने श्लोक लिखे हैं वे सब ज्योंके त्यों ठीक हैं। गंगा नदीसे जिन भगवानका आश्रय लिया है अतः पवित्र है। जगत्को पवित्र करनेवाली और पापोंका नाश करनेवाली है जैसे कि आजकल मंदिरोंमें रखा हुआ भगवान्का अभिषेक जल। हमारी जैनसमाजके तत्त्वश्रद्धानी भाई भी इस बातसे न डरें कि यह क्या कह दिया गया। किसी अपेक्षासे यह बात बिल्कुल ठीक है। यदि इसमें अपेक्षा हटा दी जावे तो यही बात एकांतरूप होकर मिथ्या हो सकती है। आप लोग प्रतिदिन श्री जिनेंद्र भगवान्का दर्शन करनेके लिए मंदिर जाते ही हैं और भगवान्के अभिषेक-जल-गंधोदकको मस्तकपर चढ़ाते ही हैं और शायद इस नीचे लिखे-श्लोकका उच्चारण भी करते हैं—

निर्मलं निर्मलीकरं पवित्रं पापनाशनम्।
जिनगन्धोदकं वन्दे चाष्टकर्मविनाशकम्॥

अर्थात्—भगवान्का गंधोदक—अभिषेक-जल स्वयं निर्मल है, दूसरोंको निर्मल करनेवाला है, पापोंका नाश करनेवाला है और आठों कर्मोंका भी विनाशक है।

सज्जनो! जब कि इस गंधोदकको अपने परिणामोंको पवित्र करनेके लिए इन आचार्योंकी आज्ञासे ही ऐसा मानते हैं तब अकृत्रिम अनादिनिधन जिन प्रतिमाके ऊपर गिरते हुए गंगा सिंधु नदीकी धाराके जलको अपने परिणामोंको पवित्र करनेके लिए ही इन्हीं आचार्योंकी आज्ञासे वैसा

क्यों न मानें। सारांश कि गंगा सिंधुका जल भगवान्‌के अभिषेककी अपेक्षासे गंधोदकके समान पवित्र, पवित्र करनेवाला और पापोंका नाशक है। दोनों स्थानोंमें जलपनेका अविशेष है किंतु वही जल कल्पनासे विशेष होजाता है। यदि कल्पना-स्थापनासे किसी भी वस्तुमें विशेषता स्वीकार न करेंगे तो धातु पाषाण आदिककी प्रतिमामें भी विशेषता न आवेगी और उत्तम २ रसोंमें निकृष्ट पदार्थोंकी कल्पना करनेसे जो उनका त्याग कर देते हैं वह बिल्कुल निरर्थक हो जायगा। और जो आजकल मन्दिरोंमें गंधोदक रखा रहता है वह भी उठाकर एक कोनेमें रख देना पड़ेगा। इस बातका भी ख्याल रहे कि वर्तमानमें जो गंगा सिंधु नदियां हैं वे महागंगा और महासिंधु नहीं हैं। गंगा सिंधुका जल भगवान्‌का अभिषेक जल है, इसी अपेक्षाको लेकर श्री जिनसेनाचार्यने उसे पूज्य पवित्र और पापोंका नाशक कहा है। इस अपेक्षाको न समझ करके ही बाबूसाहबने लोगोंको भड़कानेकी चेष्टा की है वह निरी भूल है। इसी चालाकीका नाम जिनसेनाचार्यके प्रति जैनियोंकी श्रद्धा हटाना है। बाबूसाहबके हरएक लेखमें छल करना, अर्थका अनर्थ करना और जैनियोंकी जैनाचार्योंसे श्रद्धा हठाना ये तीन बातें अवश्य रहती है। अतः सज्जनोंका कर्तव्य है कि वे बाबूसाहबके लेखोंको बड़ी ही सावधानीसे पढ़ें, नहीं तो "लोभी गुरु लालची चेला, दोनों नरकमें ठेलमठेला" की कहावत चरितार्थ हो जावेगी। मुझे पूर्ण आशा है कि निष्पक्ष सज्जन इसे पढ़कर अवश्य ही लाभ उठावेंगे और अपने विचलित श्रद्धानको फिरसे स्थिर करनेका प्रयत्न करेंगे।

विनीत—**पन्नालाल सोनी।**

धन्यवाद पत्र।

आज कल समाचारपत्रादि पढ़नेका जिन्हें अभ्यास है उनको यह भलीभांति मालूम हुआ होगा कि बाबू सूरजभानजी वकील देवबन्द इस पवित्र जैनधर्म व उसके अनुयायी महर्षि और उनकी कृतिपर किस प्रकार हाथ साफ कर रहे हैं, आपने प्राचीन ऋषिप्रणीत ग्रंथोंको मिथ्या और दूषित ठहरानेका किस प्रकार प्रयत्न किया है, आपने जिनसेन स्वामीकृत आदिपुराणपर समीक्षाएं लिखी हैं; जिनमें एक तो—शब्द-छल किया है कि जिसमें मन चाहा शब्दोंका अर्थ निकाल कर बेसंबंध भाव दिखलाया है और कहीं २ व्याकरण विपरीत भी अर्थ किये हैं; दूसरे-अधूरे वाक्य, जिनमें आगे पीछेके अंश छोड़कर जिस तरह अपना अभिप्राय सिद्ध होता देखा है वही वाक्य उद्धृत किये हैं, ग्रंथकर्त्ताका जो भाव नहीं है वह आशय भी आपने दर्शा दिया है; तीसरे-अलंकारिक शब्दोंके भावको खास बात मानकर उनपर असम्भवता दिखलाई है, इत्यादि। तौ भी संभव है कि "एकतरफी बात गुड़से मीठी लगती है" इस कहावतके अनुसार कुछ भोले भाइयोंका श्रद्धान उसके द्वारा विचलित हुआ होगा। इसलिये प्रारंभमें हम पण्डित लालारामजी शास्त्री इंदौर-सभासद शास्त्रीय परिषद् द्वारा लिखित **आदिपुराण समीक्षा प्रथम भागकी परीक्षा** आपके साम्हने उपस्थित करते हैं, जिससे आपको पूरा २ पता लग जायगा कि बाबू-

साहेबकी युक्तियां कितनी मनगंढन और निर्मूल है। अतएव हम पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि वे समीक्षा और परीक्षा दोनोको साम्हने रखकर फिर उसपर विचार करे।

पण्डित कालारामजीने युक्ति और प्रमाणों द्वारा समीक्षाकी परीक्षा लिखनेका जो प्रयास किया है उसके लिये हम आपको धन्यवाद देते है। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय परिषद्के अन्य सभासद महाशय भी यदि पंडितजीका अनुकरण करेंगे और प्रत्येक विवादस्थ विषयपर अपनी सम्मति प्रकट करते रहेंगे तो जैनसमाजको बहुत कुछ लाभ पहुंचेगा। हमे आशा है कि विद्वद्-समाज अवश्य इस बातपर ध्यान देगा।

समीक्षाकी परीक्षाकी ३००० कापी छपाई गई है, जिसकी सहायताके लिये इंदौरकी सज्जन् मंडलीने २५०) रुपै प्रदान किये है; शेष दो हजारका कुल खर्चा इंदौरनिवासी रायबहा-दुर दानवीर सेठ तिलोकचन्द कल्याणमलजी द्वारा स्वीकार किया गया है इसलिये इन महाशयोंके हम अत्यंत अभारी है।

इस परीक्षाके प्रकाशनमें श्रीयुक्त पंडित धन्नालालजी काशलीवाल और पंडित रामप्रसादजी बम्बईसे भी पूरी २ सहायता प्राप्त हुई है इसलिये आपको भी धन्यवाद देते है।

आदिपुराण समीक्षा द्वितिय भागकी परीक्षा भी तयार हो रही है वह भी शीघ्र प्रकाशित की जायगी, पाठक धैर्य्य रखें।

प्रकाशक।

पाठकोंको चेतावनी।

आदिपुराण समीक्षा प्रथम भागकी परीक्षा आपके सामने उपस्थित की गई है उससे आपको भली भांति मालूम हुआ होगा कि बाबू सूरजभानजीने धर्मग्रंथोंका कितना विपर्यास किया है, आपकी समीक्षा और आक्षेप कितने निर्मूल और मनगढन्त है। इसी प्रकार जितनी समीक्षाएं या लेख धर्म ग्रंथोंको दूषित ठहरानेके लिये बाबूसाहबने लिखी हैं उनका उत्तर देनेका प्रबंध चल रहा है, परंतु कितनी ही असुविधाओंसे संभव है कि उनके प्रकाशमें कुछ विलंब हो अथवा सर्व लेखोंके उत्तर नहीं लिखे जा सकें। अतः पाठकों से हमारा अनुरोध है कि जब तक बाबूसाहबके लेख या समीक्षाओंका उत्तर आपके सामने न आवे तबतक आप उन समीक्षा और लेखोंको बांचते समय असली ग्रंथ साथमें रखकर देखे बिना कभी विश्वास न करें, नहीं तो अवश्य धोखेमें आकर अपने धर्म रत्नोंको खो बैठेंगे। सावधान!

प्रकाशक।

Printed by M. N. Kulkarni at the Karnatak Printing Press, 434, Thakurdwar, Bombay and
Published by Manikchand Bainada, Hirabag, Bombay.